प्रकाशक
श्री जवाहर विद्यापीठ, भीनासर, बीकानेर ३३४४०३

प्रकाशन सौजन्य .
श्री अमृतलालजी पगारिया

मूल्य पचास रुपये मात्र

मुद्रक
कल्याणी प्रिन्टर्स
अलख सागर रोड, बीकानेर
दूरभाष २५२६८६०

प्रकाशकीय

साधुमार्गी जेन–परम्परा मे महान् क्रियोद्धारक आचार्यश्री हुक्मीचदजी म सा की पाट–परम्परा मे षष्ठ युगप्रधान आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा विश्व–विभूतियो मे एक उच्चकोटि की विभूति थे, अपने युग के क्रातदर्शी, सत्यनिष्ठ, तपोपूत सत थे। उनका स्वतन्त्र चिन्तन, वैराग्य से ओत–प्रोत साधुत्व, प्रतिभा–सम्पन्न वक्तृत्वशक्ति एव भक्तियोग से समन्वित व्यक्तित्व स्व–पर–कल्याणकर था।

आचार्यश्री का चिन्तन सार्वजनिक, सार्वभौम और मानवमात्र के लिए उपादेय था। उन्होने जो कुछ कहा वह तत्काल के लिए नही, अपितु सर्वकाल के लिए प्रेरणापुज बन गया। उन्होने व्यक्ति समाज, ग्राम नगर एव राष्ट्र के सुव्यवस्थित विकास के लिए अनेक ऐसे तत्त्वो को उजागर किया जो प्रत्येक मानव के लिए आकाशदीप की भॉति दिशाबोधक बन गये।

आचार्यश्री के अन्तरग मे मानवता का सागर लहरा रहा था। उन्होने मानवोचित जीवनयापन का सम्यक् धरातल प्रस्तुत कर कर्तव्यबुद्धि को जाग्रत करने का सम्यक प्रयास अपने प्रेरणादायी उद्बोधनो के माध्यम से किया।

आगम के अनमोल रहस्यो को सरल भाषा मे आबद्ध कर जन–जन तक जिनेश्वर देवो की वाणी को पहुचाने का भगीरथ प्रयत्न किया। साथ ही, प्रेरणादायी दिव्य महापुरुषो एव महासतियो के जीवन–वृत्तान्तो को सुबोध भाषा मे प्रस्तुत किया। इस प्रकार व्यक्ति से लेकर विश्व तक को अपने अमूल्य साहित्य के माध्यम से सजाने–सवारने का काम पूज्यश्रीजी ने किया हे। अस्तु! आज भी समग्र मानवजाति उनके उद्बोधन से लाभान्वित हो रही है। इसी क्रम मे किरणावली का यह अक हरिशचन्द्र पाठको के लिए प्रस्तुत हे। सुज्ञ पाठक इससे सम्यक् लाभ प्राप्त करेगे।

युगद्रष्टा युगप्रवर्तक ज्योतिर्धर आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा का महाप्रयाण भीनासर मे हुआ। आपकी स्मृति को अक्षुण्ण रखने ओर आपके कालजयी प्रवचन–साहित्य को युग–युग मे जन–जन को सुलभ कराने हेतु समाजभूषण, कर्मनिष्ठ आदर्श समाजसेवी स्व सेठ चम्पालालजी बाठिया का चिरस्मरणीय, श्लाघनीय योगदान रहा। आपके अथक प्रयासो और समाज के उदार सहयोग से श्री जवाहर विद्यापीठ भीनासर की स्थापना हुई। सस्था जवाहर–साहित्य को लागत

मूल्य पर जन–जन को सुलभ करा रही हे और पण्डित शोभाचन्द्रजी भारिल्ल के सम्पादकत्व मे सेठजी ने 33 जवाहर किरणावलियो का प्रकाशन कर एक उल्लेखनीय कार्य किया है। बाद मे सस्था की स्वर्णजयन्ती के पावन अवसर पर श्री बालचन्दजी सेठिया व श्री खेमचन्दजी छल्लाणी के अथक प्रयासो से किरणावलियो की सख्या बढाकर 53 कर दी गई। आज यह सेट प्राय बिक जाने पर श्री जवाहर विद्यापीठ मे यह निर्णय किया गया कि किरणावलियो को नया रूप दिया जावे। इसके लिए सस्था के सहमत्री श्री तोलाराम बोथरा ने परिश्रम करके विषय–अनुसार कई किरणावलियो को एक साथ समाहित किया ओर पुन सभी किरणावलियो को 32 किरणो मे प्रकाशित करने का निर्णय किया गया।

ज्योतिर्धर श्री जवाहराचार्यजी म सा के साहित्य के प्रचार–प्रसार मे जवाहर विद्यापीठ, भीनासर की पहल को सार्थक और भारत तथा विश्वव्यापी बनाने मे श्री अ भा साधुमार्गी जैन सघ, बीकानेर की महती भूमिका रही। सघ ने अपने राष्ट्रव्यापी प्रभावी सगठन ओर कार्यकर्ताओ के बल पर जवाहर किरणावलियो के प्रचार–प्रसार और विक्रय–प्रबन्धन मे अप्रतिम योगदान प्रदान किया है। आज सघ के प्रयासो से यह जीवन–निर्माणकारी साहित्य जैन–जैनेतर ही नही अपितु विश्व–धरोहर बन चुका है। सघ के इस योगदान के प्रति हम आभारी हैं।

धर्मनिष्ठ, सुश्राविका श्रीमती राजकुवर बाई मालू धर्मपत्नी स्व डालचन्दजी मालू द्वारा आरम्भ मे समस्त जवाहर–साहित्य–प्रकाशन के लिए 60 000 रु एक साथ प्रदान किये गये थे जिससे पूर्व मे लगभग सभी किरणावलियॉ उनके सोजन्य से प्रकाशित की गई थी। सत्साहित्य–प्रकाशन के लिए बहिनश्री की अनन्य निष्ठा चिरस्मरणीय रहेगी।

प्रस्तुत किरणावली का पिछला सस्करण श्री जय धर्मेश फाउण्डेशन मद्रास के सोजन्य से प्रकाशित किया गया और प्रस्तुत किरण 25 (हरिश्चन्द्र) के अर्थ–सहयोगी श्री अमृतलालजी पगारिया हैं। सस्था सभी अर्थ–सहयोगियो के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करती हे।

निवेदक

चम्पालाल डागा
अध्यक्ष

सुमतिलाल बांठिया
मत्री

आचार्य श्री जवाहरलालजी म.सा.

जीवन–तथ्य

जन्म स्थान	थादला, मध्यप्रदेश
जन्म तिथि	वि स 1932, कार्तिक शुक्ला चतुर्थी
पिता	श्री जीवराजजी कवाड
माता	श्रीमती नाथीबाई
दीक्षा स्थान	लिमडी (म प्र)
दीक्षा तिथि	वि स 1948, माघ शुक्ला द्वितीया
युवाचार्य पद स्थान	रतलाम (म प्र)
युवाचार्य पद तिथि	वि स 1976, चैत्र कृष्णा नवमी
आचार्य पद स्थान	जैतारण (राजस्थान)
आचार्य पद तिथि	वि स 1976, आषाढ शुक्ला तृतीया
स्वर्गवास स्थान	भीनासर (राज)
स्वर्गवास तिथि	वि स 2000, आषाढ शुक्ला अष्टमी



आचार्य श्री जवाहरलालजी म. सा.

आचार्यश्री जवाहर–ज्योतिकण

+ विपत्तियो के तमिस्र गुफाओ के पार जिसने सयम–साधना का राजमार्ग स्वीकार किया था।
+ ज्ञानार्जन की अतृप्त लालसा ने जिनके भीतर ज्ञान का अभिनव आलोक निरतर अभिवर्द्धित किया।
+ सयमीय साधना के साथ वैचारिक क्राति का शखनाद कर जिसने भू–मण्डल को चमत्कृत कर दिया।
+ उत्सूत्र सिद्धातो का उन्मूलन करने, आगम–सम्मत सिद्धातो की प्रतिष्ठापना करने के लिए जिसने शास्त्रार्थो मे विजयश्री प्राप्त की।
+ परतत्र भारत को स्वतत्र बनाने के लिए जिसने गाव–गाव, नगर–नगर पाद–विहार कर अपने तेजस्वी प्रवचनो द्वारा जन–जन के मन को जागृत किया।
+ शुद्ध खादी के परिवेश मे खादी–अभियान चलाकर जिसने जन–मानस मे खादी–धारण करने की भावना उत्पन्न कर दी।
+ अल्पारभ–महारभ जैसी अनेको पेचीदी समस्याओ का जिसने अपनी प्रखर प्रतिभा द्वारा आगम–सम्मत सचोट समाधान प्रस्तुत किया।
+ स्थानकवासी समाज के लिये जिसने अजमेर–सम्मेलन मे गहरे चितन–मनन के साथ प्रभावशाली योजना प्रस्तुत की।
+ महात्मा गाधी, विनोबा भावे, लोकमान्य तिलक, सरदार वल्लभ भाई पटेल, प श्री जवाहर लाल नेहरू आदि राष्ट्रीय नेताओ ने जिनके सचोट प्रवचनो का समय–समय पर लाभ उठाया।
+ जैन व जैनेतर समाज जिसे श्रद्धा से अपना पूजनीय स्वीकार करता था।
+ सत्य सिद्धातो की सुरक्षा के लिये जो निडरता एव निर्भीकता के साथ भू–मडल पर विचरण करते थे।

"हुक्म संघ के आचार्य"

1. आचार्य श्री हुक्मीचदजी म सा – दीक्षा वि स 1870, स्वर्गवास वि.स 1917
ज्ञान-सम्मत क्रियोद्धारक, साधुमार्गी परम्परा के आसन्न उपकारी।

2 आचार्य श्री शिवलालजी म सा – दीक्षा वि स 1891, स्वर्गवास वि स 1933
प्रतिभा–सम्पन्न प्रकाण्ड विद्वान, परम तपस्वी, महान शिवपथानुयायी।

3 आचार्य श्री उदय सागरजी म सा – दीक्षा 1918, स्वर्गवास वि स 1954
विलक्षण प्रतिभा के धनी, वादी–मान–मर्दक, विरक्तो के आदर्श विलक्षण।

4. आचार्य श्री चौथमलजी म.सा. – दीक्षा 1909, स्वर्गवास वि स 1957
महान क्रियावान, सागर सम गभीर, सयम के सशक्त पालक, शात–दात, निरहकारी, निर्ग्रन्थ–शिरोमणि।

5 आचार्य श्री श्रीलालजी म.सा – दीक्षा 1944, स्वर्गवास वि.स 1977
सुरा–सुरेन्द्र–दुर्जय कामविजेता, अद्भुत स्मृति के धारक, जीव–दया के प्राण।

6 आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा – दीक्षा 1947, स्वर्गवास वि स 2000
ज्योतिर्धर, महान क्रातिकारी, क्रातदृष्टा, युगपुरुष।

7 आचार्य श्री गणेशीलालजी म सा – दीक्षा 1962, स्वर्गवास वि स 2019
शात क्राति के जन्मदाता, सरलता की सजीव मूर्ति।

8 आचार्य श्री नानालालजी म सा – दीक्षा 1996, स्वर्गवास वि स 2056
समता–विभूति, विद्वद्शिरोमणि, जिनशासन–प्रद्योतक, धर्मपाल–प्रतिबोधक, समीक्षण–ध्यानयोगी।

9 आचार्य श्री रामलालजी म सा – दीक्षा 2031, आचार्य वि स 2056 से
आगमज्ञ तरुण तपस्वी तपोमूर्ति उग्रविहारी, सिरीवाल–प्रतिबोधक व्यसनमुक्ति के प्रवल प्रेरक बालब्रह्मचारी प्रशातमना।

अर्थ–सहयोगी परिचय

श्रेष्ठीवर्य समतासाधक, शासननिष्ठ समाजसेवी, श्री अमृतलाल जी पगारिया

ससार मे अनेक व्यक्ति जन्म लेकर श्रेष्ठता को एव सपन्नता को प्राप्त करते है। लेकिन उन्ही श्रेष्ठियो का नाम धन्यता की श्रेणी मे आता है जो अपने लक्ष्मी का सद्पयोग सद्कार्यो एव सत्–साहित्य के प्रचार–प्रसार कर अपने जीवन को श्रेष्ठता की पगडडी पर आगे बढाते है। उन्ही व्यक्तित्व मे सम्मलित है जावरा निवासी जवाहर किरणावली के इस अक के अर्थ सहयोगी, उदारमना, परम् गुरुभक्त श्री अमृतलालजी पुत्र श्री राजमलजी पगारिया।

श्री अमृतलालजी पगारिया के बडे पिताजी श्री कुन्दनमलजी पगारिया बडे ही सरल व्यक्तित्व के धनी थे। आपकी माताजी श्रीमती सम्पतबाई धर्मपत्नी श्री राजमलजी पगारिया बडे ही सौम्य, सरल एव कुशल व्यक्तित्व की धनी थी। आपश्री साधुमार्गी जैन जवाहर सघ जावरा की वरिष्ठ श्राविका होकर सघ सेवा मे सदैव अग्रसर थी एव वैरागिन भाई–बहिनो तथा सत–सतियाजी म सा की सेवा मे अहर्निश लगी रहती थी।

आपके पिताजी नगर सेठ श्री राजमलजी सा पगारिया सरल स्वभावी तथा दयावान थे। आपने अनेक वर्षो तक जावरा साधुमार्गी सघ के अध्यक्ष पद को सुशोभित किया एव इस पद पर रहते हुए सघ उत्थान के लिए अनेक कार्य किए जो अपने आप मे स्वर्णित इतिहास है। आप आचार्यश्री जवाहराचार्य से लेकर आचार्यश्री नानेशाचार्य तक के अग्रणी श्रावको मे थे। आपने अनेक सेवा कार्य किए जिसमे उल्लेखनीय जवाहर पथ जावरा स्थित समता भवन का निर्माण आपके अथक प्रयासो से सुचारू रूप से हुआ एव जावरा आयबिल शाला (सूरज बाई पगारिया ट्रस्ट) का भवन भी आपके अथक प्रयासो से बना एव वर्षो तक आप उसके ट्रस्टी रहकर कोषाध्यक्ष पद पर बने रहे। आपने अपने जीवन काल मे धर्मपाल क्षेत्र मे सक्रिय योगदान दिया एव इसकी अनेक पदयात्राओ मे सम्मिलित हुए। आप शुभ–कार्यो मे हमेशा मुक्त हस्त दान देते थे। उसी प्रकार माता–पिता के सस्कारो से पल्लिवत होकर श्री अमृतलालजी पगारिया भी धार्मिक तथा सामाजिक सस्थाओ के सेवा कार्य मे अग्रणी रहे है। आप हमेशा वैरागी भाई–बहनो तथा सत–सतियाजी म सा की सेवा–सुश्रुषा

एव विहारचर्या मे भी अग्रणी रहते है। आपके सामाजिक कार्यो को देखते हुए सघ ने आपको जावरा सघ के महामत्री के रूप मे प्रतिष्ठित किया एव आपने जावरा साधुमार्गी सघ के महामत्री रहते हुए सघ सेवा के अनेक कार्य किए।

आपने अपने महामत्रित्व काल मे अथक प्रयास कर शुक्रवारिया महिला समता भवन का नव–निर्माण करवाया। आप आचार्य श्री गणेशाचार्य से लगाकर आचार्यश्री रामेशाचार्य तक अनन्य भक्त रहते हुए अ भा साधुमार्गी जैन सघ के "राष्ट्रीय मत्री पद पर" निरन्तर चार वर्षो तक सक्रिय रहे। राष्ट्रीय मत्री पद पर रहते हुए आपने "तीन मास खमण" किए। जो अ भा सघ के लिए अपने 47 वर्ष के इतिहास मे गौरवपूर्ण था। इसे देखते हुए सघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष आदरणीय श्रीमान् उमरावसिहजी ओस्तवाल मुबई ने राष्ट्रीय अधिवेशन के समय इन्दौर मे आपको "तप अलकरण" पुरस्कार से सम्मानित किया। आप हमेशा अतिथिवत्सल रहते है। आपने व्यावहारिक शिक्षा एम ए, एल एल बी तक प्राप्त की।

सघ सेवा के साथ सामाजिक कार्यो मे भी आप अग्रणी रहते है। आप रोटरी क्लब जावरा प्रान्त 3040 की विभन्न समितियो मे चेयरमेन पद पर रहकर जावरा "रोटरी क्लब के अध्यक्ष पद पर रहे। जावरा रोटरी क्लब अध्यक्ष पद पर रहते हुए "ग्रीन जावरा–क्लीन जावरा' का नारा देते हुए अनेक कार्य किए। जिससे रोटरी प्रान्त 3040 मे आपको बेस्ट प्रेसिडेन्ट के साथ बेस्ट क्लब इत्यादि एक साथ पाच प्रोजेक्ट अवार्ड प्राप्त किए। विश्व के किसी भी रोटरी क्लब को एक साथ पाच प्रोजेक्ट अवार्ड प्राप्त नही हुए। जो जावरा रोटरी क्लब के इतिहास मे स्वर्णिम अध्याय जोडा। इसी प्रकार "जीवदया सोसायटी के "सस्थापक', सरक्षक पद पर रहते हुए आज भी सहयोगी हे। आप पर्यावरण सरक्षण दल के सस्थापक सयोजक भी बने। आप स्थानीय "सर्राफा ऐसासिएशन' के गठन से आज तक उसके सरक्षक पद पर विद्यमान हे। आपके निवास पर हमेशा सामूहिक प्रार्थना होती हे।

इसी प्रकार आपकी सहधर्मिणी श्रीमती लीला देवी पगारिया भी सरल सुहृदयी मिलनसार, हसमुख व्यक्तित्व की धनी होकर सदेव सेवा कार्यो मे तल्लीन रहते हुए अ भा महिला समिति की कार्यकारिणी सदस्या हे।

आपके तीन पुत्र एव दो पुत्रिया है एव भरा–पूरा सस्कारवान सघ और शासननिष्ठ परिवार हे। आपके तीन पुत्र पैतृक सर्राफ व्यवसाय म सलग्न

रहते हुए निरतर कार्यरत है। आपके बडे सुपुत्र श्री ललितकुमारजी पगारिया सत–सतियाजी म सा की सेवा मे अग्रणी रहते है। दूसरे सुपुत्र श्री मुकेश कुमारजी जावरा साधुमार्गी सघ के सहमत्री पद पर रहकर अ भा समता युवा सघ रतलाम के पदो पर रहते हुए वर्तमान मे समता युवा सघ के राष्ट्रीय मत्री है। आप जावरा रोट्ररेक्ट क्लब के अध्यक्ष पद पर रहकर रोट्ररेक्ट Distt 3040 के D R R भी रहे।

तीसरे सुपुत्र श्री अजयकुमारजी सदैव जीवदया के सेवा कार्यो मे सलग्न रहते है। इसी प्रकार आपकी तीनो पुत्र–वधूए भी शासन समर्पणा मे सेवा मे अग्रणी है। आपके वर्तमान मे दो पौत्र तथा पाच पौत्रिया है। जिनमे एक पौत्र श्री ऐश्वर्य पुत्र श्री ललितजी पगारिया की धार्मिक रूचि देखते हुए अ भा साधुमार्गी जैन सघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष आदरणीय श्री पुखराजजी बोथरा ने कपासन दीक्षा अवसर पर बालरत्न पुरस्कार से अलकृत किया। पगारिया परिवार सदैव सुदेव, सद्‌गुरु एव सुधर्म पर विश्वास रखता आया है। इस प्रकार आपका पूरा परिवार गुरुभक्ति, समर्पणा, सेवा के सस्कारो से ओत–प्रोत होकर वर्तमान आचार्य श्री 1008 श्री रामलालजी म सा के प्रति अत्यत श्रद्धानिष्ठ एव समर्पित है।

युगदृष्टा युगपुरुष आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा के प्रवचनो की श्रृखला जवाहर किरणावली के उक्त भाग के सहयोगी के रूप मे आपने जो सहयोग प्रदान किया है यह आपकी उदार दृष्टि एव सघनिष्ठा का अनुपम उदाहरण है। समाज को आपसे काफी आशाए है। आशा है भविष्य मे भी आपका सहयोग इसी तरह प्राप्त होता रहेगा।

इन्ही मगल भावनाओ के साथ ।

अनुक्रम

1. मोही पति : विचारशील पत्नी

अवध के हरे–भरे प्रदेश मे सरयू नदी के किनारे बसी अयोध्या नगरी ो। एक तो वैसे ही नदी किनारे बसे प्रदेश मे नैसर्गिक सौन्दर्य होता है और फ़र उसमे भी जन–धन से समृद्ध अयोध्या नगरी की छटा तो निराली थी। स पवित्र नगरी को ही तीर्थकर भगवान ऋषभदेव,अजितनाथ, अभिनन्दन, ानन्तनाथ आदि जिनेश्वरो और मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जैसे महापुरुषो ो जन्म देने का सोभाग्य प्राप्त हुआ है।

सरयू के किनारे अयोध्या नगरी उपवन की तरह शोभित होती थी ौर इसके निवासी अपने सौन्दर्य एव नम्र स्वभाव से प्रफुल्लित पुष्प से प्रतीत ोते थे। उसी उपवन मे एक ऐसा भी पुष्प था जो स्वय अपने गुणो से ुगन्धित था और दूसरो को सुगन्धित कर रहा था। सारा ससार उस पुष्प ो मानता था और प्रशसा करता था नाम था उसका राजा हरिश्चन्द्र। जहा ाजा हरिश्चन्द्र अवध निवासियो मे प्रजा–पालन आदि कारणो से उत्कृष्ट ाने जाते थे वही उनमे दया, करुणा आदि गुण भी विशेष थे।

हरिश्चन्द्र को प्रजा प्यारी थी ओर प्रजा को हरिश्चन्द्र प्राणो के नमान प्रिय थे। सदा एक–दूसरे के कल्याण की चिन्ता करते थे और परस्पर ो एक दूसरे को दुखित करने का कभी विचार भी उत्पन्न नही होता था।

कहा जाता है कि राजा हरिश्चन्द्र श्री रामचन्द्रजी से 27 पीढी पूर्व उसी कुल मे उत्पन्न हुए थे जो अपनी सत्यवादिता और कर्त्तव्य–पालन के लेए प्रसिद्ध रहा है। यद्यपि राजा हरिश्चन्द्र उच्च कुल मे उत्पन्न हुए थे, ुद्धिमान थे ओर प्रजा की रक्षा मे तन–मन–धन से तत्पर रहते थे, तो भी ससार मे ऐसे मनुष्य बिरले ही मिलेगे जो युवावस्था को प्राप्त कर उन्मत्त न ान गए हो। युवावस्था के साथ–साथ यदि कही धन–वैभव का योग भी

प्राप्त हो तो कहना ही क्या? और उसमे भी राजसत्ता का योग तो करेला ओर नीम पर चढा जैसी बात हे। इसके बारे मे तो इतना कहना ही पर्याप्त हे कि–

यौवन धन सपत्ति प्रभुत्वमविवेकिता।
एकैकमप्यनर्थाय, किमुयत्र चतुष्टयम्।।

यौवन, धन–सम्पत्ति, प्रभुता ओर अज्ञानता इन मे से प्रत्येक अनर्थकारी है। लेकिन जहा चारो एकत्र हो, वहा की तो बात ही न पूछिये।

युवावस्था मे मत्त मनुष्य प्राय काम–भोगो मे विशेष रत रहता हे। कर्त्तव्याकर्त्तव्य का उसे बहुत कम ध्यान रहता है। उसका ध्यान तो सदेव स्त्रियो के सौन्दर्य, उनके हाव–भाव आदि पर ही रहता हे ओर विशेषकर उसका समय इन्ही कार्यों मे व्यतीत होता है। पुरुष को ऐसी अवस्था मे यदि स्त्री भी वैसी ही प्राप्त हो जाए जो युवावस्थावश काम–भोग की चेरी बन गई हो तो पुरूष के साथ वह स्वय भी विलास के गहरे गड्ढे मे जा गिरती हे ओर अपना तथा पति का नाश कर लेती है। किन्तु कही सावधान ओर विवेकशील हुई तो पति को विलास मे डूबने से बचा लेती हे और आप स्वय भी बच जाती है।

तो इस युवावस्था स्त्री पिशाचिनी ने राजा हरिश्चन्द्र को भी धर दबाया था, विलासप्रिय बना दिया था। परन्तु परस्त्री की ओर उनको आकर्षित करने मे असमर्थ रही। हा, अपनी नवोढा परम सुन्दरी रानी तारा के मोहपाश मे अवश्य ही ऐसे बध गये थे कि उन्हे बिना तारा के सारा ससार सूना–सूना दिखलाई देता था। तारा उनकी आख का तारा बन गई थी ओर बिना तारा के एक घडी कटना भी मुश्किल समझते थे। केवल स्त्री–सुख को ही सुख मान बैठे थे। उठते–बेठते, खाते पीते उन्हे तारा ही तारा की धुन लगी रहती थी। राज्य मे क्या होता हे, कर्मचारी प्रजा के साथ केसा व्यवहार करते हे ओर प्रजा सुखी है या दु खी आदि बातो की उन्हे कुछ भी परवाह नही रही थी।

जब राजा स्वय प्रजा की ओर से उदासीन होकर विलास–मग्न हो जाता हे तब प्रजा ओर देश की क्या दशा होती हे, इसके इतिहास मे अनेक उदाहरण मिलते हें। यहा पर भारत सम्राट पृथ्वीराज चोहान ओर महाराणा उदयसिह का नाम ले लेना ही पर्याप्त हे। हरिश्चन्द्र के विलासी बन जाने ओर राजकाज न देखने से भी यही दशा होने लगी। प्रजा का धन शोषण करके कर्मचारी अपना घर भरने लगे ओर उसके सुख–दु ख की चिन्ता करन वाला कोई नहीं रहा।

महाराज हरिश्चन्द जैसे तैसे विलास–मग्न होते जा रहगे थे, वैसे ही वैसे उनकी कान्ति, सुन्दरता, वीरता, धीरता, बुद्धिबल आदि का भी नाश होता जा रहा था। किसी कवि ने कहा है–

कुरग मातग पतग भृङ्ग मीना हता पचभिरेव पच।
एक प्रमादी सकथ न हन्यते य सेवते पचभिरेव पंच।।

मृग श्रवण के विषय–सुख से, हाथी स्पर्शनेन्द्रिय के विषय–सुख से, पतग नेत्र के विषय–सुख से, भ्रमर नाक के विषय–सुख से और मछली जीभ के सुख से नाश को प्राप्त होता है तो जो मानव इन पाचो ही इन्द्रियो के विषयो का एक साथ सेवन करता है, वह बेचारा क्यो न बेमौत मरेगा।

महाराजा हरिश्चन्द पाचो इन्द्रियो के वश हो एक प्रकार से अध पतन के गहरे गड्ढे की ओर जा रहे थे। उनको कुछ भी ध्यान नही था कि मै किस ओर जा रहा हू। वे तो यही सोचते थे कि ससार मे ऐसा और इससे बढकर दूसरा सुख है ही नही। वे तो पतन मे ही आनन्द समझ रहे थे।

यद्यपि राजा हरिश्चन्द्र तो विलासप्रिय बन चुके थे लेकिन पति की अनुगामिनी होने पर भी तारा चतुर और विवेकशील थी। पति की दशा को देख तथा दासियो के मुख से प्रजा के दु ख, कर्मचारियो के अन्याय और राज–काज न देखने के कारण प्रजा द्वारा पति की निन्दा सुन रानी ने विचार किया कि जिस प्रजा के पीछे पति–राजा और मै रानी कहलाती हू, जिसके धन का हम उपभोग करते है, उस प्रजा के दु ख दूर कर रक्षा करना पति का ओर उनके साथ ही मेरा कर्त्तव्य है। लेकिन यह न कर अपने मजामौज मे पडे रहना तो हमारे लिये नरक मे ले जाने की बात है। पति मेरे ही कारण से बाहर नही निकलते हैं, मेरे ही सौन्दर्य पर वे मुग्ध हो रहे हैं, अत मुझे और मेरे रूप, यौवन को धिक्कार हे जो पति को इस प्रकार चक्कर मे डालकर कर्तव्यभ्रष्ट कर रहा है तथा इस लोक मे कलकित और परलोक मे दण्डनीय बना रहा हे। मेरे ही कारण आज सूर्यवश की अखड कीर्ति मे कलक लग रहा हे। जिन पति की आकृति देखते ही बनती थी, जिनका चेहरा गुलाब के फूल की तरह सदा खिला रहता था, जिनका शरीर हृष्ट–पुष्ट ओर सुडोल था, उनकी आज क्या दशा हे? इस समय वे केवल श्रृगार से ही सुन्दर दीखते है, वास्तविक सुन्दरता तो उन्हे छोड गई हे ओर इसका कारण मे ही हू। मेरा ख्याल ही पति के चन्द्र समान सुखदायक सौन्दर्य को कलकित कर रहा हे। लेकिन क्या प्रेम ऐसी निकृष्ट वस्तु हे? क्या प्रेम सौन्दर्य का इस प्रकार घातक है? क्या प्रेमी मनुष्य कर्तव्य–पथ पर स्थिर नही रहता? नही नही, ऐसा नही हे। यदि

प्रेम ऐसा होता तो ससार मे कोई उसका नाम ही न लेता। प्रेम! प्रेम तो वह वस्तु है जो उन्नति की ओर अग्रसर करता है, तेज, ओज, उत्साह ओर ज्ञान की वृद्धि करता हे, उदारता ओर गभीरता को बढाता है एव अपने कर्त्तव्य पथ से कभी विचलित नही होने देता है।

इन्ही विचारो के बीच रानी गभीर चिन्ता–सागर मे निमग्न हो गई। वह सोचने लगी कि जब प्रेम बुरा नही है तो पति की ऐसी दशा होने का कारण क्या है? क्या स्त्री–प्रेम बुरा है? क्या स्त्रियो का प्रेम इतना निकृष्ट हे? क्या स्त्रियो का जीवन इतना अधम हे कि उनसे प्रेम करने वाला मनुष्य पतित हो जाता है? क्या स्त्रियो का प्रेम पुरुष के यश रूपी चन्द्रमा के लिये राहु सदृश है? लेकिन ऐसा होता तो ससार मे कोई स्त्री का नाम भी न लेता। स्त्रियो को सदा विष के समान त्याज्य समझा जाता। तो फिर, मेरे पति के गौरव और सौन्दर्य पर कलक लगने का कारण क्या है?

विचारते–विचारते रानी को प्रतीत हुआ कि इस कलक का कारण प्रेम नही, मोह है। जिस प्रेम के लिए पति–पत्नी का सबध स्थापित हे, वह तो तेज, उत्साह आदि का नाशक नही, अपितु वर्धक हे। जो तेज, उत्साह आदि का नाश करे, अज्ञानता, अकर्मण्यता आदि की वृद्धि करे, जिसके होने पर मनुष्य किसी एक वस्तु–विशेष के सिवाय ससार के दूसरे सत्कार्यो से दूर हो जाए, जो मनुष्य की मनुष्यता को लोप कर दे, उसका नाम तो मोह है। लेकिन अब तक मै इस बात को नही समझ सकी और मेरी यह भूल ही पति के यश–चन्द्र मे कलक लगाने वाली सिद्ध हुई हे। अत मेरा यह कर्तव्य हो जाता है कि मै पति के मोह को दूर कर उन्हे सन्मार्ग पर स्थिर करू ओर उनके, अपने एव गौरवशाली कुल के कलक को धो डालू।

पत्नी पति की सेविका की तरह शिक्षिका भी हो सकती हे। अच्छे कार्यो मे पति की सेवा करना और बुरे कार्यो से बचाना पत्नी का कर्तव्य हे। इसी कारण पत्नी ही पति की धर्म–सहायक मानी गई हे। कर्तव्य पर स्थिर रहना ही धर्म हे ओर उसमे सहायता देना पत्नी का प्रथम कर्तव्य हे। पति को अकर्तव्य से हटाकर कर्तव्यपथ पर स्थिर करने का दायित्व पत्नी पर हे। इसी प्रकार पुरुष भी पत्नी को सुमार्ग पर लाने का जिम्मेदार हे।

अपने प्रति पति के सम्मोहन ओर प्रजा के सुख–दु ख आदि की आर से वेखवर होने की वात से रानी सिहर उठी एव प्रजा की दशा जानन के लिए विकल हो गई। उन्होंने गुप्त रीति से प्रजा के सुख–दु ख ओर राजा के वारे मे उसकी भावना जानने के लिए दासिया को नगर म भेजा।

नगर मे चारो और राज्य की दुर्व्यवस्था की निन्दा हो रही थी। लोग कहते थे कि रानी के प्राप्त होने पर तो राजा को राज्य की दशा सुधारना चाहिए थी, पजा को सुखी बनाने का प्रयत्न करना चाहिए था और राजकाल देखना चाहिए था। परन्तु इसके विपरीत रानी के मिलते ही राजा विषय–लम्पट बन गया हे। राज्य का कार्य तो नोकरो के भरोसे छोड रखा हे। उसकी नजर तो केवल रानी को ही ताका करती है।

राजा ओर पजा मे पिता–पुत्र का सा सबध होता है। पुत्र यदि अनीति करता है या अपने कर्तव्य से पतित होता है तो पिता उसे शिक्षा द्वारा ऐसा करने से रोकता हे और पिता अपने दायित्व से विमुख और अनीति मे प्रवृत्त हो तो पुत्र के लिये भी पिता के ऐसे कार्यो का विरोध करने की धर्माज्ञा है। उस समय की प्रजा अपने और राजा के कर्तव्य को जानती थी, इसलिए उसे अपनी ही स्त्री के मोहजाल मे फसे राजा की कटु आलोचना करने मे कुछ भी भय नही हुआ। लेकिन आज की प्रजा को अपने व राजा के कर्तव्य का ज्ञान न होने से वह राजा के अनेक अन्यायो का भी विरोध नही करती हे। अन्यायी कहने का साहस भी नही कर सकती हे।

दासियो ने नगर मे घूमकर जो कुछ देखा और सुना वह सब रानी को कह सुनाया। प्रजा की भावना ओर बातो को सुनकर रानी उसकी प्रशसा करने लगी एव पति को भान मे लाने के लिए अधीर हो उठी। लेकिन इसके साथ ही उन्हे एक दूसरी चिन्ता ओर हो गई कि पति के मोह को किस प्रकार दूर किया जाए? अन्त मे सोचते–सोचते उन्हे उपाय सूरु ही गया और वे उसे कार्य रूप मे परिणत करने के लिए तत्पर हो गई।

बडे आदमियो को कुमार्ग से सुमार्ग पर लाना उतना ही कठिन हे जितना सूखी लकडी को झुकाना ओर फिर उसमे भी राजाओ को सुधारना तो ओर भी कठिन हे जो अपनी हठ के लिए प्रसिद्ध हें। लेकिन उद्योगी मनुष्य के लिए कोई भी कार्य असभव नही हे। उनका तो सिद्धान्त रहता हे–

' शरीर वा पातयामि, कार्य वा साधयामि।''

या तो कार्य सिद्ध करके ही रहेगे अथवा उसी पर मर मिटेगे।

2. रानी का निश्चय

मानवोत्तम नरो को सुधारने और सुमार्ग पर लाने के लिए स्वय कष्ट सहन किया करते है। जितने भी महापुरुष हुए हैं, उनके जीवन–चरित्रो से यह बात भली प्रकार सिद्ध है कि उन्होने जो दु ख उठाया हे। स्वय कष्ट सहकर, त्याग दिखाकर एव आचरण कर जो उपदेश दिया जाता हे, जो आदर्श उपस्थित किया जाता है, उसका प्रभाव अचूक और स्थायी होता हे। लेकिन दूसरो को ही उपदेश देने मे कुशल लोगो के उपदेश निरर्थक सिद्ध होते हें तथा उनसे कोई लाभ नही होता हे। आज के अधिकाश उपदेशक शिक्षक, अधिकारी और नेता इसी दोष के कारण अपने उपदेशो द्वारा सुधार करने तथा जनता को सुमार्ग पर लाने मे असफल सिद्ध हुए हे। बहुत से लोग दूसरो के दुर्गुण मिटाने के लिए स्वय भी दुर्गुणो से काम लेते हे। लेकिन दुर्गुण से दुर्गुण मिटते नही वरन् बढते हे। आज के अधिकाश पति–पत्नी भी एक दूसरे के दुर्गुणो को दूर करने के लिए किसी–न–किसी दुर्गुण से ही काम लेते सुने जाते हे। लेकिन ऐसा करने पर वे असफल ही नही होते बल्कि दुर्गुणो की वृद्धि मे सहायक ही बनते है। सद्गुण ही दुर्गुणो को नाश करने मे समर्थ हे ओर सद्गुणो की सहायता से ही मनुष्य दुर्गुणो को छुडाने के कार्य मे सफल हो सकता हे।

रानी विचार करती हे कि प्राणनाथ को मोह मे फसाने, उन्हे अपने कर्तव्य से पतित करने उनके शारीरिक सोन्दर्य ओर नेसर्गिक गुणो का नाश करने का कारण में ही हू। मेरी हसी, मेरा श्रृगार मेरा राग–रग पति के लिए घातक हुआ हे। मोह के नाश का उपाय त्याग हे। अत मे त्याग को ही अपनाऊगी ओर विलासकारी कार्यो से विरक्त हो अपने प्राणाधार को मोह के दलदल से निकाल कर दिखला दूगी कि स्त्री–प्रेम केसा होता हे? स्त्रिया क्या कर सकती ह आर स्त्रियो का क्या कर्तव्य हे? अपन पति का मोहावस्था स

जागृत करूगी। मैं वैरागिन तो नही बनूगी परन्तु उस शृगार को अवश्य त्याग दूगी जो मेरे पति को, मेरे ससुर के निर्मल वश को, एक राजा के कर्तव्य को और पुरुष के पुरुषार्थ को कलकित कर रहा है। पति मुझे प्राणो से भी प्रिय है, वे मेरे पूज्य है अत उनसे प्रेम नही त्यागूगी। लेकिन उनकी मोहनिद्रा को भग करने, उन पर लगे कलक को धो डालने के लिए मै कष्ट सहकर भी पति को कर्तव्यपरायण बनाऊगी। उनकी गणना नीतिज्ञ तथा प्रजावत्सल नरेशो मे कराऊगी। साथ ही स्त्रीजाति के लिए आदर्श उपस्थित कर दूगी कि अपने आराध्यदेव पति को किस प्रकार नम्रता, त्याग और तपस्या से सन्मार्ग पर लाया जा सकता है। मै अपने पति की हित–कामना से उनकी शिक्षिका बनूगी और शिक्षा ऐसी दूगी कि जिससे वे स्वय ही मेरी प्रशसा करे।

कहा तो आज की वे स्त्रिया जो पति को अपने मोह–पाश मे आबद्ध रखने के लिए अनेक उपाय करती हैं, जादूटोना कराकर पति को वश मे रखने की चेष्टा करती है और फिर उसे अपने वश मे पाकर, अपना आज्ञाकारी सेवक जानकर प्रसन्न होती हैं, अपना गौरव समझती हैं और फिर अपने दोनो जन्मो के सर्वनाश का कुछ भी ध्यान नही रखती हैं। लेकिन कहा तारा जो अपने पति को अपने मोहपाश मे छुडाने, उसे कर्त्तव्य–पथ पर स्थिर करने और कलक से बचाने का उपाय कर रही है। तारा के समान स्त्रियो ने ही आज भारतीय स्त्री का गौरव रखा है।

देखते ही देखते रानी ने उन वस्त्राभूषणो को जिनके धारण करने पर उसकी सुन्दरता सोने मे सुगन्ध की तरह बढ जाती थी, जो उसे विशेष प्रिय थे, जिन्हे अपने रूप–लावण्य की वृद्धि मे सहायक मानती थी, एकदम उतारकर फेक दिया और ऐसे साधारण वस्त्राभूषण पहन लिए जिनसे कभी प्रेम भी नही करती थी। उसके हसते और प्रफुल्ल चेहरे पर गभीरता छा गई।

ऐसी वेशभूषा देख दासिया घबरा गई और आश्चर्यचकित हो वे रानी से सविनय पूछने लगी कि– आज आप यह क्या कर रही हैं? आपके स्वभाव तथा आकृति के इस अचानक परिवर्तन का कारण क्या है? रानी से इसका उत्तर न पाकर वे कहने लगी कि आप इन्हे धारण कर लीजिए और अपनी गभीरता का कारण बतलाइए।

लेकिन रानी के मन मे तो आज दूसरी ही बात घुमड रही थी। आज उसने तो अपना कुछ कर्त्तव्य निश्चित कर लिया था। इसलिए उसने दासियो पर कृत्रिम क्रोध प्रगट करते हुए कहा कि–मुझे इनकी आवश्यकता नही है और भविष्य के लिए भी मै तुम्हे सचेत किए देती हू कि मेरे पास ऐसी कोई वस्तु नही आए।

रानी के स्वभाव मे इस प्रकार का आकस्मिक परिवर्तन देख ओर उत्तर सुन दासियो की घबराहट ओर भी बढ गई। वे ऐसा करने के कारण का भी अनुमान नही लगा सकी कि आज रानी को क्या हो गया है जो योगिनियो की तरह वैराग्य–दशा धारण की है और इस प्रकार गभीर बन गई है। इसकी सूचना राजा को देने के लिये दासिया दौडी गई। सवाद पाते ही राजा चिन्ता मे निमग्न हो महल मे आए ओर इस दशा को देख राजा की चिन्ता व आश्चर्य का पार न रहा। रानी की मुखमुद्रा देख राजा विचारने लगे कि आज जैसा चेहरा तो मेने कभी नही देखा था। इस परिवर्तन का कारण क्या है?

ऐसे पुरुषो के बारे मे कहा जाता है कि कितना ही वीर क्यो न हो, किन्तु वह कामी है तो प्रिय स्त्री को रुष्ट जानकर अवश्य ही घबरा जाता हे और उसका धैर्य छूट जाता है। इसीलिए किसी कवि ने कहा हे–

व्याकीर्ण वे शर करालमुखा मृगेन्द्रा, नागाश्च भूरि मदराजिविराजमान ।
मेधाविनश्च पुरुषा समरेषु शूरा ,स्त्री सन्निधौ परम कापुरुषा भवन्ति।।

गर्दन पर बिखरे हुए बालो वाले करालमुखी सिह, मदोन्मत्त हाथी और बुद्धिमान समरशूर पुरुष भी स्त्रियो के आगे परम कायर हो जाते है।

राजा हरिश्चन्द्र भी रानी की इस दशा को देखकर सहम उठे ओर कामी पुरुषो के स्वभावानुसार डरते–डरते रानी से पूछा–आज क्या हुआ हे तुम्हे?

तारा– क्या हुआ है नाथ! आज यह प्रश्न किस बात को देखकर आप कर रहे हें?

हरिश्चन्द्र– जिस शरीर को तुम सदा सजाए रहते थी, जो अग–प्रत्यग आभूषणो से लदे रहते थे, वे आज शृगार ओर आभूषणो से विहीन क्यो हें? तुम्हारा प्रफुल्लित मुख आज गभीर क्यो? मेरे मन को आकर्षित करने वाली मधुर मुस्कान आज कहा छिप गई? इस रूप को देखकर उत्सुकता हो रही है कि ऐसी निष्ठुरता क्यो धारण कर ली ओर ऐसी उदासीनता का कारण क्या हे?

तारा–स्वामिन्! वस करो। झूठा प्रेम जताने के लिए ऐसी प्रशसा मत करो।

हरिश्चन्द्र–झूठा प्रेम केसा! क्या मेरा यह कृत्रिम प्रेम हे? क्या मे तुमसे प्रेम नही करता हू?

तारा–स्वामिन्! यदि आप मुझसे सच्चा प्रम करते होते तो आज एसा कहने का अवसर ही क्यो आता?

हरिश्चन्द्र–कैसे जाना तुमने कि मैं प्रेम नही करता हू। आज तुम्हे मेरे प्रति ऐसी शका होने का कारण क्या है? तुम्हारे ऊपर तो मैने सारा राजपाट ही न्यौछावर कर दिया है। सदा तुम्हारे प्रेम का भिखारी बना रहता हू। तुम्हारे प्रेम के लिए ससार को भी कुछ नही समझता और विशेष तो क्या कहू, यदि आराध्यदेवी हो तो तुम्ही हो। फिर यह शका कैसी?

तारा–स्वामी! अब मैं आपके झूठे भुलावे मे नही आ सकती। जो अब तक समझती रही, वह तो मेरा केवल एक भ्रम था।

रानी की बाते सुनकर राजा हरिश्चन्द्र विचार मे पड गये। उत्तर देना तो दूर रहा, जो कभी सन्मुख भी नही बोलती थी, उस रानी को आज क्या हो गया है? राजा ने दासियो से भी कारण जानना चाहा, किन्तु वे क्या उत्तर देती? राजा ने बहुत विचारा लेकिन कारण उसकी समझ मे नही आया। अत विवश हो पुन रानी से पूछा– आज तुम्हारा मन कैसा है?

तारा– क्या मैने आपसे कोई दुर्वाक्य कहे है या कोई विक्षिप्तता की बात कही है जो आपने ऐसा प्रश्न किया?

हरिश्चन्द्र– यदि तुम्हारे मन मे कोई विषमता न होती तो ऐसी बातो और व्यवहार का कारण क्या हे?

तारा– मैं भ्रमवश आपके जिस अनादर को आदर और जिस व्यवहार को प्रेम समझती थी, उसका असली तत्त्व तो अब मैं समझ सकी हू। वह मेरा भ्रम था। अब मै समझ पाई हू कि आपकी दृष्टि मे मेरा उतना भी आदर नही है जितना एक दासी का होता है ओर मेरे प्रति प्रदर्शित प्रेम असली नही, बनावटी है।

हरिश्चन्द्र– मुझे तो याद नही कि कभी मैने तुम्हारा अनादर किया हो। तुमने किस समय परीक्षा ली जब मेरा प्रेम बनावटी सिद्ध हुआ हो? जब मेरे जीवन का आधार तुम्हारा प्रेम है तो फिर में बनावटी प्रेम कैसे कर सकता हू? क्या मेंने तुम्हे कभी अपशब्द कहे हैं? यदि नही, तो फिर कैसे जाना कि मै तुम्हारा निरादर करता हू और सच्चा प्रेम नही करता हू।

तारा–स्वामी! मेरी इच्छित वस्तु मेरे श्रृगार, मेरे आभूषण आप ही है तो मुझे अन्य वस्तुओ की क्या आवश्यकता है? लेकिन यदि आपका मुझ पर सच्चा प्रेम है ओर मेरा सम्मान करते हैं, आपके हृदय मे मेरे लिए स्थान हे तो परीक्षा के लिए आज मै छोटी–सी प्रार्थना करती हू। यदि आप मेरा मनोरथ पूर्ण कर देगे तो समझ जाऊगी कि यह मेरी भूल थी और उसके लिए पश्चात्ताप भी कर लूगी।

हरिश्चन्द्र– बस इतनी सी बात! तो बताओ अपना मनोरथ। यदि में तुम्हारी इच्छित वस्तु लाने मे असमर्थ रहा तो अपने आपको अयोग्य समझूगा।

तारा–अच्छा हो कि प्रण करने के पहले आप एक बार पुन विचार कर लीजिएगा।

हरिश्चन्द्र– मै सोच चुका, अच्छी तरह विचार कर चुका। तुम तो अपनी इच्छा बतलाओ।

तारा–प्रभो! अपनी प्रार्थना सुनाने से पहले मै भी अपना प्रण सुनाए देती हू कि जब तक मेरी प्रार्थना स्वीकार न होगी, मेरी इच्छित वस्तु प्राप्त न होगी, तब तक मै आपसे भेट नही करूगी।

हरिश्चन्द्र–तुम्हारा प्रण मुझे स्वीकार है। अब तुम अपनी इच्छा प्रगट करने मे देर न करो।

इन बातो से राजा ने समझा कि रानी किसी वस्त्राभूषण की इच्छुक है और प्राप्त करने के लिए ही यह मान का प्रपच रचा गया है। लेकिन उन्हे मालूम नही था कि वह यह सब उसे जागृत करने के लिए कर रही है।

हरिश्चन्द्र के बार–बार उत्सुकता प्रगट करने पर रानी ने कहा–प्राणनाथ! मुझे एक ऐसे मृग–शिशु की आवश्यकता है जिसकी पूछ सोने की हो। मै जब उससे रोहित का खेल कराऊगी तभी उसके लाभ भी आपको बतलाऊगी।

हरिश्चन्द्र–बस इतनी सी बात! यही छोटी सी बात मेरे प्रेम की परीक्षा है। मैं ऐसे एक नही अनेक मृगशिशु मगाए देता हू।

तारा–नही, नाथ, मैं तो दूसरे से मगवाया हुआ मृगशिशु नहीं लूगी। मै तो वही लूगी, जिसे आप स्वय लाए।

हरिश्चन्द्र–अच्छी बात, में स्वय ही ला दूगा।

तारा–लेकिन स्वामी, एक ओर बात हे कि आप मेरे निवासस्थान मे उसी समय पधारे जब मेरी इच्छित वस्तु प्राप्त कर चुके।

राजा आवेशवश इस बात का उत्तर ठीक हे कह कर चल दिए। उन्हे विश्वास था कि में रानी की परीक्षा मे असफल नहीं रह सकता ओर सोने की पूछवाला मृगशिशु पकडकर अवश्य ला दूगा। लेकिन उन्होने इस बात का तो विचार ही नही किया कि रानी जेसा मृगशिशु माग रही हे, वेसा इस ससार मे होता भी है या नही। उनके दिमाग मे तो यही एक विचार घूम रहा था कि मैं शीघ्र रानी की इच्छा पूर्णकर पुन उसका प्रेम प्राप्त करू।

मामिनी के मान का अभिप्राय राजा को कष्ट मे डालना नही था वरन् इस बहाने महल की चहारदीवारी से बाहर निकाल शुद्ध सात्विक वातावरण मे ले जाना था, वन की वायु वन के दृश्य और वनभ्रमण के लाभ से परिचित कराना था।

रानी का विचार था कि महल मे पडे रहने के कारण राजा की जो काति घट गई है, जो उत्साह नष्टप्राय हो गया है वह वन मे कुछ समय रहने से वृद्धिगत होगा। वनो के दु खो को सहने से उन्हे दु खो का अनुभव होगा और साथ ही मुझ पर जो मोह है वह भी कम हो जाएगा।

3. प्रणपूर्ति के लिए प्रयत्न

वस्तु का आदर उसकी न्यूनता मे होता है। जिन भोजन वस्त्रादि को धनिक लोग तुच्छ समझते हैं, वे ही दीनो के लिये महान् हें ओर प्राप्त होने पर उनका सत्कार करते है एव अपने को धन्य मानते है। तात्पर्य यह हे कि वस्तु की न्यूनता आदर का कारण है। छाया का सुख वही जान सकता हे जो ताप के दु ख का अनुभव कर चुका हो।

महाराजा हरिश्चन्द्र सोने की पूछ वाले मृग को खोजने वन मे पहुचे। वहा की सघन छाया, शीतल हवा ओर पक्षियो के कलरव से राजा का मन बहुत ही प्रसन्न हुआ और विचारने लगे कि मेने महलो मे रहकर जो पखे झलवाये, गीत–वाद्य सुने, वे इस प्राकृतिक पवन ओर पक्षियो के गान के समक्ष तुच्छ है।

मनुष्य के विचारो का प्रभाव उसकी आकृति पर पडे बिना नही रहता। शिकारियो को देखकर चोकडी भरने वाले हरिण अस्त्र–शस्त्र से सुसज्जित राजा को देखते हुए भी इस प्रकार निर्भय थे मानो पाले हुए हो। राजा को देख वे ऐसे प्रसन्न हो रहे थे मानो परिचित हो ओर स्वागत के लिये खडे हो। अस्त्र–शस्त्र से सुसज्जित राजा का इन्हे किचित् भी भय नही था और जेसे इन्हे भी हिसक–अहिसक, उपकारी–अपकारी ओर वधिक तथा रक्षक का ज्ञान हो या उसकी आकृति से ये समझ लेते हो।

महाराज हरिश्चन्द्र इन मृगो की तुलना रानी के नेत्रो से करते हुए विचारने लगे कि जिनकी उपमा देकर में रानी को मृगनयनी कहा करता हू, उन दोनो मे तो वडा अन्तर हे। कहा तो इन वेचारे मूक पशुओ के निष्कपट नेत्र और कहा वे रानी के कपट से भरे नेत्र! कहा तो इनके नेत्रो मे भरा हुआ प्रेम का सरोवर ओर कहा रानी के नेत्रा की वह निष्ठुरता। कहा ये नेत्र जो मुझे देखकर अपने का सफल मान रहे हे ओर कहा वे नेत्र जो अनुनय–विनय

करने पर भी मेरी ओर नही देखते तथा कभी–कभी जिनसे क्रोध बरसता है। हाय–हाय! मेने इन नेत्रो की उपमा रानी के नेत्रो को देकर बडा ही अन्याय किया है।

ऐसे ही विचारो मे उलझे महाराज हरिश्चन्द्र को जब अपने कार्य का ध्यान हुआ तो वे मृगो के उस झुण्ड मे सोने से पूछ वाला मृग खोजने लगे, परन्तु उनमे एक भी दिखाई न दिया जिसकी पूछ सोने की हो। राजा उसी की खोज मे जेसे–जैसे आगे बढते जाते थे, वैसे–वैसे वनश्री के प्राकृतिक सौन्दर्य को देख–देखकर प्रसन्न हो रहे थे। शीतल सुगन्धयुक्त पवन राजा मे एक नवीन स्फूर्ति उत्पन्न कर रही थी ओर रानी के व्यवहार से उत्पन्न मानसिक खेद मिटता जा रहा था।

यद्यपि वन मे राजा के हृदय को शाति प्रदान करने वाले दृश्यो की कमी नही थी किन्तु राजा पूर्णतया आनदित न हो सके। रह–रहकर उन्हे रानी के व्यवहार की याद आ जाती थी और किये गये प्रण का स्मरण आते ही उसे पूर्ण करने के लिए अधीर हो उठते थे। चलते–चलते वे कलकल करते हुए अबाधगति से बह रहे झरने के समीप पहुचे। उसके तट के सघन वृक्षो पर विश्राम करने के लिए बैठे हुए पक्षियो का कलरव मानो अपने उपकारी वृक्षो ओर झरने की प्रशसा कर रहा था। प्यासे पशु झरने के जल को पीकर ऐसे सन्तुष्ट हो रहे थे जैसे किसी महादानी से दान से भिक्षुक सन्तुष्ट हो जाते है।

यद्यपि राजा महल की अपेक्षा यहा अधिक प्रसन्न दिखाई पडते थे परन्तु भूख ओर घूमने–फिरने के परिश्रम से हृदय कुछ खिन्न हो गया था और झरने के किनारे पहुचकर एक वृक्ष की छाया मे चट्टान पर बैठ गए एव झरने के जल व वृक्षो के फलो से अपनी भूखप्यास मिटाकर विचारने लगे।

झरने! तू अपनी गति और शब्द से केवल मुझे ही नही बल्कि सारे ससार को एक शिक्षा दे रहा है। मेरे आने से पहले भी तू इसी प्रकार से बह रहा था और मेरे आने पर भी वैसे ही बह रहा है तथा जब मै चला जाऊगा, तब भी अपनी गति मे अन्तर नही आने देगा। इससे प्रगट है कि न तो तुझे मेरे आने से कोई हर्ष हुआ ओर न मेरे जाने से तुझे किसी प्रकार का विषाद ही होगा। तू सर्वथा अपनी गति, अपने सगीत को एक ही रूप मे रखता है। किनारे पर लगे हुए हरे–भरे वृक्षो की सम्पत्ति पर न तो तुझे अभिमान होता है और न तेरे निर्मल जल को मलिन बनाने वालो पर क्रोध ही। सिर्फ प्राकृतिक नियमो का पालन करते हुए और पहाड पत्थरो आदि की बाधाओ से किंचित् भी भयभीत हुए बिना अविराम गति से बह रहा हे ओर सबको अपना अनुकरण करने का बोध दे रहा हे।

तेरे सगीत–सा सगीत मैंने रानी का भी सुना है। परन्तु जो सरलता तेरे सगीत मे है वह रानी के सगीत मे नही मिली। तू स्वाभाविक सरलता से अपना शब्द सुनाता हे और रानी कृत्रिम सरलता से। तू सदा राग आलापता है ओर रानी मेरे कहने पर आलापती हे। हे जल स्रोत! तू अपना अकृत्रिम नाद सुनाकर सबको कृत्रिम नाद से बचने का उपदेश देता है।

प्रिय मित्र! कल तक मे जिस नाद के सुनने मे आनन्द मानता था वह कृत्रिम था, इस बात को मे आज तेरी सहायता से ही समझ सका ओर यह अवसर मुझे रानी की कृपा से ही प्राप्त हुआ हे। रानी का कहना कि आप मेरा तिरस्कार करते हैं–ठीक था। वास्तव मे आज तक में व रानी एक दूवसरे का अपमान ही करते रहे। हम दोनो ने कभी भी तेरे जल और शब्द की तरह निर्मल और अकृत्रिम बात नही कही। यह तो एक प्रकार से अपमान ही था। समवत तुझसे उपदेश प्राप्त करने के लिए ही रानी ने मृगशिशु लाने के बहाने मुझे यहा भेजा हो।

यकायक राजा को ध्यान आया कि में आया तो हू सोने की पूछ वाले मृग की खोज मे ओर बैठ गया यहा आकर अत मुझे अपने प्रण को पूर्ण करने का उपाय करना चाहिये। यहा बैठने से काम नही चलेगा।

राजा वहा से उठे ओर वन की छटा, भोरो की गुनगुन, हिसक पशुओ की गर्जना ओर पक्षियो की किलोल–क्रीडा को देखते–सुनते सोने की पूछ वाले मृग–शिशु की खोज मे चल पडे। छह दिन तक सारा वन छान मारा, परन्तु उन्हे ऐसा एक भी मृग–शिशु दिखलाई न दिया, जिसकी पूछ सोने की हो।

सातवे दिन राजा को अपना प्रण पूर्ण न कर सकने का बहुत ही खेद हुआ। वे निराश होकर सोचने लगे कि मे एक क्षत्रिय होकर भी स्त्री को दिये हुए वचन का पालन न कर सका। रानी! तेरी आकृति को देखने से तो ऐसा नही जान पडता था कि तू ऐसी अप्राप्य वस्तु के लिए मुझे कष्ट मे डालेगी। यह निष्ठुरता तेरे हृदय मे कहा छिपी थी जिसे मे आज तक न समझ सका।

राजा विचार करने लगे कि रानी की ऐसी अप्राप्य वस्तु की माग का कारण क्या है? यह तो सभव नही कि रानी अकारण ही मुझे कष्ट मे डाले, वन–वन भटकाए। अकस्मात् विचारमग्न राजा हर्ष से उछल पडे और कहने लगे– रानी तेरी माग का कारण मे समझ गया। वास्तव मे मैं तेरा अनादर ही करता था। मैं स्वय विषय–भोगा म लिप्त रहू, तुझे उसका साधन मानू और अपने कर्तव्य को न देखू, यह कदापि तेरा आदर नही कहला सकता। तूने

सोने की पूछ वाला मृगशिशु लाकर न देने तक अपने महल मे न आने का प्रण कराकर मेरा उपकार ही किया है। इसमे न तो तेरा कुछ स्वार्थ है और न मुझे कष्ट मे डालना ही तुझे अभीष्ट है। बस, तेरा ऐसा करने का अभिप्राय यही है कि में इस विषय–विष से–जिसे मै अब तक अमृत समझता था, बच जाऊ। तूने तो मेरा बडा उपकार ही किया है। तेरी कृपा से आज मुझे अवर्णनीय आनन्द प्राप्त हुआ है। रानी! तूने मुझे मेरा कर्तव्य–पथ दिखला दिया है। इसके लिए मे तुझे अनेक धन्यवाद देता हू और आभार मानता हू। मै तेरी इच्छित वस्तु प्राप्त न कर सका इसलिए सभव है कि तू मुझ से रूठी रहे, लेकिन तेरी यह निष्ठुरता मुझे कर्तव्यपथ पर चलने मे और सद्विवेक को जागृत करने मे सहायक सिद्ध होगी।

इन विचारो से राजा का मन प्रसन्न हो उठा और उनहोने राजधानी की ओर अपना घोडा बढा दिया।

4. एकाकी की व्याकुलता

शिक्षा देने वाले यद्यपि ऊपर से तो कठोर व्यवहार करते है, परन्तु हृदय मे सदैव दया, कृपा और सहानुभूति के ही भाव रखते है। उनके हृदय मे दुर्भाव नही रहता। इसी से वे उन शिक्षाओ को हृदयस्थ करने के लिए हर प्रकार के उपाय काम मे लेते हैं। एक कवि ने कहा है–

गुरु परजापति सारखा, घड–घड काढे खोट।
भीतर से रक्षा करे, ऊपर लगावे चोट।।

गुरु ओर कुम्हार दोनो एक सरीखे होते है, जिस प्रकार कुम्हार घडे की बुराई दूर करने के लिए ऊपर से तो चोट लगाता है, परन्तु भीतर से हाथ द्वारा उसकी रक्षा करता रहता है, उसी प्रकार गुरु ऊपर से तो कठोर रहते हे, परन्तु हृदय से शिष्य का भला ही चाहते हे।

यहा पर गुरु का कार्य रानी कर रही थी। यद्यपि ऊपर से तो निष्ठुर थी, परन्तु हृदय मे राजा के प्रति अगाध प्रेम रखती थी।

यद्यपि राजा से सोने की पूछवाला मृग–शिशु लाए बिना महल मे न आने की प्रतिज्ञा तो रानी ने करा ली, परन्तु हृदय मे चेन नही था कि मेने पति से अप्राप्त वस्तु तो मगाई हे लेकिन न जाने उसके लिए उन्हे कहा–कहा भटकना पडेगा ओर न जाने केसे–केसे कष्ट उठाने पडेगे।

नित्य की तरह सध्या के समय जब राजा महल मे नही आए तो रानी विचारने लगी कि आज नाथ क्यो नही आए? तो उन्हे ध्यान हुआ कि मेने ही तो सोने की पूछवाला मृग–शिशु न लाने तक पति से महल मे न आने का प्रण करवाया हे।

फिर भी महल मे स्वामी के होने न होने का पता लगाने के लिए रानी ने दासी को भेजा। लोटकर उसने बतलाया कि वे महल म नहीं हैं।

दासी क उत्तर को सुनत ही रानी चिन्तित हुई ओर मन ही मन कहने लगी कि मेरी ही वस्तु की खाज मे नाथ वन म गए हैं। परन्तु मेंन ता एसी

वस्तु मागी है जो मिल ही नही सकती। हृदयेश्वर! आज आपको न जाने कैसे–कैसे कष्टो का सामना करना पड रहा होगा। आज आपने कहा भोजन किया होगा? मुझ अभागिनी ने ही आपको इन कष्टो मे डाला है, परन्तु इसमे मेरा किचित् भी स्वार्थ नही है। मुझे आपका, प्रजा का ओर मेरा कल्याण ऐसा करने मे ही दीख पडा और मै करने के लिए विवश हुई। प्राणाधार! मेरे हृदय मे आपके प्रति वही प्रेम हे, लेकिन उसी प्रेम से इस समय आपको कष्ट प्राप्त हो रहा होगा! अत मै भी प्रण करती हू कि जब तक आपके दर्शन न कर लू, तब तक न तो अन्न–जल ग्रहण करूगी और न शैय्या पर ही शयन करूगी। मै तो सुख मे रहू और आप कष्ट पाए, यह अनुचित है। मै आपकी अर्धागिनी हू अत आप दु ख सहे ओर मै सुख मे रहू यह बात मेरे कर्त्तव्य को शोभा नही देती। यदि मेने हित को दृष्टि मे रखकर ऐसी अप्राप्य वस्तु मागी है तो मेरी तपस्या अवश्य ही आपके और मेरे कष्टो को दूर करके कल्याणकारी होगी।

इस प्रकार चिन्ता मे विकल रानी के भी छह दिन बीत गए। सातवे दिन चिन्ताग्रस्त रानी उपवन मे आकर एक कुण्ड पर बैठ गई और कमल को सबोधित कर कहने लगी–कमल! इस समय तू कैसा प्रसन्नचित्त होकर छटा फैला रहा हे। यदि इस समय कोई तुझे उखाड डाले तो तेरी प्रसन्नता ओर छटा का घात हो जाएगा। तेरे बनने मे तो समय लगा है, परन्तु नाश करने वाले को कुछ भी समय नही लगेगा। जिस प्रकार तुझे प्रकृति ने पाला–पोसा हे उसी प्रकार मेरे पति कमल के लालन–पालन मे उनके माता–पिता ने न मालूम कितने कष्ट सहे होगे, परन्तु मुझ पापिन ने इसका विचार न करके एक क्षण मे ही उखाड दिया है। मै घोर पापिन हू। हाय! इन सात दिनो मे न मालूम उन्होने कैसे–कैसे कष्ट उठाए होगे और न जाने कितने प्रकार के सकटो का सामना करना पडा होगा।

ऐसी–ऐसी अनेक प्रकार की कल्पनाए करती हुई रानी गभीर चिन्ता– सागर मे निमग्न हो गई कि उन्हे अपने तन की भी सुध न रही।

उधर राजा वन से लौटकर विचारने लगे कि पहले मै रानी को तो देखू, जिसने मुझे सात दिन तक वन–वन भटकाया और इस बात का भी पता लगाऊ कि मेरे वन जाने और कष्ट सहने का उसे दु ख हे या नही। क्योकि स्त्री की परीक्षा कष्ट मे ही होती है। यद्यपि रानी ने सोने की पूछ वाला मृग–शिशु लाए बिना अपने महल मे आने से रोक दिया हे लेकिन आज तो में कुछ दूसरे ही विचारो को लेकर रानी के महल मे जा रहा हू।

राजा ऐसा विचार कर रानी के महल मे पहुचे परन्तु वहा रानी न दीख पडी। दासियो से पूछने पर मालूम हुआ कि रानी समीप के उपवन मे

है। महाराज हरिश्चन्द्र उपवन मे पहुचे। वहा पर निस्तेज, कृश–शरीर रानी को योगियो की तरह चिन्तामग्न देख राजा विचारने लगे कि मैंने वन मे रहकर जितने कष्ट उठाए है उनसे भी अधिक कष्टो का अनुभव रानी महल मे ही कर रही है। सम्भवत अभी भी रानी मेरी ही चिन्ता मे डूबी हुई है। इस प्रकार का विचार करके राजा ने पुकारा–प्रिये, कुशल तो हो?

राजा के शब्द सुनते ही रानी के हृदय मे प्रसन्नता की लहर दौड गई और विचारने लगी कि क्या वे आ गए? अवश्य आ गए होगे। अन्यथा मुझे 'प्रिये कहकर कौन सबोधित करता?

यद्यपि राजा को आया जान तारा के हृदय मे अपार आनन्द हुआ लेकिन उसे प्रकट नही होने दिया। सोचा कि हर्षावेश मे यदि मैंने प्रगट कर दिया तो जिस अभिप्राय से इतने दिन मैंने इनको वन–वन मे भटकाया है, उसमे सफलता प्राप्त नही होगी ओर स्वामी पर लगे जिस कलक को मिटाना चाहती हू, उसे मिटा न सकूगी।

ऐसा सोचकर रानी ने गभीर दृष्टि से राजा की ओर देखकर पूछा–प्रभो! आप पधार गये?

राजा–हा प्रिये, आ तो गया हू!

रानी–हृदयवल्लभ! और मेरी वस्तु कहॉ है?

राजा–प्रिये! तुम विचारो तो सही कि जो वस्तु तुमने मागी है क्या उसका प्राप्त होना सभव है? तुम राजवश की कुलवधू हो ओर एक राजा की सहधर्मिणी हो, फिर भी इतनी अज्ञानता कि तुमने ऐसे मृग–शिशु की माग की कि जिसे प्रत्यक्ष मे देखना तो दूर, कभी स्वप्न मे भी नही देखा है न किसी ने सुना है ओर न पुस्तको मे भी पढा है। मेने सात दिन तक उसे वनो मे खोजा परन्तु मुझे तो एक भी ऐसा मृग या मृगशिशु दिखाई नही पडा, जिसकी पूछ सोने की हो। यदि वेसे मृग ससार मे होते तो कदाचित् मैं पकड भी न पाता लेकिन मेरी दृष्टि से छिपे नही रह सकते थे। मैं यह नही कहता कि तुमने सर्वथा अप्राप्य वस्तु मागकर मेरी इतनी कठिन परीक्षा क्या ली है? इसलिए अव मरे कथन पर विश्वास करो ओर निष्ठुरता को छोडकर पहले की तरह प्रेम–व्यवहार करो।

रानी–अच्छी वात है नाथ! मैं यह तो नही कह सकती कि आप जो कुछ भी कह रहे हैं वह अनुचित है परन्तु मुझ अभागिनी के लिए आपके हृदय मे स्थान कहा है जो मेरी मागी हुई वस्तु ला दे। मेरे लिए तो तिरस्कार ओर कपटभरा झूठा प्रेम ही है। यदि मैंने आपसे कोई अप्राप्य वस्तु मागी थी तो

उसी समय कह देते जिससे न तो मै ही प्रतिज्ञा करती और न आपसे ही कराती। आप भी क्षत्रिय है और मै भी क्षत्राणी हू और प्रतिज्ञा पर दृढ रहना क्षत्रियो का कर्तव्य है। मै तो पहले ही प्रार्थना कर चुकी थी कि आप मुझसे पेम नही करते है। इस अनादरपूर्ण जीवन से तो मरना ही श्रेष्ठ है। (दासी को सम्बोधन करके) मल्लिके, चल, चल! चलो महल मे चले और अपना शेष जीवन भगवद्भजन मे ही व्यतीत कर दे।

यह कहकर मल्लिका को साथ ले रानी चल दी। राजा ठहरने के लिए कहते ही रहे परन्तु रानी न ठहरी, तो न ठहरी।

रानी के इस पकार चले जाने का तात्पर्य राजा समझ गये और विचारने लगे कि यह सब मेरे लाभ के लिए ही, मेरे हित के लिए ही रानी ने मुझसे अपने महल मे न आने की प्रतिज्ञा कराई थी। कदाचित् ऐसा समझना मेरा भ्रम भी हो। मेरी सहधर्मिणी होकर जब वह मेरी अपेक्षा नही रखती तो मै भी क्यो उसकी अपेक्षा रखूँ? यदि मुझे रानी का वियोग असह्य हो जाएगा तो मे पुरुष होकर भी उसे सहन करने मे क्यो असमर्थ रहूगा? यदि रानी अपनी प्रतिज्ञा मे इतनी दृढ है तो मे क्यो अशक्त रहूँ? यह तो मेरे पुरुषत्व को कलकित करने वाली बात है। जब हम दोनो के हानि–लाभ, सुख–दु ख आदि समान है तो फिर मै ही क्यो चिन्ता करू?

इन विचारो ने राजा को एक प्रेरणा दी और वे अपने महल मे लौट आए।

5. सुख–निद्रा का अनुभव

राजा अपने महल मे आकर सो गए। आज उनका मन चिन्ताओ से मुक्त था और कुछ थकावट भी थी अत ऐसी नीद आई कि जिसका अनुभव एक विशेष समय से नही हुआ था।

हृदय के शात और मन के स्थिर रहने पर मनुष्यो को आनन्द प्राप्त होता हे। इसकी प्राप्ति के लिये ही योगी एकान्तवास पसन्द करते हैं ओर जिससे वे सासारिक झझट से दूर व चिन्ताओ से रहित हो जाते हैं। चिन्ताओ के कारण ही मानव मन अशात और अस्थिर रहता हे। चिन्ताग्रस्त मनुष्य के हृदय को कभी भी ओर किसी काम मे शाति नही मिलती हे। उसका मन सदेव चचल रहता हे। ऐसे मनुष्य को न तो लोकिक कार्यो मे ओर न लोकोत्तर कार्यो मे किसी प्रकार आनन्द आता हे। प्रतिदिन के जीवनोपयोगी कार्य–खाना पीना, सोना आदि चिन्ताग्रस्त मनुष्य भी करता हे ओर चिन्तारहित भी, लेकिन इन्हीं कार्यो मे जहा चिन्ताग्रस्त मनुष्य दु ख का अनुभव करेगा वही चिन्तारहित मनुष्य को शाति प्राप्त होगी। मन की स्थिरता के लिये चिन्ताओ का नाश होना आवश्यक हे। चिन्ताओं के पूर्णतया नाश होने पर आत्मा सच्चिदानन्द बन जाती हे।

रानी भी अपने महल मे लोट आई। राजा के दर्शन से उनकी एक चिन्ता तो मिट चुकी थी परन्तु अब एक दूसरी ही चिन्ता ने उन्हे आ घेरा कि स्वामी आज सातवे दिन तो पधारे हैं परन्तु मे ऐसी पापिन कि उनसे कुशलता भी नही पूछ सकी उनक कष्टा की कहानी नही सुनी बल्कि उनके हृदय का विशेष दु खित कर दिया ओर उनक कहने पर भी न ठहर सकी। यद्यपि यह मैने किया तो मैने उनक हित क लिए ही परन्तु एसा न हो कि व मेरे अभिप्राय को गलत समझ बैठे और कहने लगे कि रानी दुष्ट हृदय वाली हे क्रूर स्वभावी हे और पतिवंचक हे प्रभो! यद्यपि आज आप अनेक कष्टो को सहकर

पधारे है। इस समय आपकी थकावट को मिटाना और सुख पहुचाना मेरा परम कर्तव्य था परन्तु अभी सेवा मे उपस्थित होती हू तो अब तक का किया कराया और जिस अभिप्राय से मैने स्वय अपने आपको परेशानी मे डाला है यह सब निष्फल हो जाएगा।

रानी इसी चिन्ता को दूर करने के लिए भगवान का भजन करने बेठी। उच्चारण तो करना चाहती थी परमात्मा का नाम परन्तु बदले मे निकलता था पति–पति ही। इस अन्तर के लिए रानी विचारने लगी कि मेरे लिए परमात्मा ओर पति दोनो ही समान है। मुझे किसी विषयेच्छा से पति याद नही आ रहे है। उसे तो मै पहले ही त्याग चुकी हू। अत मेरे लिए परमात्मा और पति दोनो समान रूप से वन्दनीय है।

यद्यपि रानी अपने मन को अनेक प्रकार से समझाती थी परन्तु राजा की थकावट आदि का स्मरण करके रह–रह कर मन उसी ओर चला जाता था। रानी सोचती थी कि इस समय मुझे क्या करना चाहिए? यदि सेवा के लिए जाती हू तो इस बात का भय है कि उनका मोह पुन जाग उठे और प्रतिज्ञा भग हो जाए और नही जाती हू तो हृदय को धैर्य नही होता।

इसी उधेडबुन मे डूबी रानी ने दासी को बुलाकर कहा–मल्लिके! वन के अनेक कष्ट सहकर थके–थकाए स्वामी अब घर पधारे हे। अत तू भोजन–सामग्री और तेल लेकर उनकी सेवा कर आ। यद्यपि यह कार्य है तो मेरा परन्तु मुझ अभागिन से राजा रूपी मणि दूषित हो गई है और सभव है कि पुन जाने से ओर भी दूषित हो जाये। अत इस कार्य को तू ही कर आ। जिससे पति की सेवा भी हो जाए और निर्दोष भी बने रहे।

रानी की ऐसी बात सुनकर मल्लिका चौकी और बोलीजान पडता हे स्वामिनी, कि आज आपको पति–प्रेम मे किसी बात का ध्यान नही रहा हे। यदि ऐसा नही है तो आप मुझे इस समय अकेले महाराज के समीप जाने को न कहती। रात का समय, एकान्त स्थान, मैं जाऊ ओर वे कामवश होकर कोई अनुचित कार्य कर बेठे, तो! जब वे आपके सहवास से दूषित हो गए हें तो क्या मेरे जाने पर उनके ओर दूषित हो जाने की आशका नही है? महाराज आपके स्वामी हे ओर आप उनकी धर्मपत्नी। अत एकान्त मे उनके समीप जाने का अधिकार आपको हे, मुझे नही हे। हा, यदि आप जाती हो तो आज्ञा देने पर मे भी साथ चल सकती हू या आपकी उपस्थिति मे कार्यवश उनके समीप जा सकती हू। परन्तु रात मे अकेले उनके समीप जाने के लिए मे क्षमा चाहती हू।

यदि देखा जाय तो स्त्री–पुरुष सबधी पाप का विशेष कारण एकान्त निवास हे। जिसके लिए यह दृष्टान्त देना अप्रासागिक न होगा–

राजा भोज ने अपने राजपडितो से पूछा कि–

'मनो महिला विषयादिदात कामस्य सत्यं जनक कवे क ।'

हे कवि! काम के उत्पन्न करने वाले मन, स्त्री, खान–पान आदि तो हे ही परन्तु इसका सच्चा जनक कौन है?

इस प्रश्न का उत्तर विद्वानो से प्राप्त न होने पर राजा ने कवि कालिदास से भी पूछा कि क्या आप मेरे प्रश्न का उत्तर देगे? कालिदास ने कहा– मे आपको इसका उत्तर कल दूगा।

कालिदास सभा से लौटकर घर आए ओर उत्तर के लिए ग्रन्थो को देखना प्रारम्भ किया, किन्तु किसी भी ग्रन्थ मे उत्तर न मिला।

कालिदास की पत्नी का देहान्त हो चुका था। उनको प्रभावती नाम की एक कन्या थी, जो उसी नगर मे विवाही थी। प्रभावती नित्य अपने पिता के घर आती और भोजन बना–खिलाकर वापस ससुराल चली जाया करती थी। रोज की तरह आज भी उसने भोजन बनाया ओर कालिदास से कहा कि पिताजी, भोजन कर लीजिए। लेकिन उस समय कालिदास राजा के प्रश्न का उत्तर ग्रन्थो मे खोज रहे थे। अत उन्होने बात सुनी–अनसुनी कर दी। जिससे प्रभावती ने समझा कि इस समय पिताजी किसी आवश्यक कार्य मे लगे हे। ओर सभव हे वह कार्य कुछ देर मे समाप्त हो जाए। कुछ देर ठहर कर पुन प्रभावती कालिदास के पास गई और भोजन करने के लिये कहा। परन्तु कालिदास ने उत्तर दिया कि– अभी कुछ देर ठहर कर ही भोजन करूगा।

कालिदास के उत्तर ओर मुखमुद्रा से प्रभावती ने समझ लिया कि इस समय पिताजी किसी चिन्ता मे डूबे हुए हे। उसने पूछा– पिताजी, आप किस चिन्ता मे फसे हुए हैं? कालिदास ने झुझलाकर उत्तर दिया कि तू जानती समझती तो कुछ हे नही। तुझे क्या पता कि मैं इस समय कोन–सा कार्य कर रहा हू ओर व्यर्थ की बात कर मेरा समय नष्ट कर रही हे।

कालिदास की झुझलाहट को देखकर प्रभावती ने कहा कि– आप विचारिए तो सही कि मुझे दोनो घरो के कार्य करने पडते हे। यदि मैं यथासमय सब कार्य न करू तो मेरा काम केसे चलेगा? मैं कभी से भोजन बनाकर आपसे प्रार्थना कर रही हू कि भोजन कर लीजिये किन्तु आप न तो भोजन करते हे और न अपनी चिन्ता का कारण ही बतलाते हैं। कम से कम

अपनी चिन्ता का कारण तो बतला दीजिए, जिसमे मैं भी उस पर कुछ विचार कर सकू।

कालिदास ने राजा के प्रश्न को सुनाकर कहा कि– मैंने कल तक इसका उत्तर देने का राजा को वचन दिया है परन्तु इस समय तक न तो मैं उत्तर ही विचार सका और न किसी ग्रन्थ मे उत्तर मिलता है।

प्रभावती ने प्रश्न को सुनकर कालिदास से कहा–बस, इतनी सी ही बात? आप चलकर भोजन कीजिए। मैं इस प्रश्न का उत्तर कल सभा के समय से पहले ही आपको दे दूगी। कालिदास को प्रभावती की बात पर विश्वास नही हुआ किन्तु उसके बार–बार विश्वास दिलाने पर कालिदास ने भोजन किया। पिता को भोजन कराकर प्रभावती ने अपनी ससुराल सन्देशा भिजवा दिया कि मै आज यहा रहूगी।

सध्या के समय प्रभावती ने जो भोजन बनाया उसमे कामोत्तजनक पदार्थो का समिश्रण कर दिया। पिताजी को भोजन करा के प्रभावती ने भी भोजन किया और दोनो अपने–अपने स्थान पर सो गये। प्रभावती ने सोने से पूर्व ऐसे स्थान को देख लिया था, जिसमे चले जाने पर वह पिता के हाथ भी न आये और राजा के प्रश्न का उत्तर भी उन्हे मिल जाए।

जब कामान्ध मनुष्य की बुद्धि नष्ट हो जाती है तो उस समय उसे अपने कर्त्तव्याकर्त्तव्य का ज्ञान नही रहता है। चाहे जितना बुद्धिमान मनुष्य हो परन्तु कामान्ध होने पर उसे केवल स्त्री की ही धुन सवार रहती है। चाहे फिर वह बहिन, बेटी ही क्यो न हो या पशु जाति की ही क्यो न हो?

रात के समय उन कामोत्तेजक पदार्थो ने अपना प्रभाव बतलाया। कालिदास काम–पीडा से मुक्ति पाने की अभिलाषा से प्रभावती के निकट पहुचे ओर सहवास के उपाय करने लगे। प्रभावती ने कालिदास को ऐसा करते देख कहा–पिताजी, सावधान रहिये। क्या आप अपनी बेटी पर ही ऐसा अत्याचार करने के लिए तत्पर हुए है? परन्तु उस समय उन्हे यह चिन्ता क्यो कर होती कि यह मेरी बेटी हे। प्रभावती की बात सुनकर बोले–बस! चुप रह, अन्यथा तेरे जीवन की खेर नही है।

प्रभावती समझ गई कि अब ये अपने वश मे नही है। इस समय इनका विवेक लुप्त हो चुका है। अतएव बोली–पिताजी, यदि आपकी ऐसी ही इच्छा है तो कम से कम दीपक तो बुझा दीजिए। क्या उसके रहते हुए आप अपनी बेटी के साथ और मै अपने पिता के साथ भोग भोग सकूगी?

प्रभावती की बात सुन कालिदास दीपक बुझाने गए कि इतने मे प्रभावती पहले से सोचे हुए स्थान मे जाकर छिप गई ओर किवाड बन्द कर लिए। कालिदास ने लौट कर प्रभावती को अनेक भय दिखांए, प्रलोभन दिए लेकिन उसने कहा कि– आप सबेरे चाहे मुझे मार ही डाले परन्तु इस समय तो में किवाड नही खोलूगी। प्रभावती को प्राप्त करने के लिए कालिदास ने अनेक उपाय किए परन्तु वे उनमे असफल ही रहे।

जब सारी रात इसी प्रकार के उपद्रव करते–करते बीत गई और सवेरा होने आया एव उत्तेजक पदार्थो का प्रभाव कम हुआ तो कालिदास का विवेक जागा और सोचा कि मैं यह क्या कर रहा हू? हाय–हाय! अपनी बेटी से ही व्यभिचार? वह क्या समझेगी और मै उसको किस प्रकार अपना मुह दिखलाऊगा? मेरा कल्याण तो अब मरने मे ही है। इस प्रकार विचार कर कालिदास ने अपने प्राणत्याग का सकल्प कर लिया ओर फासी लगाकर मरने के लिए तेयार हो गए।

उधर पिता के उत्पातो को शान्त ओर उत्तेजित पदार्थो के असर का समय समाप्त जानकर प्रभावती ने विचारा कि अब तो पिताजी की बुद्धि ठिकाने पर आ गई हे अत वह किवाड खोलकर बाहर आई तो देखती हे कि पिताजी मरने पर आमादा हे। उसने कहा–पिताजी, आप यह क्या कर रहे हे?

कालिदास– बस, बेटी, मुझे क्षमा कर। में अपने इस कुकृत्य पर परलोक मे तो दण्ड पाऊगा ही परन्तु इस लोक मे भी मुह दिखाने योग्य नही रहा। अत तू मेरे काम मे बाधा न डाल। बुरे विचार लाकर में स्वय भी भ्रष्ट हुआ ओर तुझे भी भ्रष्ट करना चाहता था। अब तो में इस पाप का प्रायश्चित मर कर ही करुगा।

प्रभावती–पिताजी, जरा ठहरिए ओर मेरी बात सुन लीजिए। आपके मन मे जो विकार उत्पन्न हुए ओर जो कुछ उत्पातादि किए उसमे आपका क्या दोष ह? यह तो राजा के प्रश्न का उत्तर मात्र हे। प्रश्न का उत्तर देने के लिए ही मन आपका ऐसे कामोतेजक पदार्थ खिलाये थे जिन्होने आपको एसा करने के लिये विवश कर दिया। अब तो आप अच्छी तरह समझ गये होगे कि पाप का सच्चा बाप एकान्त हे। यदि कभी मन खराब भी हो जाय तथा स्त्री भी पास हो परन्तु एकान्त मे न हो तो वे बुरे विचार कार्य रूप मे परिणत न हो सके। इसलिये प्रश्न का उत्तर देने के पहले ही उसका अनुभव करा दिया है।

२ श्री [illegible]

कालिदास–यद्यपि उत्तर देने के लिये ही तूने जानबूझकर मुझे ऐसे उत्तेजक पदार्थ खिलाये, जिससे मै अपने आपे मे नही रह सका, तथापि तेरे साथ अन्याय करने के विचारो के लिये तो मुझे प्रायश्चित्त करना ही चाहिए?

पभावती– जब आप परवश थे तो उसका प्रायश्चित्त क्या होगा? फिर भी आप पायश्चित्त करना ही चाहते है, तो आपके साथ मैं भी प्रायश्चित्त करती हू कि भविष्य मे चाहे पर पुरुष पिता हो या भाई ही हो परन्तु उसके साथ एकान्त मे नही रहूगी।

दूसरे दिन राजसभा मे कालिदास ने प्रभावती द्वारा अनुभव कराये गए उत्तर को कह सुनाया जिसे सुनकर राजा भोज बहुत प्रसन्न हुए।

साराश यह कि कामविकार को कार्य रूप मे परिणत कराने का अवसर तभी पाप्त होता है जब स्त्री–पुरुष एकात मे हो। अतएव इससे बचने के लिए ही स्त्री–पुरुष का एकात स्थान मे रहना त्याज्य माना गया है।

मल्लिका का उत्तर सुनकर रानी बोली कि– तेरा कहना ठीक है। वास्तव मे मैने पतिप्रेम के आवेश मे कार्य के औचित्य पर ध्यान नही दिया। लेकिन अब मै भी नही जाती हू। जो कुछ होगा वह अच्छा ही होगा।

6. कर्त्तव्योन्मुख राजा का राज्य शासन

महाराज हरिश्चन्द्र आज सूर्योदय से पहले ही जाग गए। धर्मात्मा मनुष्य सूर्योदय से पहले ही उठकर परमात्मा के ध्यान मे लग जाते हैं। वे आलसियो की तरह सूर्योदय होने के बाद तक बिछोने मे नही पडे रहते हे सूर्योदय होने के पश्चात् उठने से आयुर्वेदिक ग्रन्थो मे भी कई हानिया वतलाई है। रात मे देर तक जागना और फिर सूर्योदय के पश्चात् तक सोते रहना प्राकृतिक नियमो के विरुद्ध है। प्राकृतिक नियमो की अवहेलना करने वाला मनुष्य अपने जीवन, स्वास्थ्य, उत्साह ओर लाभ की भी अवहेलना करता हे ओर प्राकृतिक नियमानुसार दण्डित होता हे।

महाराज हरिश्चन्द्र को सूर्योदय देखने का यह अवसर आज बहुत दिनो के पश्चात् प्राप्त हुआ था। उनके हृदय मे आज आनन्द था, उत्साह था, शरीर मे स्फूर्ति थी, मन प्रसन्न था कि जिसका अनुभव वे बहुत समय से नही कर सके थे। रानी को धन्यवाद देते हुए कहने लगे– मुझे वन के प्राकृतिक दृश्य देखने, सुख–निद्रा लेने ओर प्रात काल उठने से जो आनन्द प्राप्त हुआ है वह सव तेरी कृपा का फल हे। तेरी माग का अभिप्राय मुझे इन सब आनन्दो से भेट कराना था। वास्तव मे मैं अपने जीवन को विषय–वासना मे व्यतीत करके विषपान ही कर रहा था। लेकिन तूने मेरी यह भूल दर्शादी। मैं तेरा उपकार मानता हू ओर इसे अपने ऊपर वहुत वडा ऋण समझता हू। देवयोग से सोने की पूछ वाला मृग–शिशु प्राप्त हो जाता तव भी विषयवासना म मुझे वह आनन्द न आता जो अव प्राप्त हो रहा हे।

दैनिक कार्यों स निवृत्त हो महाराज हरिश्चन्द्र राजसभा मे आकर सिहासन पर आसीन हा गए। यह दखकर कुछ लोगो को ता आनन्द हुआ और कुछ का दु ख। दु खी ता व हुए जा राजा की अनुपस्थिति म प्रजा पर मनमान अत्याचार कर अपना स्वार्थ सिद्ध कर रह थ ओर निरकुश हा अनक

प्रकार के अनाचार करने मे भी नही हिचकते थे। लेकिन आनन्दित वे हुए जो लोग राजा के, राज्य के शुभचिन्तक व न्यायप्रिय थे तथा राज्यकर्मचारियो के अत्याचारो को देख–देखकर दु खी हो रहे थे। वे तो हर्षविभोर होकर कहने लगे कि– आज सूर्यवश का सूर्य पुन उदित हुआ है।

कुछ लोगो को आश्चर्य भी हुआ कि जो राजा विशेष समय से महलो के बाहर नही निकलते थे, राजकाज की ओर दृष्टि नही डालते थे, वे अचानक ठीक समय पर राजकार्य देखने को कैसे उद्यत हुए? राजा के स्वभाव मे अचानक इस प्रकार के परिवर्तन होने के कारण का लोगो ने पता लगाया तो मालूम हुआ कि यह सब रानी की कृपा का फल है, जिससे राजा पुन राजकाज देखने मे प्रवृत्त हुए है। इस कृपा के लिए सभी रानी की प्रशसा करने लगे और आभार मानते हुए अनेकानेक धन्यवाद दिए।

रानी के महल मे न जाने के लिए वचनबद्ध राजा एकाग्रचित होकर राजकाज देखने मे लगे रहते थे। अब उनका सम्पूर्ण समय राज्य–प्रबन्ध देखने, न्याय करने, प्रजा के दु खो और अभावो को दूर करने, उसे सुख पहुचाने आदि कार्यो मे ही व्यतीत होता था। प्रजा के लिए सदाचार आदि नीति–सबधी और कला–कौशल आदि व्यवसाय–सबधी शिक्षा का उन्होने ऐसा प्रबन्ध किया कि जिससे राज्य मे अपराधो का नाम ही न रहा था। वे अपराधो का पता लगाकर अपराधियो को शिक्षा देते थे और अपराध के उन कारणो का उन्मूलन ही कर देते जिससे पुन अपराध न हो सके। न्याय भी इतनी उत्तमता से करते थे कि किसी भी पक्ष को दु ख नही होता था। यही बात मुकद्दमो आदि की भी थी कि राजा दूध का दूध और पानी का पानी अलग–अलग कर देते थे। कर्मचारियो द्वारा किसी पर अत्याचार न होने के बारे मे बहुत ही सावधानी रखते थे और चोर, डाकू आदि उपद्रवियो से प्रजा की रक्षा करना अपना परम कर्त्तव्य समझते थे।

महाराज हरिश्चन्द्र के इस प्रकार से राजकाज देखने और न्याय करने से थोडे ही दिनो मे राज्य–व्यवस्था पुन सुधर गई। प्रजा सुख–समृद्धि सम्पन्न हो गई और कोई दु खी न रहा। हरिशचन्द्र का यह नीति धर्ममय राज्य सत्य का राज्य कहलाने लगा और उनकी कीर्ति दिग्दिगन्त मे व्याप्त हो गई। इस प्रकार रानी ने अपने त्याग, उद्योग से अपनी मनोकामना भी पूर्ण कर ली और राजा को अपने कर्तव्य पर भी आरूढ कर दिया एव साथ ही अपना और पति का कलक भी धो डाला।

7. इन्द्र द्वारा गुणगान

आज स्वर्ग की सुधर्मा सभा विशेष रूप से सजाई गई थी। चारो ओर पारिजात के फूल लगे हुए थे ओर सभा मध्य चवर–छत्र आदि से सुशोभित सिहासन पर इन्द्र बेठे हुए थे। लोकपाल आदि सब देव ओर देविया यथास्थान बेठे थे तथा रक्षार्थ भृत्यगण यथास्थान खडे थे। सभा के मध्य एक मच बना हुआ था जिस पर गायक–गायिकाए और नर्तक–नर्तकिया सुसज्जित खडी थी।

गायक–गायिकाए आदि इन्द्र की आज्ञा की प्रतीक्षा मे थी कि आज किस विषय के गीत गाए ओर नृत्य करे। तब इन्द्र ने कहा– अन्य विषयो के गीत आदि तो नित्य ही होते हे लेकिन आज सत्य के गीत गाओ ओर उसी के अनुसार नृत्य हो। सत्य के प्रताप से ही हम लोग यह आनन्द भोग रहे हे। इसलिए आज उसी के गुणगान करके यहा उपस्थित देव–देवियो को सत्य का महत्व सुनाओ।

त्रैलोक्य मे सत्य के बराबर अन्य कोई वस्तु नही हे। सत्य से ही ससार की स्थिति हे। यदि सत्य एक क्षण के लिए भी साथ छोड दे तो ससार के कार्य चलना कठिन ही नही, किन्तु असम्भव हो जाये। कीर्ति प्राप्त करने के लिए सत्य एक अद्वितीय साधन हे। सत्य का पालन किसी के द्वारा भी हो लेकिन उसकी ख्याति पवन की तरह सर्वत्र फेल जाती हे। सत्य–पालन मे किसी प्रकार की आकाक्षा रखी जाएगी तो वह एक प्रकार का व्यापार हो जाएगा।

सत्य का गान करने के लिए आज्ञा पाकर गायगण आदि बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होने गान और नृत्य द्वारा सत्य का जो सजीव दृश्य दिखलाया उससे सारी सभा प्रसन्न हो उठी और गायको व नृत्यकारो की प्रशसा करने लगी। नृत्यगान समाप्त होने पर इन्द्र ने कहा कि–

मेरे प्रिय देवलोक के निवासियो! आप लोगो ने जिस सत्य का नृत्य-गान देखा, सुना और प्रसन्न हुए है, वह सत्य जिसके पास रहता है वह सदैव आनदित रहता है। सत्य सूक्ष्म है अत उसका बिना आधार के उपयोग नही हो सकता और जब तक किसी को प्रयोग मे लाते न देखे तब तक सत्य को समझने के लिए आदर्श नही मिलता। आप देवलोक मे है तब भी सत्य की उस मूर्ति के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त नही कर सके जिसके दर्शन का सौभाग्य मृत्युलोकवासियो को प्राप्त है।

मृत्युलोक मे अयोध्या के राजा हरिश्चन्द्र ऐसे सत्यवादी हैं कि मानो साक्षात् सत्य ही हरिश्चन्द्र रूप मे हो। हरिश्चन्द्र मे सत्य फूलो मे सुगन्ध, तिल मे तेल या दूध मे घृत की तरह व्याप्त है। हरिश्चन्द्र का सत्य मेरुपर्वत की तरह अचल है। जिस प्रकार कोई सूर्य को चन्द्र, चन्द्र को सूर्य, लोक को अलोक, अलोक को लोक और चैतन्य को जड तथा जड को चैतन्य बनाने मे समर्थ नही है, उसी प्रकार हरिश्चन्द्र को सत्य से विचलित करने मे भी कोई समर्थ नही है। हरिश्चन्द्र का कोई भी कार्य सत्य से खाली नही है। सत्य पर ध्रुव के सदृश अटल हें तथा कोई भी उनको सत्य से विलग करने मे समर्थ नही हो सकता है।

हरिश्चन्द्र के मृत्युलोक मे होने से और हम देवलोक मे है, इस विचार से आप उन्हे तुच्छ न समझे। धर्म पुण्योपार्जन के लिए मृत्युलोक ही उपयुक्त है। वहा उपार्जित धर्म पुण्य के प्रताप के कारण ही हम आप इस लोक मे आनन्द भोग रहे हैं। जो धर्म-पुण्य मनुष्य-शरीर मे हो सकते हैं वह इस देव-शरीर मे नही। जन्म-मरण-रहित होने के लिए मनुष्य-जन्म ही धारण करना पडता हे। मनुष्य-शरीरधारी जीव बिना देवयोनि प्राप्त किए मोक्ष जा सकता है, परन्तु देव-शरीरधारी जीव मनुष्य-जन्म धारण किये बिना मोक्ष प्राप्त नही कर सकते है। सत्यपालन मे हरिश्चन्द्र अद्वितीय है। उनकी बराबरी करने वाला ससार मे दूसरा कोई नही है।

ससार मे मनुष्य विशेषत दो प्रकार के माने जाते है। एक दुर्जन, दूसरे सज्जन। सज्जन तो दूसरे की प्रशसा सुनकर तथा दूसरे को सुखी देखकर सुखी होते हैं ओर दु खी देखकर दु खी होते है। वे दु खी के दु ख दूर करने का उपाय करते है एव कभी किसी को दु ख देने का विचार ही नही करते हे। दूसरो के दुर्गुणो का ढिढोरा न पीटकर उसके दुर्गुणो को दूर करने का प्रयत्न करते हे और ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध आदि दुर्गुणो को पास भी नहीं

फटकने देते है। लेकिन दुर्जनो का स्वभाव सज्जनो के स्वभाव से सर्वथा विपरीत होता है।

विद्वानो ने दुर्जनो की तुलना इन्द्र से करते हुऐ उन्हे इन्द्र से भी बडा बतलाया है। वे कहते है कि इन्द्र का शस्त्र वज्र उसके हाथ मे रहता हे ओर शरीर पर ही आघात पहुचा सकता है, लेकिन दुर्जुनो का शस्त्र दुर्वचन उनके मुख मे रहता है और वह मनुष्य के हृदय पर आघात करता है। वज्र का घाव ओर पीडा मिट सकती है परन्तु दुर्वचन की पीडा मिटना कठिन है। इन्द्र की आखो मे जितना तेज है, उतना ही क्रोध दुर्जनो की आखो मे हे। इन्द्र दूसरे के सद्‌गुण देखता है तो दुर्जन दुर्गण देखता है। साराश यह कि दुर्जन एक प्रकार से इन्द्र ही है। लेकिन अन्तर केवल इतना ही है कि इन्द्र सद्‌गुणो मे बडे है और दुर्जन दुर्गुणो से।

एक ही वस्तु प्रकृति की भिन्नता से भिन्न–भिन्न गुण देती है। जो जल सीप मे पडकर मोती बन जाता है, वही यदि सर्प के मुख मे गिरे तो विष बन जाएगा। जो बात सज्जनो को सुख देने वाली होती हे, वही दुर्जनो को दु ख देने वाली हो जाती हे। जो वर्षा वृक्षो को हरा–भरा कर देती है, उसी वर्षा से जवास सूख जाता है। साराश यह कि अच्छी वस्तु भी विपरीत प्रकृति वाले के लिये बुरी हो जाती है।

इन्द्र द्वारा हरिश्चन्द्र की प्रशसा सुनकर सारी सभा प्रसन्न हुई ओर हरिश्चन्द्र के सत्य ओर उसके साथ–साथ मृत्युलोक ओर मनुष्य–जन्म की सराहना करते हुए सत्य–रहित देवजन्म को धिक्कारने लगी। लेकिन एक देव को हरिश्चन्द्र की यह प्रशसा अच्छी नही लगी। यद्यपि इन्द्र के भय से प्रगट मे तो वह कुछ नही बोल सका परन्तु मन ही मन ही जल उठा कि– ये इन्द्र हे तो क्या हुआ, लेकिन इनको अपनी प्रतिष्ठा का ध्यान नही हे देवताओ के सन्मुख हाड–चाम से जने, रोगादि व्याधियो से युक्त मनुष्य की प्रशसा करना इनकी कितनी हीनता प्रकट करता हे। मे डरता हू अन्यथा इसी समय खडा होकर कहता कि क्या हरिश्चन्द्र हम देवताओ से भी बडा हे जो यहा प्रशसा की जा रही हे। लेकिन अव मैं इन्द्र के कथन का प्रतिवाद मुख से न करके कार्य से करुगा ओर जिस हरिश्चन्द्र की प्रशसा की गई हे उसको सत्य से पतित कर दिखला दूगा कि– देख लो अपने उस हरिश्चन्द्र की सत्यभ्रष्टता जिसकी प्रशसा करत हुए आपने दवताआ का भी उससे तुच्छ होने क भाव दर्शाय थ।

दुर्जनो को विशेषत सद्गुणो से द्वेष होता ही है। इसी से वे दूसरे की कीर्ति सुनकर या सुखी देखकर ईर्ष्याग्नि से जलने लगते है। चन्द्रमा को ग्रसने की चिन्ता मे डूबे हुए राहु की तरह दुर्जन दूसरे की कीर्ति, सुख और गुण ग्रसने की चिन्ता मे रहते है तथा अवसर की प्रतीक्षा करते रहते हैं। यदि इन्द्र ने हरिश्चन्द्र की प्रशसा की तो उससे उस देव की कोई हानि न थी, परन्तु दुर्जन के स्वभावानुसार वह अकारण ही हरिश्चन्द्र के साथ–साथ सत्य और इन्द्र से भी द्वेष करने लगा।

ससार मे ईर्ष्या से बढकर दूसरा दुर्गुण नही है। यद्यपि ईर्ष्या अग्नि नही है, फिर भी जिसमे होती है, उसको निरन्तर जलाती रहती है। ईर्ष्या करने वाले का मन किसी भी अवस्था मे प्रसन्न नही रहता है। वह इस विचार से मन ही मन जला करता है कि यह सुख या यश वैभवादि दूसरे को क्यो प्राप्त है?

क्रोध और ईर्ष्या से भरा हुआ देव घर आया। उसकी आकृति देखकर उसकी देविया डर गई। उन्होने डरते–डरते उससे पूछा कि– आज आपका मन क्यो मलिन है? आख क्यो लाल है और शरीर क्यो काप रहा है? जान पडता है कि इस समय आप किसी पर क्रोधित हो रहे हैं। क्या सभा मे इन्द्र ने कोई अपमान किया है। किसी ने कुछ ऐसी बात कह दी है जिससे आपको रोष आ गया है या अन्य कोई कारण है?

देव–क्या तुम सभा मे नही थी?

देविया–वही थी और अभी वही से चली आ रही है।

देव–फिर भी तुम्हे मालूम नही कि वहा क्या हुआ?

देविया–मालूम क्यो नही। वहा सत्य के विषय मे नृत्य–गान हुआ था और उसके पश्चात् इन्द्र ने राजा हरिश्चन्द्र के सत्य की महिमा बतलाई थी।

देव–क्या यह अपमान कम है? हम देव–शरीरधारियो के सन्मुख ही हमारी सभा मे, हमारा ही राजा मृत्युलोक के मनुष्य की प्रशसा करे और हम सुनते रहे। इससे ज्यादा अपमान और क्या होगा? क्या सत्य सिर्फ मृत्युलोक मे है और वह भी वहा के मनुष्यो मे ही है? यह कितनी अनुचित बात है कि मृत्युलोक के मनुष्यो के सत्य की प्रशसा करके और हरिश्चन्द्र को ससार मे सबसे बडा सत्यधारी बतलाया जाए तथा देवलोक तथा देवलोक के गौरव–सम्मान की अवहेलना की जाय? यद्यपि वहा बेठे सब देव–देविया इन्द्र द्वारा की गई प्रशसा सुनते रहे और प्रसन्न होते रहे लेकिन उनकी समझ मे यह बात

नही आई कि इस प्रकार हम देवो का और देवलोक का कितना अपमान हो रहा हे। यह तो योगायोग की बात थी जो में वही उपस्थित था ओर जिसे इस अपमान का ध्यान हुआ। इन्द्र ने आज देवताओ का घोर अपमान किया हे। लेकिन मेने यह विचार कर लिया हे कि हरिश्चन्द्र को सत्य से पतित करके इन्द्र द्वारा की गई प्रशसा का प्रतिवाद करू और देवो पर लगे हुए कलक को मिटाकर इन्द्र को उनकी भूल दर्शादू।

क्रोधावेश मे अच्छे–बुरे का ध्यान नही रहता है। क्रोधी की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती हे। इसी से वह न कहने योग्य बात कह डालता हे ओर न करने योग्य कार्य कर डालता है। इन्ही कारणो से ज्ञानी पुरुष क्रोध के त्याग का उपदेश देकर कहते है कि क्रोध से सदा बचो।

यद्यपि इन्द्र इस देव के स्वामी हे, इसलिए वे उसके पूज्य हे परन्तु क्रोधवश होकर उसने इन्द्र के लिए भी असभ्य शब्दो का प्रयोग कर डाला। क्रोधवश इस समय उसको अपने बोलने के ओचित्यानौचित्य का भी ध्यान नही रहा।

देविया उस देव के स्वभाव से परिचित थी। वे विचारने लगी कि स्वामी को दूसरे के गुण ओर प्रशसा से द्वेष हे। इनका यह रोग असाध्य हे। इसलिए इसके बारे मे इनकी इच्छा के विरुद्ध कुछ भी कहना क्रोधाग्नि मे आहुति डालना हे। अत उन्होने देव से फिर पूछा कि– आप हरिश्चन्द्र को सत्यभ्रष्ट किस प्रकार करेगे।

इसका भी मे कुछ न कुछ उपाय विचार ही लूगा, लेकिन पहले यह जान लेना चाहता हू कि तुम लोगो को मे जो आज्ञा दूगा उसका पालन करोगी या नहीं? – देव ने उन देवियो से पूछा। मे तुम्हारी भी कसोटी करूगा कि तुम कहा तक पति–आज्ञा का पालन करती हो। अब तो मुझे उसी समय शाति मिलेगी जब मे हरिश्चन्द्र को सत्य से विचलित करके इन्द्र से कह सकू कि तुमने हमारे सामने जिस मनुष्य की प्रशसा की थी उसकी सत्यभ्रष्टता देख लो ओर प्रशसा करने का पश्चाताप करो।

देव की बात सुनकर देविया आपस मे मन्त्रणा करने लगी कि पति के प्रश्न का क्या उत्तर दिया जाए? उनमे से पहली बोली–यद्यपि जिस कार्य के लिए पति आज्ञा देना चाहते हैं वह हे तो अनुचित तथापि पति की आज्ञा मानना हमारा कर्तव्य है।

दूसरी इन्द्र कह ही चुके हे कि राजा हरिश्चन्द्र को सत्य से विचलित करने मे कोई समर्थ नही है [illegible] हरिश्चन्द्र को सत्य से विचलित

करने का विचार कर रहे है जो उचित तो नही है, लेकिन यह बात कहकर कौन उनका कोपभाजन बने। इसलिए हमे तो अपने कर्त्तव्य–पति आज्ञा पालन पर दृढ रहना ही उचित है। अधिक से अधिक वे हरिशचन्द्र का सत्य डिगाने मे हमारी सहायता ही तो लेगे।

तीसरी–लेकिन पति ने कही हम लोगो को छल द्वारा हरिश्चन्द्र का सत्य–भग करने की आज्ञा दी तो?

चौथी– हम लोगो को इससे क्या मतलब? हम तो पति की आज्ञा का पालन करेगी। इन्द्र के कथन पर विश्वास रखो और सम्भव है कि पति के इस उपाय से हरिश्चन्द्र का सत्य और अधिक ख्याति प्राप्त करे। हमारी तो स्वय यह इच्छा ही नही है कि हरिश्चन्द्र को सत्य से विचलित करने मे पति को सहयोग दे, लेकिन जब ऐसा करने के लिए विवश की जाती है तो चारा ही क्या है? शास्त्रकारो ने इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि यदि विवश होकर किसी अनुचित कार्य मे प्रवृत्त होना पडे तो अपना हृदय निर्मल रखो और उस दशा मे अपराध से बहुत–कुछ बच जाते है। अत अपना कोई अपराध न होगा, बल्कि हम तो पति–आज्ञा–पालन का लाभ प्राप्त करेगी और उसके साथ ही हरिश्चन्द्र के दर्शनो का भी लाभ प्राप्त करेगी।

इस प्रकार परस्पर मे विचार करके उन देवियो ने उत्तर दिया कि हम तो आपकी आज्ञाकारिणी ही है, आपकी आज्ञा का पालन करना हमारा कर्त्तव्य है। अत आप हमे जो आज्ञा देगे, उसका पालन करेगी।

देवियो से इस प्रकार का उत्तर सुनकर देव बहुत ही प्रसन्न हुआ कि कार्य के विचार मे ही यह शुभ लक्षण दीख पडा। अब निश्चय ही में हरिश्चन्द्र को सत्य से विचलित कर दूगा। जब तक मैं हरिश्चन्द्र को सत्य से विचलित न कर दू तब तक मेरे देवजन्म को, मेरे देवलोक मे रहने को और मेरे साहस–उद्योग को धिक्कार हे।

8. षडयंत्र का बीजारोपण

देवियो की बात सुनकर देव प्रसन्न तो हुआ, लेकिन उसके साथ ही वह दूसरी चिन्ता मे पड गया कि हरिश्चन्द्र का सत्य–भग करने के लिए किस उपाय को काम मे लिया जाय।

विचारवान मनुष्य को अपनी–अपनी वृत्तियो के अनुसार कोई न कोई उपाय सूझ ही जाता है। दुर्जन मनुष्य जब किसी का बुरा करना चाहते हे, तब किसी न किसी षडयत्र का सहारा लेते हे। वे उपाय उचित हे या अनुचित, प्रशसनीय हे या निदनीय, इस बात पर विचार नही करते हे।

उन्हे तो केवल दूसरे की हानि करना अभीष्ट होता हे। ऐसे मनुष्यो के बारे मे एक कवि ने कहा हे–

घातयितुमेव नीच परकार्य वेति न प्रसाधयितुग्।
पातयितुमस्ति शक्तिर्वायोवृक्ष न चोन्नगितुग्।।

नीच मनुष्य पराये काम को बिगाडना जानता हे, परन्तु बनाना नही जानता हे। वायु वृक्ष को उखाड सकती हे परन्तु जमा नही सकती हे।

देव ने इस कार्य के लिए विश्वामित्र को अपना अस्त्र बनाना उपयुक्त समझा। उसने विचार किया कि यदि मैं प्रत्यक्ष म हरिश्चन्द्र स कोई छल करूगा ता सभव हे कि वह सावधान हा जाए। इसलिए म ता अप्रगट रहूगा आर विश्वामित्र का हरिश्चन्द्र स भिडा दूगा। विश्वामित्र स्वभावत क्रोधी ह आर हरिश्चन्द्र क प्रति सिर्फ एक बार उनक क्रोध को भडकान की दर ह कि व फिर किसी क वश क नही हे। हरिश्चन्द्र की ख्याति ता सत्य के कारण ही हे अत बिना उसका भग किए अपमान नही हा सकेगा। परन्तु विश्वामित्र का कुपित कस किया जाए? इसक लिए देव न विचारा कि देविया द्वारा विश्वामित्र क [illegible] हरिश्चन्द्र क आश्रय ही उन पर क्रुद्ध [illegible] देगा। उस

शारीरिक दण्ड को भोगते समय देविया हरिश्चन्द की शरण मे जाएगी ही और वह अवश्य ही इन देवियो को कष्ट मुक्त करेगा। ऐसा करने से निश्चय ही विश्वामित्र की कोधाग्नि भडक उठेगी और इस पकार मेरा षडयत्र सफल हो जाएगा।

इस पकार अपनी योजना के बारे मे विचार कर देव ने उन देवियो को आज्ञा दी कि– तुम विश्वामित्र के आश्रम मे जाकर वहा उपवन को नष्ट–भ्रष्ट कर डालो। विश्वामित्र के कोध से तुम किचित् भी भयभीत न होना और वे जो कुछ भी दड दे उसको सहन करती हुई हरिश्चन्द्र की शरण लेना। ऐसा करने पर वह तुम्हे उस कष्ट से दूर कर देगा और फिर तुम चली आना। तुम्हारी इतनी सी सहायता से मै अपने कार्य मे सफलता प्राप्त कर लूगा।

देव की आज्ञा पाकर देवागनाए विश्वामित्र के आश्रम मे आई और कीडा करती हुई उपवन को नष्ट–भ्रष्ट करने लगी। विश्वामित्र के शिष्यो ने उन्हे रोका समझाया और विश्वामित्र का भय भी दिखलाया, परन्तु वे न मानी, बल्कि उन शिष्यो की हसी उडाने लगी। कोई उन्हे डाटने लगी कि – हमे प्रत्येक स्थान पर कीडा करने का अधिकार है, तुम रोकने वाले कौन होते हो? शिष्यो का जब उन देवागनाओ पर कोई वश नही चला तो वे चिल्लाते हुए समाधिस्थ विश्वामित्र के समीप पहुचे। शिष्यो का कोलाहल सुनकर विश्वामित्र की आख खुली और हल्ला मचाने का कारण पूछा। शिष्यो ने बतलाया कि कुछ देवागनाए उपवन को नष्ट कर रही है और रोकने पर नही मानती है, बल्कि हसी उडाते हुए अपने आपको वैसा करने की अधिकारिणी बतलाती हे। उन्हे आपका किचित् भी भय नही है।

शिष्यो की बात सुनते ही विश्वामित्र क्रोध से लाल हो गए। वे उपवन मे आकर देखते हैं कि देवागनाए निर्भीकतापूर्वक किसी वृक्ष के पत्ते तोड रही हैं तो किसी के फल, फूल, डाली आदि। यह सब हाल देख उन्होने क्रोधित होकर देवागनाओ से पूछा कि– तुम मेरे उपवन को क्यो उजाड रही हो? जानती नही कि यह आश्रम विश्वामित्र का है, जिसके क्रोध से आज सारा ससार भयभीत हो रहा हे। अब या तो तुम अपने इस कृत्य के लिए मुझसे क्षमा मागो या फिर यहा से भाग जाओ, अन्यथा मे तुम्हे दण्ड दूगा।

विश्वामित्र की लाल–लाल आखे देखकर ओर बाते सुनकर देवागनाए किचित् मात्र भी भयभीत न हुई ओर उनकी मजाक उडाने लगी। एक बोली कि– ये साधु बने हुए हें जो स्त्रियो को क्रीडा करते हुए रोकते हे। दूसरी

बोली– तुम तो साधु हो, जाकर अपना काम करो। हमारी जो इच्छा होगी करेगे, देखे तुम हमे केसे रोक सकते हो?

उनका यह व्यवहार, बोलचाल विश्वामित्र की क्रोधाग्नि मे आहुति का काम कर गया। विश्वामित्र का क्रोध अब सीमा पर पहुच गया था, किन्तु ये स्त्रिया थी ओर देवागनाए थी अत विश्वामित्र इन्हे भस्म करने मे असमर्थ थे। विवश हो विश्वामित्र ने केवल यह श्राप देकर सतोष किया कि हे दुष्टाओ! तुमने जिन हाथो से मेरे उपवन को नष्ट किया है, लतादि को मरोडा है, वे तुम्हारे हाथ मेरे तप के प्रभाव से उन्ही लताओ से बध जाए।

तप की शक्ति महान् होती हे। इसको न मानने की किसी मे भी शक्ति नही हे। किन्तु जहा विवेकी मनुष्य का तप ससार घटाने मे सहायक होता हे, वहा अविवेकी की तपस्या ससार बढाने का हेतु हो जाती हे। तप की शक्ति के अधीन देवता भी हैं। जिसमे तप की शक्ति है उसका वरदान या श्राप मिथ्या नही होता।

यद्यपि देवागना होने के कारण वे देविया शक्ति–सपन्न थी परन्तु तपबल के आगे उनकी एक भी न चली। श्राप के प्रभाव से उनके हाथ बध गए ओर वे तडपने लगी। उन्होने छूटने के अनेक उपाय किये परन्तु वे सफल न हो सकी। देवागनाओ को बधी हुई देखकर विश्वामित्र ने कहा कि– अब समझ लिया कि मे कोन हू, मुझ मे क्या शक्ति हे ओर मैं क्या कर सकता हू? जब मेने समझाया था तब तो मेरी एक न मानी, अब भुगतो अपने किये का फल ओर युग–युग तक बधी रहो। मे तुमको ओर भी कठिन दड दे सकता था यहा तक कि तुम्हे भस्म कर सकता था परन्तु मैंने तुम पर स्त्री होने के कारण दया की हे ओर इतना ही दण्ड दिया हे।

इस प्रकार आत्म–प्रशसा करके विश्वामित्र अपने समाधिस्थल की ओर चले गए।

देव ने जब यह देखा कि विश्वामित्र ने देवियो को बाध दिया है, तब वह एक अनुपस्थित सेवक का रूप बनाकर हरिश्चन्द्र के भृत्यो मे सम्मिलित हो गया। उसका ऐसा करने का अभिप्राय यह था कि किसी भी प्रकार से हरिश्चन्द्र को इस ओर लाकर इन देवियो को छुडवाए, और जिससे विश्वामित्र का सब क्रोध हरिश्चन्द्र पर पलट जाए।

[illegible] निर्दोष [illegible] इस अभिप्राय [illegible] अपना दुख राजा को सुना [illegible] राजा के दर्शन कर प्रसन्न

हो जाए और राजा भी प्रजा को पुत्र की तरह देख ले। साथ ही नगर, देश, फसल, स्वच्छता आदि का भी निरीक्षण हो जाए और स्वय का स्वास्थ्य भी अच्छा रहे।

वे राजा किसी धीमी सवारी पर या पैदल इस प्रकार आवाज दिलवाते हुए चलते थे कि राजा के आने की सब को खबर हो जाए और जिसे जो प्रार्थना करनी हो वह कर सके तथा राजा ध्यानपूर्वक प्रार्थना को सुनकर उसका दु ख मिटाने का उपाय कर सके। लेकिन आज के युग मे यह सब बाते तो सपने–जैसी हो गई हैं।

नित्य की तरह राजा हरिश्चन्द्र राजकार्य से निवृत्त होकर घूमने निकले। नगर मे होते हुए वे वन मे आ पहुचे। वन मे उस छद्मवेशी सेवक के कहने से वे विश्वामित्र के आश्रम की ओर भी चले गए। जब आश्रम मे बधी हुई देवागनाओ ने देखा कि कोई चवर छत्रधारी इधर आ रहा तो यह अनुमान लगाया कि हो न हो, राजा हरिश्चन्द्र ही इस ओर आ रहे हैं। हमारे बडे भाग्य है कि इस बहाने हमे राजा हरिश्चन्द्र ही इस ओर आ रहे है। लेकिन सभव हे कि हमारे चुप रहने से राजा इस ओर ध्यान न दे सके और हम बधी हुई ही रह जाए और दर्शन भी न हो। इसलिए उन्होने ऐसा विचार किर एक साथ चिल्लाने का निश्चय किया और जिससे हमारी पुकार सुनकर राजा इस ओर आए।

इस प्रकार विचार करके देवागनाओ ने करुणोत्पादक चीत्कार प्रारम्भ किया। उनकी दु खभरी प्रकार सुनकर हरिश्चन्द्र ने सेवको को आज्ञा दी, जाकर पता लगाओ कि ऋषि–आश्रम के पास यह कोन रो रहा है? सेवकगण आज्ञा पाकर आश्रम मे गये और वापस लौटकर बतलाया कि आश्रम मे चार कोमलागी स्त्रियो को किसी ने बडी निर्दयतापूर्वक वृक्षो से बाध रखा है। उन्ही की यह पुकार है और वे आपसे मुक्त कर देने के लिये प्रार्थना कर रही हैं।

इस बात को सुनकर राजा के हृदय मे उनके प्रति दया उत्पन्न हुई। वे तत्काल आश्रम मे आए ओर उन देवागनाओ से पूछा कि– तुमको किसने ओर क्यो बाध रखा है?

देवागनाए बोली– हम इस उपवन मे क्रीडा करती हुई फूल आदि तोड रही थी, अत विश्वामित्र ऋषि ने क्रोधित होकर अपने तपोबल से हमे इन वृक्षो से बाध दिया है।

हरिश्चन्द्र–तुमको ऋषि–आश्रम मे आकर विघ्न नही करना चाहिए था। क्रीडा करने के लिए अन्य स्थानो की कमी नही हे। तुमने अपराध तो अवश्य किया है लेकिन ऋषि ने जो दड दिया है, वह अपराध से बहुत अधिक है। इसके सिवाय मुनि को दड देना भी उचित नही था और दड देना उनके अधिकार से परे की बात है। दड देना राजा का काम हे, मुनि का काम दड देना नही है।

देविया– हम आपसे प्रार्थना करती हैं कि आप हमे बन्धनमुक्त कर दीजिए।

हरिश्चन्द्र– मैं तुम्हे छोड देता हू परन्तु भविष्य मे कभी भी किसी ऋषि–आश्रम मे उत्पात मचाकर विघ्न मत करना।

देविया– अब कभी ऐसा नही करेगी।

एक क्रोधी तपस्वी के तपोबल की अपेक्षा एक गृहस्थ सत्यवादी का सत्यबल कही अधिक है। मनुष्य तपस्या चाहे जितनी करता हो परन्तु जो क्रोध का दमन न कर सके उसकी अपेक्षा वह गृहस्थ प्रशसनीय हे जो सत्य परायण हे।

हरिश्चन्द्र ने उन देवागनाओ को खोलने के लिए जेसे ही हाथ लगाया कि वे बन्धन मुक्त हो गई ओर राजा के प्रति कृतज्ञता प्रगट करने लगी तथा आज्ञा पाकर विमान द्वारा आकाश म उड गई व वहा से पुष्पवृष्टि करके आपस मे कहने लगी–

"हरिश्चन्द्र के चेहरे पर केसा तेज झलक रहा हे।

यह सत्य का ही तेज हे। उनके हाथो म सत्य की केसी विचित्र शक्ति हे कि जिन बन्धनो से छूटने म हम लोग देवागना होते हुए भी हार गई थी वे ही बन्धन हरिश्चन्द्र का हाथ लगते ही टूट गए। हरिश्चन्द्र की कृपा से ही हम लोग छूट सकी हे अन्यथा न मालूम कब तक बधे रहना पडता। उसके हाथो म केसी असाधारण शक्ति हे कि बधन खुलने म क्षणमात्र की भी देर नही लगी।

जिस हरिश्चन्द्र म सत्य का इतना तेज हे जो पर- दु:ख भजक हे उसके सत्य को डिगाने म पति कदापि समर्थ नही हो सकते हे। यह उनकी व्यर्थ चेष्टा है।

यद्यपि तुम्हारा यह कहना ठीक हे परन्तु पति–आज्ञा के पालन का ही यह एक फल हे कि हम लोगो को [illegible] हरिश्चन्द्र के दर्शन भी [illegible] [illegible]

की आज्ञा मानने से लाभ ही लाभ हुआ है। पति–आज्ञा–पालन का कैसा प्रत्यक्ष फल मिला।"

इस प्रकार बाते करती हुई वे देवागनाए अपने घर आई। देव भी यह विचार कर वापस लौट आया कि हरिशचन्द पर विश्वामित्र को क्रोध करने का कारण पैदा कर दिया, अब देखे आगे क्या होता है? आशा तो है कि षडयन्त्र पूर्णरूपेण सफल होगा।

उधर हरिश्चन्द्र भी अपने महलो मे लौट आए। उनकी दृष्टि मे देवागनाओ के बधन–मुक्ति का कार्य कोई महत्व नही रखता था, इसलिए उन्हे स्मरण भी न रहा।

9. जब राजर्षि कुपित हुए

देवागनाओ को बाधकर विश्वामित्र अपने समाधिस्थल पर लौट आए। उन्हे इस बात का गर्व था कि मैने अपने तपोबल से देवागनाओ को बाध दिया और अब उन्हे मुक्त करने की किसी मे भी शक्ति नही है। मुक्त करूगा तो मैं ही करूगा। इनके पति के अनुनय–विनय करने पर ही मैं अपना क्रोध जताता हुआ इन्हे बन्धनमुक्त करूगा।

लेकिन उन्हे यह मालूम नही था कि दूसरे को दु ख देने वाला स्वय भी दु ख मे पडता हे। किसी दूसरे को अपमानित करने के लिए पहले स्वय को निर्लज्ज बनना पडता हे। परन्तु दूसरे को सुखी करने मे सम्मानित करने मे और दूसरो की रक्षा करने मे स्वय को भी सुख अनुभव होता है। इसीलिए महापुरुष उपदेश देते हे कि किसी की आत्मा को कष्ट न पहुचा कर उन्हे सुखी बनाओगे तो तुम स्वय भी सुखी होओगे।

विश्वामित्र समाधि मे तो बेठे किन्तु उनका चित्त स्थिर न हो सका। उन्हे रह–रहकर सिर्फ उन देवागनाओ का व्यवहार, अपना क्रोध और अपने तपोबल से उनका बाधा जाना आदि बात याद हो उठती थी। समाधिस्थ न हो सकने से वे समाधिस्थल से बाहर आये। इतने मे ही शिष्यो ने आकर बतलाया कि देवागनाए तो छूटकर चली गई है। शिष्यो की बात सुनकर विश्वामित्र को बहुत आश्चर्य हुआ। वे विचारने लगे कि क्या मेरे तप मे इतनी भी शक्ति नही रही? यदि ऐसा होता तो वे बधती ही क्या? उन्होने शिष्यो से पूछा– वे आप ही छूटी या किसी ने उन्हे छुडा दिया?

शिष्य बोले कि आपके लौटने के कुछ समय बाद ही राजा हरिश्चन्द्र आए थे और देवागनाओ का करुण क्रन्दन सुनकर वे उनके निकट गए और उनको बन्धनमुक्त कर दिया

शिष्यो की यह बात सुनकर विश्वामित्र अपने आपे मे न रह सके और बोले शायद हरिश्चन्द्र को मेरा, मेरे तपोबल का और मेरे क्रोध का कुछ भी भय नही है। क्या इस पृथ्वी पर है कोई ऐसा मनुष्य जो मेरी उपेक्षा कर सके? क्या हरिश्चन्द्र को यह मालूम नही कि बडे-बडे ऋषियो को मुझ से किस प्रकार हार माननी पडी। हरिश्चन्द्र! अपने राजमद मे, अपने सत्य के अहकार मे और अपनी सहृदयता दिखलाने के लिए तूने देवागनाओ को छोड तो दिया है परन्तु देख, अब मै तुझे कैसा दण्ड देता हू कि तेरा सब घमण्ड मिट जाय और तू समझ सके कि तपस्वियो के और विशेषत विश्वामित्र के अपराधियो को छोडने का क्या फल होता है? यदि तुझे इस कार्य का उचित दड न दिया तो मेरे विश्वामित्र कहलाने को, मेरे तप को और मेरे क्रोध को धिक्कार है।

विश्वामित्र को हरिश्चन्द्र पर क्रोध होने के कारण रातभर नीद नही आई। वे विचारते रहे कि कब सूरज निकले और कब हरिश्चन्द्र को उसी की सभा मे उसके कृत्य का दण्ड दू।

क्रोध और क्षमा, दया और हिसा मे कितना अन्तर है, यह विश्वामित्र और हरिश्चन्द्र की दशा से स्पष्ट है। देवागनाओ को बाधकर भी विश्वामित्र को शाति प्राप्त न हुई, लेकिन राजा हरिश्चन्द्र विश्वामित्र के भय से निश्चिन्त होकर बडे ही सुखपूर्वक सोए।

नियमानुसार राजा हरिश्चन्द्र सूर्योदय से पहले ही उठकर अपने नित्यकर्म से निवृत्त हो गए एव सूर्योदय के साथ ही साथ न्यायासन पर आकर विराज गये और न्याय कार्य मे दत्त-चित्त हुए। वे एक-एक न्याय-कार्य को इस प्रकार निपटाते जाते थे कि वादी और प्रतिवादी दोनो ही प्रसन्न हो उठते थे और अपनी हानि पर भी दोनो मे से किसी को कुछ भी दु ख न होता था।

न्याय और योग के कार्य मे बहुत-कुछ समानता है। जिस प्रकार योगी आत्म-चिन्तन के समय अन्य सब बातो को भूल जाता है, उसी प्रकार न्याय करने वाला भी न्याय-कार्य के आगे अन्य बातो को भूलकर अपने मन को न्याय मे लगा देता है। जैसे योगी ससार के प्राणिमात्र को आत्मवत् समझते है वेसे ही न्याय करने वाला भी सब को आत्मवत् समझता है और दूसरे के सुख-दु ख का अनुमान अपनी आत्मा मे करके न्याय-कार्य करता है। ऐसा करने वाला ही न्याय-नदी के पार उतर सकता है अन्यथा वह बीच मे ही रह जाता हे और उसका न्याय अन्याय कहलाता है।

महाराज हरिश्चन्द्र का यह नियम था कि नित्य का कार्य नित्य ही कर डाला जाय। कार्य को बाकी रखना प्रजा को पुन आने–जाने का कष्ट देना उन्हे अनुचित् मालूम होता था। लेकिन आज के न्यायकर्ता प्राय न्याय–कार्य को विशेष समय तक पटक रखते हैं। परन्तु ऐसा करना न्याय–प्रणाली के विरुद्ध है।

न्याय के जितने भी मामले थे, उन सब का महाराज हरिशचन्द्र ने फैसला कर दिया था। वे न्यायालय से उठने वाले ही थे कि द्वारपाल ने आकर निवेदन किया कि विश्वामित्र ऋषि पधारे हैं और आप से न्याय चाहते हैं।

इस समाचार को सुनकर राजा आश्चर्य मे पड गये कि विश्वामित्र तो ऋषि है वे न्यायालय मे किस कारण आये है? यदि मेरे योग्य कोई कार्य था तो मुझे ही सन्देशा देकर बुलवा लेना चाहिए था, परन्तु वे स्वय आए, यह क्यो? ऋषि–मुनि को न्यायालय की शरण लेना पडे, यह कदापि उचित नही है ओर फिर विश्वामित्र जैसे तपस्वी न्यायालय मे जाए, यह तो ओर भी आश्चर्य की बात है। राजा ने द्वारपाल को उत्तर दिया कि– उन्हे सम्मान सहित ले आओ।

जिस प्रकार सर्प को देखकर दूसरे लोग भयभीत हो जाते हैं परन्तु सर्प का मत्र जानने वाला उससे भयभीत नही होता हे। उसी प्रकार द्वारपाल की बात सुनकर सभा के अन्य लोग तो विश्वामित्र के आने से सशक हो उठे परन्तु हरिश्चन्द्र को किसी प्रकार की शका या भय नही हुआ ओर नि शक थे।

10. दंड देने का अधिकार राजा को है

विश्वामित्र के न्यायालय मे आते ही महाराज हरिश्चन्द्र सभासदो सहित खडे हो गए, और उनका सत्कार करने के लिए सिहासन से उतरने लगे।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि सच्चा राजा किसी सम्प्रदाय का पक्षपाती नही होता किन्तु उस धर्म का अनुयायी होता है जो सत्य होता है, सत्य से अनुप्राणित होता हे। राजा सभी धर्मो को समान दृष्टि से देखता हे और समझता है कि मुझ पर तो शाति रक्षा का भार है। इस लिए सभी धर्मो को समान समझकर उनके अनुयायियो को समान दृष्टि से देखता है और साधु–सन्तो आदि का उचित सत्कार करना राजा का धर्म है। ऐसा राजा नीतिज्ञ माना जाता है।

लेकिन राजा को सिहासन से उतरते देख विश्वामित्र ने क्रोधभरे शब्दो मे कहा–बस राजा! सिहासन पर ही ठहरो। मै तुमसे सम्मान पाने की अभिलाषा से नही आया हू। तुम न्यायाधीश हो। अत मैं तुमसे न्याय कराने की आशा से यहा आया हू।

इस प्रकार विश्वामित्र की क्रोधभरी बात सुन और उनका भयकर स्वरूप तथा लाल लाल–आखे देखकर सभासद तो काप उठे किन्तु हरिश्चन्द्र को किचित् भी भय नही हुआ। उन्होने नम्रतापूर्वक कहा–महाराज, आप इतने क्रोधित क्यो हैं? न्याय और क्रोध आपस मे दुश्मन है। प्राय सच्चा मनुष्य भी क्रोध करने के कारण झूठा माना जाता है। यदि मेरे कहने योग्य कोई न्याय है तो आप शान्तिपूर्वक विराजिए और आज्ञा दीजिए कि आप किस बात का न्याय चाहते है? मै न्याय करने के लिए ही बैठा हू, अत आपके लिए कोई दूसरा थोडे ही हू। मुझसे न्याय पाने का तो सबको अधिकार है।

राजा की शात और तेजोमय मुद्रा देखकर विश्वामित्र चकित रह गए। वे न्यायलय मे आने का पश्चात्ताप करके मन मे कहने लगे कि मैने यहा

आकर बडी भूल की। यदि मै यहा न आकर अपने आश्रम मे बैठे ही इसे दड देता तो अच्छा होता, इसलिए न्याय–प्राप्ति के सभी नियमो का पालन करना पडेगा। मैने सोचा तो यह था कि मै आते ही अपना क्रोध दिखाकर राजा को भयभीत कर दूगा। परन्तु यहा आकर तो मुझे अपमानित ही होना पडा।

राजा हरिश्चन्द्र ने विश्वामित्र को आसन दिया ओर सम्मान करते हुए कहा कि–महाराज, आज्ञा दीजिए कि आप किस बात का न्याय चाहते है?

विश्वामित्र–मै जिस बात का न्याय चाहता हू क्या तू उसे नही जानता, जो मुझसे पूछता हे?

हरिश्चन्द्र– महाराज शात होइए और विचारिए कि यदि मै जानता होता तो आपको यहा पधारने का कष्ट ही क्यो करना पडता?

विश्वामित्र–जैसा तू राजा है वैसे ही हम योगी हैं। जिस प्रकार तुझे राज्य के अधिकार हैं वैसे ही हमे आश्रम के अधिकार है।ऐसी स्थिति मे जिस प्रकार तू राज्य मे अपराध करने वाले को दड देता हे, उसी प्रकार हम आश्रम मे अपराध करने वाले को दड दे सकते हे या नही?

हरिश्चन्द्र–महाराज, आश्रम राज्य–सीमा के ही अन्तर्गत हे अत वहा अपराध करने वाला भी राज्य मे ही अपराध करने वाला समझा जाएगा। ऐसा अपराधी राज्य द्वारा ही दडित हो सकता हे।

विश्वामित्र– हमारे आश्रम मे अपराध करे हमारी अवज्ञा करे ओर हम उसे दड भी नही दे सकते?

हरिशचन्द्र– नही महाराज, आपको दड देने का अधिकार नही हे। आपकी अवज्ञा करने वाला भी राज्य का अपराधी हे ओर उसको दड दने के लिए ही राजा राजदड धारण करता हे।

विश्वात्रि–जान पडता हे, तेरे बुर दिन आ गए ह इसी से तुझे ऋषिया की प्रतिष्ठा का ध्यान नही हे। जब तू हमार बनाए हुए नियमा क अनुसार राज–कार्य करक अपराधिया का दड दता हे तो हम अपन आश्रम के अपराधी का दड क्या नही द सकत?

विश्वामित्र–अच्छा, एक बात और बता। हमने अपने अपराधियो को तपबल से बाधा था, लेकिन इस पृथ्वी पर मेरा एक ही शत्रु, प्रतिद्वन्द्वी और मेरी अवज्ञा करने वाला ऐसा है कि जिसने उनको छोड दिया। वह छोडने वाला अपराधी है या नही और यदि है तो किस दड के योग्य हैं?

विश्वामित्र की इस बात को सुनते ही हरिश्चन्द्र को कल की बात स्मरण हो आई। वे समझ गये कि ऋषि ने अपने तपबल का प्रभाव बतलाते हुए यह बात मेरे लिए कही है। राजा ने हसते हुए और व्यग्य करते हुए कहा–महाराज यह बात तो मेरे लिए ही है। क्योकि मैने ही कल देवागनाओ को बन्धनमुक्त किया था। लेकिन ऐसा करने मे न तो मेरा भाव आपसे दुश्मनी का था न प्रतिद्वन्दिता का और न अवज्ञा करने का ही। वे लता–वृक्षो से बधी दु ख पाती हुई चिल्ला रही थी, इसीलिए मैने दया कर और उन्हे अपना कर्तव्य समझाकर छोड दिया था। ऐसी अवस्था मे मेरा कोई अपराध नही है। इस मामले मे आप वादी है और मै प्रतिवादी हू, अत यदि आप उचित समझे तो इस मामले का न्याय पचो द्वारा करवा लिया जाय।

हरिश्चन्द्र का उत्तर सुनकर विश्वामित्र विचारने लगे कि मैंने तो यह सोचा था कि इस प्रकार इससे अपराध स्वीकार कराके इसी के मुह से इसे दड दिलवाऊगा। परन्तु इसने तो मुझे ही अपराधी ठहराया है और दड न देने की अपनी कृपा बता रहा है। मन मे यह विचार आते ही विश्वामित्र को निराशा हुई। वे असमजस मे पड गए कि यदि मै राजा के कथन को ठीक मानता हू तो यह एक प्रकार से भरी सभा मे मेरा अपमान हुआ मान जाएगा।

विश्वामित्र पुन अपना क्रोध प्रगट करते हुए कहने लगे–तू तो अपने अपराध को स्वीकार करने के बदले, उलटा मुझ पर ही दोषारोपण करता है। तपस्वियो की बात मे बाधा डालने का तुझे कदापि अधिकार नही है लेकिन तूने अज्ञानवश इसे अपना ही अधिकार मान रखा है। सूर्यवश के सिहासन पर तो ऐसे अज्ञानी को बैठना बिल्कुल उचित नही है। अत अपना राज्यभारत दूसरे को देना ही ठीक है। अज्ञानी राज्य करने के योग्य नही होता है।

हरिश्चन्द्र–महाराज! किसी दु खी का दु ख मिटाना मेरा कर्त्तव्य है। मैने कर्त्तव्य और करुणा की प्रेरणा से देवागनाओ को बधनमुक्त किया है। इसमे मेरा अपराध नही है और जब अपराध ही नही है और जब अपराध ही नही तो केवल आपको प्रसन्न करने के लिए यह कार्य अपराध नही माना जा सकता है। आप मेरा अपराध सिद्ध कीजिए ओर फिर मैं दड न लू तो मेरा

अज्ञान है। ऐसी स्थिति मे मुझे राज्यभार दूसरे के हाथो मे सौंप देना ही उचित होगा। यदि कर्त्तव्यपालन ही अज्ञान कहा जाएगा तो ज्ञान किसे कहेगे? किसी दु ख मे पडे हुए को दु खमुक्त करने मे, चाहे कायर ओर निर्दयी अज्ञान कहे परन्तु दयावान ओर वीर तो इसे ज्ञान ही मानेगे तथा मोका पडने पर उसे दु खमुक्त करने की चेष्टा करेगे। आपकी दृष्टि मे यदि देवागनाओ को छोड देना अज्ञान और अपराध है तो इसका पचो द्वारा निर्णय करा लीजिए। यदि पचो ने आपकी बात का समर्थन किया तो मैं दड का पात्र हू और साथ ही राज्यपद के अयोग्य हू। उचित तो यह था कि मेरे इस कार्य से आप यह विचार कर प्रसन्न होते कि मैने तो क्रोधित हो उन देवागनाओ को बाध दिया था ओर राजा ने अपने राजधर्म का पालन किया हे। लेकिन इस जगह आप मुझे दोषी ठहराते है और मेरा अज्ञान बतलाते हैं। आपको इस पर भी विचार करना चाहिए था कि यदि मेरा कार्य राजधर्म के विरुद्ध होता तो देवागनाए आपके तपोबल से बधी थी, वे खुलती कैसे? महाराज, जरा शातिपूर्वक विचार कीजिए तो आपको मेरा यह कार्य अनुचित नही जचेगा।

दुराग्रही मनुष्य उचित-अनुचित ओर न्याय-अन्याय को न देखकर किसी भी प्रकार से अपनी हठ पूरी करना चाहती है। इसीलिए विश्वामित्र राजा से अपराध स्वीकार करने की हठ पकडे हुए थे। लेकिन राजा किसी को भी प्रसन्न करने के लिए कदापि झूठ नही बोल सकता। विश्वामित्र ने सोचा कि में सतोष कर लू ओर राजा को किसी प्रकार से नीचा नही दिखाऊ तो यह मेरा ओर भी अपमान होगा। यदि मध्यस्थ द्वारा निर्णय कराता हू तो निश्चय ही वे लोग मेरे पक्ष को झूठा बतला देंगे। एक भूल तो मैने यहा आने की की ओर अब पचो से निर्णय कराता हू तो वह मेरी दूसरी भूल होगी। इस प्रकार तो राजा अपना अपराध स्वीकार नही करता है इसलिए अब अपराध स्वीकार कराने के लिए किसी दूसरे उपाय का अपनाना चाहिए। ऐसा विचार कर विश्वामित्र कपटभरी प्रसन्नता दिखलाते हुए बोले-हा तो तूने राजधर्म का पालन करते हुए उन देवागनाओ को छोडा है क्या?

राजा-हा महाराज।

विश्वामित्र-ठीक है लेकिन इसी प्रकार क्या अन्य सब बातो मे भी राजधर्म का पालन करेगा?

हरिश्चन्द्र- अवश्य! यदि मैं किसी स्थान पर राजधर्म का पालन न कर सका तो फिर मैं राजा कैसा?

विश्वामित्र—यह बात तो तू जानता ही है कि राजधर्म मे दान करना राजा का कर्तव्य बतलाया गया है और राजा से की गई याचना भी कभी खाली नही जाती।

हरिशचन्द्र— जानता ही नही, बल्कि पालन भी करता हू।

विश्वामित्र—अच्छा, हमारी एक याचना पूरी करेगा?

हरिशचन्द— आप याचना कीजिए और मै उसे पूरा करने मे असमर्थ रहू तब और कुछ कहियेगा।

विश्वामित्र— मै तुझसे ससागर पृथ्वी और तेरे राजवैभव की याचना करता हू।

विश्वामित्र की बात सुनकर हरिशचन्द्र के चेहरे पर बल भी नही आया और प्रसन्न मन से कहा कि राज्य क्या, यदि आप इस शरीर को भी मागते तो यह भी आपकी सेवा मे अर्पण करता। राज्य मागकर तो आपने मेरे सिर का बोझ ले लिया है। अत इसके देने मे मुझे क्या आपत्ति हो सकती है?

हरिश्चन्द्र ने पृथ्वी देने के लिए पृथ्वी पिड और सकल्प करने के लिये जल की झारी लाने की सेवक को आज्ञा दी।

11. याचना पूरी करना राजधर्म है

दान, तप और सग्राम यह तीनो ही कार्य वीरता होने पर होते हैं। लेकिन जो कायर हैं वे इन तीनो मे से किसी एक को भी नही कर सकते हैं। यद्यपि भविष्य का विचार तो वीर लोग भी करते हैं लेकिन वे भविष्य के कष्टो का अनुमान करके अपने निश्चय से विचलित नही होते है।

राजा को निर्भयतापूर्वक पृथ्वी पिड ओर जल की झारी मगाते देख विश्वामित्र चकराए। उन्होने सोचा तो यह था कि जब राज्य देने मे हरिश्चन्द्र को सकोच होगा तब में कहूगा कि देवागनाओ को बधनमुक्त करने मे तो राजधर्म का पालन किया ओर यहा हिचकिचाता है? जब उस समय नही सोचा था तो अब क्यो विचार करता हे? इस युक्ति से बाध्य कर देवागनाओ को छोडने का अपराध स्वीकार करा लूगा ओर मेरी बात रह जाएगी। लेकिन अब मुझे क्या करना चाहिए? मालूम पडता हे कि इसे बडा ही अहाकर हे लेकिन देखता हू कि इसका यह अहकार कब तक रहता हे।

दूराग्रही मनुष्य दूसरे के सत्य ओर कर्तव्यपालन को भी अहकार समझता हे। उसे इस बात का विचार नही होता कि अपनी झूठी हठ सिद्ध करने के लिए इस प्रकार के उपाय करना अहकार हे या सत्य का पालन करना अहकार हे।

पृथ्वी का पिड ओर जल की झारी आ जाने पर राजा ने पृथ्वी–पिड हाथ मे लेकर विश्वामित्र से कहा–महाराज, ग्रहण कीजिए।

राजा को इस प्रकार राज्य देने मे तत्पर देख महामत्री खडा होकर कहने लगा–महाराज, आप बात ही बात मे यह क्या कर रहे है? बिना किसी बात का विचार किए, बिना किसी से सम्मति लिए अकेले ही राज्य दे रहे है? कोई कार्य एकदम नही कर डालना चाहिए। किसी कवि ने कहा है–

सहसा विदधीत न क्रियामविवेक परमापदापदम्।

हठात् किसी काम को नही कर डालना चाहिये। बिना विचारे काम करने से विपत्ति की सभावना रहती है।

आप यह तो विचारिये कि जरा सी बात के लिये सारा राज्य ऐसे क्रोधी ऋषि के हाथ मे सौंपने से राज्य की क्या दशा होगी और प्रजा को कितना कष्ट होगा? बात तो देवागनाओ के छोडने का अपराध स्वीकार करने की ही तो है और इस जरा सी बात के लिए राज्य दे देना दूरदर्शिता कैसे कही जा सकती है?

महामत्री की यह बात सुनकर विश्वामित्र के हृदय मे प्रसन्नता की लहर दौड गई कि यदि महामत्री के कहने से हरिश्चन्द्र मान जाय और अपना अपराध स्वीकार कर ले तो यह सब झझट ही मिट जाय। लेकिन हरिश्चन्द्र का उत्तर सुनते ही विश्वामित्र की आशा क्रोधपूर्ण निराशा मे परिणत हो गई।

हरिश्चन्द्र महामत्री की बात सुनकर बोले–महामत्री, शुभ कार्य मे सहायता देना तुम्हारा कर्त्तव्य है, न कि बाधा देना। तुम जरा इस बात का भी तो विचार करो–

धनानि जीवितं चैव, परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत्।
सन्निमित्ते वर त्यागो, विनाशे नियते सति।।

बुद्धिमान मनुष्य अपने धन और प्राणो को दूसरो के लाभ के लिए त्याग देते हैं, क्योकि इनका नाश होना तो निश्चित है। अत परोपकार के लिये इनका त्याग करना श्रेष्ठ है।

मे राज्य को जुए के दाव पर लगाता होऊ या किसी और कार्य मे देता होऊ तो तुम्हारा कहना ठीक हे परन्तु मे तो उसे दान कर रहा हू। शायद तुम्हारी दृष्टि मे राज्य एक महान वस्तु हो और धर्म एक तुच्छ वस्तु हो परन्तु मेरी दृष्टि से राज्य तुच्छ और धर्म महान् हे। मै तो धर्मपालन के लिए इस राज्य को दान दे रहा हू और इससे तो मेरे पूर्वजो की कीर्ति ही दिग्दिगन्त मे फैलेगी कि सूर्यवश ही एक ऐसा वश हे जिसने राज्य तक दान मे दे दिया।

महामत्री! भावुकता के वश होकर राज्य नही दे रहा हू बल्कि ये याचक बनकर माग रहे है। याचक की याचना पूरी करना राजा का धर्म हे।

मे राज्य देने की बात कह चुका हू अत तुम्हारा कहना–सुनना व्यर्थ हे। मैं अब अपने निश्चय से टल नही सकता किसी कवि ने कहा हे–

विदुषां वदनाद्वाच सहसा यान्ति नो बहि ।
याताश्चेन्न पराचन्ति द्विरदाना रदा इव।।

विद्वान मनुष्य के मुख से सहसा कोई बात नही निकलती ओर यदि निकलती हे तो फिर लौटती नही। जैसे हाथी के दात बाहर निकलने के पश्चात् फिर भीतर नही जाते।

यदि अपराध स्वीकार करने की कहो तो मे झूठ किसी समय ओर किसी भी अवस्था मे नही बोल सकता। रही प्रजा की बात सो यदि प्रजा मे शक्ति होगी तो वह विश्वामित्र को अपने अनुकूल बना लेगी। प्रजा से विरोध करके राजा एक पल भी नही ठहर सकता ओर न ऐसे राजा को प्रजा ठहरने ही देती है। इसलिए इस विषयमे कोई विचारणीय बात नही हे।

महामत्री! में राज्य विश्वामित्र ऋषि को दे रहा हू, किसी दूसरे की तो राज्य मागने की हिम्मत ही नही पड सकती। ये अपना राज्य छोडकर आए हे, अत राजकार्य से परिचित हे। यही कारण हे कि इन्होने मुझ से राज्य मागा। राज्य देने मे मेरी कोई हानि नही है, बल्कि इन्ही की हे जो राजर्षि पद छोडकर फिर राज्य करना चाहते हैं। इस राज्य के लेन–देन मे बहुत बडा रहस्य हे जो अभी अप्रकट हे। यदि ऐसा न होता तो ये राजर्षि फिर राज्य करने की इच्छा क्यो करते? ऐसे बडे आदमी की राज्य करने की इच्छा हुई तो समझना चाहिए कि इसमे कोई भेद हे। राज्य देने मे अपनी किचित् भी हानि नही हे बल्कि लाभ ही हे। इसलिए धर्म ओर सत्य पर विश्वास रखो ओर इस श्रेष्ठ कार्य मे विघ्न मत डालो।

राजा की बात सुनकर महामत्री तो बेठ गए परन्तु विश्वामित्र विचारने लगे कि राजा ने तो मुझे राजर्षि पद स गिराने का विचार किया है। यह अपना राज्य दकर मुझ त्यागी स भोगी बना रहा है। मने राज्य मागकर अच्छा नही किया ओर यदि अब नही लेता हू तो राजा की बात गलत होती

विश्वामित्र, यहा आकर न्याय मागने और फिर राज्य मागने आदि बातो पर मन ही मन पश्चात्ताप तो करते है, परन्तु अपना दुराग्रह छोडने को तैयार नही हैं। ऐसा करने मे वे अपना अपमान समझते है। इसीलिए अपना राजर्षि पद खोकर भी राजा से अपनी इच्छानुसार अपराध स्वीकार कराना चाहते है, राजा को नीचा देखने के इच्छुक है।

विश्वामित्र ने पुन हरिश्चन्द्र से कहा– देख राजा, अच्छी तरह विचार ले। पीछे से पश्चात्ताप करने से कोई लाभ न होगा। अविवेकपूर्वक, शीघ्रता मे आकर जो कार्य किया जाता हे, उसका दु ख जीवनभर नही भूलता।

हरिश्चन्द्र–महाराज पश्चात्ताप तो बुरा काम करके हुआ करता है, सत्कार्य मे किस बात का पश्चात्ताप? धन ओर राज्य ये सब परिवर्तनशील हैं, इनकी स्थिति सदा एक–सी नही रहती। किसी कवि ने कहा है–

दान, भोग अरु नाश, तीन होत ग़ति द्रव्य की।
नाहिन द्वै को वास, तहा तीसरो बसत है।।

दान, भोग और नाश ये धन की तीन गतिया होती है। जो अपने धन का उपयोग न दान मे करता हे और न भोग मे, उसके धन की तीसरी गति नाश अवश्य हे।

महाराज, यदि यह राज्य सुकृत्य मे लग जाय तो प्रसन्नता की बात हे, इसमे पश्चात्ताप की कौन सी बात है? मैं आपको प्रसन्न मन से ससागर पृथ्वी ओर राज–पाट देता हू, आप लीजिए।

विश्वामित्र ने जब देखा कि यह अपने निश्चय पर दृढ है, तब क्रोधित होकर बोले–देखता हू, तू कैसा दानी है! अच्छा ला!

हरिश्चन्द्र ने पृथ्वी का पिण्ड विश्वामित्र के हाथ मे देते हुए कहा–"इद न मम अब यह पृथ्वी मेरी नही है। में अपनी सत्ता के बदले विश्वामित्र ऋषि की सत्ता स्थापित करता हू।

विश्वामित्र ने राजा से दान पाकर आशीर्वाद दिया–"स्वस्ति भव। तेरा कल्याण हो।

अब इस राज्य मे तो इसका कुछ रहा नही हे, इसलिए इसे किसी ओर बात मे फसा लू, तब मेरा मनोरथ सिद्ध होगा। ऐसा विचार कर विश्वामित्र ने हरिश्चन्द्र से कहा–

राजा! जेसा तूने दान दिया हे वेसा आज तक किसी दूसरे ने नही दिया। लेकिन तुझे मालूम होना चाहिए कि दान के पश्चात् दक्षिणा का दिया

जाना आवश्यक हे। अत जितना बडा दान तूने दिया है, उसी के अनुसार दक्षिणा भी होनी चाहिए।

हरिश्चन्द्र—हा महाराज, दक्षिणा भी लीजिए। महामत्री कोष मे से एक सहस्र स्वर्णमुद्रा ला दो।

हारे जुआरी को एक दाव जीत जाने पर जैसी प्रसन्नता होती है वैसी ही प्रसन्नता विश्वामित्र को हरिश्चन्द्र की यह बात सुनकर हुई। वे मन ही मन कहने लगे कि अब यह अच्छा फसा है। अब इसकी बुद्धि ठिकाने लाए देता हू। जिस क्रोध को कारण न मिलने से विश्वामित्र अच्छी तरह प्रकट न कर सके थे, उसको प्रकट करने के लिए उन्हे कारण मिल गया। वे क्रोध प्रकट करते हुए कहने लगे—तूने मुझे राजपाट दान मे दिया हे या मेरा उपहास कर रहा है?

हरिशचन्द्र—क्यो महाराज?

विश्वामित्र—जब तूने राजपाट दान मे दे दिया तो फिर कोष पर तेरा क्या अधिकार रहा, जो तू उसमे से दक्षिणा देने के लिये स्वर्णमुद्रा मगा रहा हे। राज्य या उसके वैभव पर अब तेरा क्या अधिकार है? तू केवल अपने शरीर ओर स्त्री—पुत्र का स्वामी हे। यदि तेरे या तेरे स्त्री—पुत्र के शरीर पर कोई भी आभूषण हे तो वह भी मेरा हे। ऐसी अवस्था मे क्या मेरा ही धन मुझे दक्षिणा मे देता हे? मे इसलिए कहता था कि तू सूर्यवश मे उत्पन्न तो हुआ परन्तु अज्ञानी हे। पहले तो तू देवागनाओ को छोडके ओर फिर हठ करके अपना अपराध न मानने की अज्ञानता करना चाहता हे। मुझे तेरी इस बुद्धि पर तरस आती हे। इसलिए फिर कहता हू कि तू अपना अपराध स्वीकार कर ले अन्यथा तुझे बडे—बडे कष्टो का सामना करना पडेगा।

विश्वामित्र की यह बात सुनकर हरिश्चन्द्र अपनी भूल पर पश्चाताप करने लगे कि वास्तव मे अब कोष पर मेरा क्या अधिकार है जो मै उसमे से स्वर्णमुद्रा दे सकू। उन्होने विश्वामित्र से कहा—महाराज! मुझसे यह भूल तो अवश्य हुई जिसके लिए क्षमाप्रार्थी हू। अब रही दक्षिणा की बात सो मैने एक हजार स्वर्ण मुद्रा देने के लिए कहा है। यह आपका मुझ पर ऋण है। मै किसी दूसरे उपाय से आपका यह ऋण चुका दूगा।

कर कि इतनी स्वर्णमुद्रा तुझे मिलेगी कहा से, क्या इनके लिए भीख मागेगा? यदि भीख मागना चाहेगा तो मागेगा कहा? मै तो तुझे अपने राज्य मे रहने न दूगा।

हरिश्चन्द–महाराज! इक्ष्वाकुवशी देना जानते हैं, मागना नही जानते।

विश्वामित्र–जो फिर क्या करेगा, जिससे मुहरे मिलेगी।

हरिश्चन्द्र–यहि आप इसी समय मुहरे चाहते है तो अभी सिवाय शरीर के मेरे पास और कुछ नही है। यदि आप मेरे शरीर से किसी प्रकार अपना ऋण वसूल कर सकते है तो मैं इसके लिए सहर्ष तैयार हू। अन्यथा, मेरे पूर्वजो ने काशी–क्षेत्र को राज्य से इसलिए पृथक् रख छोडा है कि वृद्धावस्था मे राज्य त्याग के पश्चात् वहा स्वतन्त्रतापूर्वक जीवन व्यतीत कर सके। यदि आपने इस नीति का उल्लघन न किया और काशीक्षेत्र को पूर्ववत् राज्य से पृथक ही रखा तो मैं वहा कोई उद्योग करके आपको एक मास मे एक सहस्र स्वर्णमुदा चुका दूगा। मैने वचन दिया है, इसलिए मुझे अवकाश मिलना उचित है। आप राजनीतिज्ञ है। अत मेरा विश्वास है कि आप मुझे इसके लिए अवकाश देगे और काशीक्षेत्र को राज्य से पृथक् रखने की नीति का पालन भी अवश्यमेव करेगे।

विश्वामित्र मन मे सोचने लगे कि यदि मै काशीक्षेत्र पर अधिकार करता हू तो यह कार्य राजधर्म से विरुद्ध होगा। इसके सिवा यदि राजा को एक सहस्र स्वर्णमुद्रा देने के लिए अवकाश नही देता हू तो नीति का भी भग करता हू। यह सोचकर बोले–राजा! अब भी समझ जा। एक सहस्र स्वर्णमुद्रा तेरे लिए काशी मे कही गडी नही है, जो तू निकालकर ला देगा। इसलिए मैं फिर कहता हू कि अपना अपराध मान ले जिससे राज्य भी तेरे पास बना रहे और कष्ट मे भी पडना नही पडे। अपनी हठ छोड दे, वरना यही हठ तुझे कही का न रखेगी।

हरिश्चन्द्र–महाराज! मेरी तो कोई हठ नही है। हठ तो आपकी है। आप ही बताइये कि कष्ट के भय तथा राज्य के लोभ से झूठ बोलू ओर जो कार्य अपराध नही है उसे अपराध मान लू यह कैसे हो सकता हे। आज तक न तो इस राज्य को कोई अपने साथ ले जा सका और न ही मे इसे अपने साथ ले जाने मे समर्थ हू। इसके उपयोग का ऐसा सुअवसर फिर कब मिलेगा कि आप जेसे ऋषि को मै इसे दान मे दू और अपने ऊपर एक सहस्र–स्वर्ण मुद्राओ का ऋण लू। आपकी कृपा से मुझे किसी प्रकार का कष्ट न होगा,

बल्कि में तो उद्योगी बन जाऊगा। रही स्वर्ण मुद्राओ की एक मास मे आने की बात, सो यह कार्य कठिन नही है।

विश्वामित्र–अच्छा, तू अपना हठ मत छोड और देख कि तुझे किन–किन कष्टो को भोगना पडता है। अब अवधपति महाराज विश्वामित्र आज्ञा देते हें कि तू अपनी स्त्री और पुत्र के साथ आज ही इस नगर को त्याग दे। अपने साथ तुझे एक भी कौडी ले जाने का अधिकार नही हे। दक्षिणा के विषय मे भी निर्णय सुनाये देता हू कि तू एक मास के भीतर दे देना। यदि एक मास से एक दिन भी ऊपर हुआ तो मैं अपने श्राप से तुझे कुलसहित भस्म कर दूगा। तपस्वी का श्राप कदापि मिथ्या नही होता।

विश्वामित्र की बात सुनकर हरिश्चन्द्र मुस्काए और कहने लगे कि–आपकी आज्ञा शिरोधार्य हे। साथ ही एक प्रार्थना और करता हू कि प्रजा ने अव तक जिस आनन्द से दिन व्यतीत किए है। आप भी उसे वही आनन्द प्रदान करेगे ओर उसी नीति का अनुसरण करेगे जिससे प्रजा सुखी रहे। आप उस पर दया करके इस प्रकार क्रोध न करे और न ही बात–बात मे उसे भस्म करने लगे। अन्यथा बनी–बनाई सुख–शाति नष्ट हो जाएगी।

राजा की ऐसी बाते सुनते ही विश्वामित्र की क्रोधाग्नि भभक उठी ओर कहने लगे–क्या तू हमे राज्य करना सिखलाता हे? हमे इतना भी ज्ञान नही हे कि जो तुझे सिखलाने की आवश्यकता हुई? जिनके वनाए हुए नियमो के अनुसार तूने अव तक राज्य किया हे आज उन्ही को सिखाने के लिए तेयार हुआ हे? जानता नही हे कि अव यह राज्य विश्वामित्र का हे। यदि मे पुरानी प्रथा पर ही स्थिर रहू तो फिर मेरा नाम ही क्या? तुझे अव राज्य या प्रजा की चिन्ता करने ओर उस विषय मे कुछ कहने की आवश्यकता नही हे। हमारी जो इच्छा होगी, वह करगे। सभासद्गण तुम लोग जाओ ओर कल आओ। कल से सव नियम बदल दिये जायगे ओर उनके स्थान पर महाराज विश्वामित्र नये नियम प्रचलित करेगे।

सभासद तो पहले से ही क्रुद्ध हो रहे थे अब [illegible] और

तक महाराज हरिश्चन्द्र यहा पर है। हम लोग देश–विदेश जाकर चाहे कष्ट सहे, परन्तु आप जैसे अन्यायी के राज्य मे कदापि नही रहेगे। जिसने अपने दाता के साथ ऐसी कठोरता का व्यवहार किया है, वह हमारे साथ कब अच्छा व्यवहार करेगा? आप अच्छी तरह समझ ले कि हम लोग उन्ही महाराज हरिश्चन्द की प्रजा हैं जिन्होने अपना राज्य देने मे कोई सकोच नही किया तो हमे घर–बार आदि छोडने मे क्या सकोच होगा? यदि आप राज्य ही करना चाहते हैं तो महाराज के बनाए हुए नियमो को उसी प्रकार रखिए और महाराज को यहा से जाने की आज्ञा वापिस लीजिए। यह बात दूसरी है कि महाराज के बनाए हुए नियमो मे यदि कोई दोष हो तो उसे दूर करे परन्तु सर्वथा बदल कर आप शासन कदापि नही कर सकते हैं। महाराज चले नही कि हम लोग भी उन्ही के साथ चले जाएगे। वे राज्य के भूखे नही है। आप प्रसन्नतापूर्वक राज्य कीजिए, परन्तु उन्हे यहा से जाने की आज्ञा न दीजिए। रही, आपकी दक्षिणा की बात सो हम आपको दिए देते हैं। राज्य की सपत्ति तो हमारी हो सकती है और है भी, परन्तु हमारी सपत्ति पर राज्य का कोई अधिकार नही है। इसलिए आप एक हजार स्वर्णमुद्रा हमसे लेकर महाराज को ऋणमुक्त कीजिए और उन्हे यही रहने की आज्ञा दीजिए। इस कथन के अनुसार कार्य करने पर तो हम लोग आपसे सहयोग कर सकते हैं अन्यथा ऐसा न हो सकेगा।

आज के लोग यदि उस समय सभासद् होते तो सभवत विश्वामित्र की हा मे हा मिलाने के सिवाय उनके विरुद्ध बोलने की हिम्मत तक न करते। उन्हे तो अपने पदरक्षा की चिन्ता रहती। लेकिन उस समय के सभासद् सत्यप्रिय थे। सत्य के आगे वे धन–सपत्ति और मान–प्रतिष्ठा को तृणवत् समझते थे। यही कारण है कि विश्वामित्र जैसे क्रोधी के कथन का विरोध करने मे भी भय नही हुआ।

विश्वामित्र ने सभासदो की बाते सुनकर उन्हे डराना चाहा परन्तु वे सत्य की शक्ति से बलवान थे, इसलिए वे क्यो डरने लगे? विश्वामित्र क्रोध मे आकर बडबडाने लगे–दुष्टो! तुमको पता नही है कि मैं कोन हू? मेरे सामने तुम्हारी यह कहने की हिम्मत? देखो, मै तुमको इसका कैसा दड देता हू, तभी तुम्हे मालूम होगा कि विश्वामित्र की अवज्ञा करने का क्या फल होता हे? तुम लोगो का कहना मानकर यदि मैं हरिश्चन्द्र को यही रहने दू तो मेरा राज्य क्या होगा? और मेरी आज्ञाओ का पूर्णतया पालन केसे हो सकेगा? मैं हरिश्चन्द्र को एक क्षण भी यहा नही रहने दे सकता और न उसके नियमो को ही रहने दूगा।

सभासद्–जब हम कह रहे है कि महाराज राज्य के भूखे नही हे, वे राज्य नही करेगे, वे तो केवल शाति से बैठे रहेगे ओर उनकी दक्षिणा भी हम देते है तो फिर आप उन्हे क्यो नही रहने देते? इतना होने पर भी आप उन्हे निकाल रहे हैं तो इसका अर्थ यही हे कि आपको उन्हे कष्ट मे डालना अभीष्ट हे और उनकी अनुपस्थिति से लाभ उठा कर आप प्रजा को त्रास देना चाहते हैं। लेकिन यह ध्यान रखिए कि आपका यह सोचना दुराशामात्र हे।

इस प्रकार सभासदो के मुह मे जो कुछ आया वह कहते हुए क्रुद्ध होकर अपने–अपने घर चल दिए। विश्वामित्र उनके इस व्यवहार से मन मे विचारने लगे कि मेरे सामने आज तक किसी को बोलने की हिम्मत न पडती थी परन्तु आज मेरी वह शक्ति कहा लुप्त हो गई? ये लोग सत्य के बल से सशक्त हे, इसी से मै इनका कुछ नही कर सकता?

जब सभासदो पर कुछ प्रभाव पडा नही तो विश्वामित्र हरिश्चन्द्र से ही क्रोधित होकर कहने लगे–कुटिल! तूने खूब जाल रचा हे। राज्य देकर दानी भी बन गया मुझे अपमानित भी किया ओर अब प्रजा द्वारा विद्रोह करवा पुन राज्य लेना चाहता हे? यदि तुझे राज्य का इतना ही मोह था तो तूने पहले दिया ही क्यो?

हरिश्चन्द्र –महाराज दूसरो का क्रोध भी मुझ पर उतारेगे? मे तो आपके समीप ही बेठा हू, कही गया तक नही जो इन्हे सिखाऊ? मेने तो आपस पहले ही प्रार्थना की थी कि आप शाति से काम लीजिए परन्तु मेरी इस प्रार्थना पर आप ओर भी क्रुद्ध हो गए। अब मुझे आज्ञा दीजिए ओर सन्तोष रखिए कि मे यथासम्भव प्रजा के विचारो को आपके अनुकूल बनाने का प्रयत्न करूगा।

ऐसा कहकर महाराज हरिश्चन्द्र महल की ओर विदा हुए ओर इधर विश्वामित्र मन ही मन विचारने लगे कि क्या मेने हरिश्चन्द्र को दण्ड दिया हे? नही नही मैं स्वय ही दण्डित हुआ हू। मेने अपने ही गुरु हरिश्चन्द्र

12. मिलन

महाराज हरिश्चन्द्र रानी के महल की ओर चले उनके मन मे तर्क–वितर्क हो रहे थे कि आज मुझे उस रानी के समीप जाना है, जिसने कहा था कि बिना सोने की पूछ वाला मृग–शिशु लाए मेरे महल मे न आना। तो वह मेरा तिरस्कार करेगी? रानी ऐसी निन्द्य हठ करने वाली तो नही है और न उसे मेरा अपमान करना ही अभीष्ट है। यदि ऐसा होता तो इतने समय मे उसका विचार अवश्य ही किसी न किसी रूप मे प्रकट हो जाता। उसने मेरे अपमान होने योग्य कोई बात अब तक नही की, इससे यही जान पडता है कि उसने मुझको अपने मोह–पाश से मुक्त करने के लिए ही ऐसा किया है। रानी! यदि मेरी कल्पनानुसार ही तेरा विचार है तो मैं तेरे समीप सोने की पूछ वाला मृग–शिशु लेकर ही आ रहा हू। राज्य देना कोई सरल कार्य नही है लेकिन मैंने तेरी सहायता से इसे सभव कर बताया है। अब तो मैं तेरे समीप आ ही रहा हू, क्या तू मेरे इस कार्य से सहमत होगी? यह तो नही कहेगी कि आधे राज्य की स्वामिनी मै थी और आपने मेरे अधिकार का राज क्यो दे दिया? यह तो नही कहेगी कि राज्य के भावी स्वामी रोहित के अधिकार पर कुठाराघात क्यो किया? यदि तूने विद्रोह किया तो सारी प्रजा तेरा साथ देकर विद्रोह मचा देगी ओर मेरा नाम कलकित होगा कि अपनी स्त्री को राज्य, के लिए भडकाया। खेर अभी सब मालूम हो जाएगा कि मेरी ये आशकाए ठीक हे या नही। लेकिन अब मै तुझे रानी क्यो कह रहा हू? अब तो तू उस गरीब की स्त्री है जिसके पास एक समय का भोजन भी नही हे और इस अवस्था मे भी जो एक सहस्र स्वर्णमुद्रा का ऋणी है। तारा! आज तू मुझे क्या कहेगी? जो इच्छा हो सो कह मुझे सुनना ही होगा।

इस प्रकार चिन्तासागर मे डूबे हुए हरिश्चन्द्र रानी के महल मे आये। दासियो से मालूम हुआ कि रानी समीप के उपवन मे हे। राजा चुपचाप बाग

मे गये ओर एक वृक्ष की ओट से रानी ओर रोहित का खेल देखने लगे। उस समय रानी रोहित से विनोद करने के साथ–साथ शिक्षा भी दे रही थी। वह रोहित से पूछ रही थी कि बेटा, तू कौन हे। किस वश का हे? आदि। बालक रोहित माता के इन प्रश्नो का क्या उत्तर देता। वह चुपचाप माता के मुह की ओर देखने लगा। पुत्र को इस प्रकार अपनी ओर देखते देख रानी कहने लगी–वत्स! तू वीर बालक हे ओर वीर वश का हे। अच्छा यह तो बता कि तू मेरा पुत्र है या अपने पिता का? इसका भी क्या उत्तर देता। तब रानी ही स्वय उत्तर देती–बेटा! माता का काम तो केवल जन्म देकर पालन करने का ही है परन्तु शक्ति दाता तो पिता ही हे। मैं जो तेरी माता हू, वह भी तेरे पिता की सेविका हे। इसलिए सदैव पिता की आज्ञा का पालन करना ओर कभी भी हृदय मे भय का कायरता मत लाना।

बालक के हृदय पर माता की शिक्षा का प्रभाव स्थायी होता हे। जिन शिक्षाओ को शिक्षक एक विशेष समय मे भी बालक के हृदयस्थ करा नही सकते, उन्ही को माता सहज मे ही हृदयस्थ करा सकती हे। माता की दी हुई शिक्षा का प्रभाव ऐसा होता हे कि यदि माता चाहे तो अपने बालक को वीर बनाए या कायर, मूर्ख बनाए या विद्वान ओर सच्चरित्र बनाए या दुश्चरित्र। लाड–प्यार के समय मे ही नही बल्कि माता के गर्भ मे रहते समय से ही बालक शिक्षा प्राप्त करने लगता हे। मातृ–शिक्षा का बालक के जीवन पर बडा ही प्रभाव पडता हे।

रानी की बाते सुनकर राजा की आशकाए बहुत कुछ मिट गईं। वे मन ही मन कहने लगे–रानी! तुझे अभी यह नही मालूम हे कि मैंने तुझे कगाल बना दिया हे ओर जिस पुत्र से तू विनोद कर रही हे उसके भविष्य का भी कुछ ध्यान नही रखा हे। देखूगा, राज्य दने का समाचार सुनकर तू क्या कहती हे? परन्तु प्रश्न यह हे कि अब इस समाचार को कहू किस हृदय रा।

राजा इस प्रकार के विचारो मे डूबे हुए मौन खडे थे कि इतने मे रानी की दृष्टि राजा पर पडी। पति को इस प्रकार देख रानी ने सोचा इन्हे फिर से मेरे मोह ने घेर लिया है–अत रोहित को सम्बोधन करते हुए कहा– बेटा

लिया। रानी अब तक यही समझ रही थी कि इन्हे पुन स्त्री–मोह ने सताया है, इसलिए वे मुस्कराते हुए यह कहती हुई चल दी कि–पुत्र को भी ले लो, मै अकेली ही रहूगी। रानी को इस प्रकार जाते देख राजा ने कहा– प्रिये तारा! यह विनोद का समय नही है। मेरे आने का कारण तो सोचो। पति की यह बात सुनकर तारा ठिठक गई और विचारने लगी कि क्या आज पति को कोई मानसिक दु ख है जो इस प्रकार कह रहे हैं। ऐसी अवस्था मे यदि मै चली जाऊ तो मुझे धिक्कार है। रानी को रुकी देख राजा बोले–प्रिये तारा! आज का मिलन अन्तिम मिलन है। अब क्या ठीक कि कब मिले।

इस बात को सुनकर रानी काप गई और जैसे ही पति के मुह की ओर देखा तो सहम उठी। कातर होकर पति का हाथ पकड नम्रतापूर्वक बोली–नाथ! आपने यह क्या कहा? आज का मिलन अन्तिम मिलन क्यो है? क्या इस दासी से रुष्ट हो या आपने अन्यत्र आने का विचार किया है या और किसी कारण से आपको ऐसा करना पडेगा? प्रभो! शीघ्र कहिए, आपके इस कथन का अभिप्राय क्या है?

रानी की यह विनम्रता देख राजा आश्चर्य–चकित रह गए। वे विचारने लगे कि क्षण भर पहले कठोर बनी रानी इस प्रकार मेरा दु ख जानने के लिए क्यो व्याकुल हो उठी है? मैं अब तक यह निश्चय नही कर पाया कि रानी स्वच्छ हृदय है या कलुषित हृदय, क्रूर है या सरल, अभिमानिनी है या विनम्र! कहा तो वह रूठी हुई जा रही थी और कहा इस प्रकार नम्रता दिखा रही है! मेरे प्रति इतना प्रेम! मैंने तो दान का फल तत्क्षण ही प्राप्त कर लिया है।

इस प्रकार राजा को विचारमग्न देखकर रानी व्याकुल हो उठी और कहने लगी–नाथ! आप चुप क्यो है? क्या दासी उस बात को सुनने के योग्य नही है?

हरिश्चन्द्र–प्रिये! ऐसी कौन सी बात है जो तुम्हे सुनाने योग्य न हो। यदि मे तुम्हे ही न सुनाऊगा, तो सुनाऊगा किसे! तुम न सुनोगी तो सुनेगा ही कोन? लेकिन सुनाऊ क्या? कोई सुखदायक बात तो है नही, जो तुम्हे सुनाऊ। बल्कि बात को सुनकर तुम दु खी ही होगी।

तारा–यह तो मैं आपकी मुखमद्रा से ही समझ चुकी हू लेकिन मै आपकी अर्द्धांगिनी हू, अत उस सारे दु ख को न उठा सकूगी तो कम से कम आधा तो बाट लूगी। इसलिए आप नि सकोच कहिए।

हरिश्चन्द्र– प्रिये! कर्तव्यवश मैने राज्य–वैभव सहित ससागर पृथ्वी विश्वामित्र को दान कर दी है। उन्होने याचना की और मैं उस याचना को

मे गये ओर एक वृक्ष की ओट से रानी और रोहित का खेल देखने लगे। उस समय रानी रोहित से विनोद करने के साथ-साथ शिक्षा भी दे रही थी। वह रोहित से पूछ रही थी कि बेटा, तू कौन है। किस वश का है? आदि। बालक रोहित माता के इन प्रश्नो का क्या उत्तर देता। वह चुपचाप माता के मुह की ओर देखने लगा। पुत्र को इस प्रकार अपनी ओर देखते देख रानी कहने लगी—वत्स! तू वीर बालक है ओर वीर वश का हे। अच्छा यह तो बता कि तू मेरा पुत्र है या अपने पिता का? इसका भी क्या उत्तर देता। तब रानी ही स्वय उत्तर देती—बेटा! माता का काम तो केवल जन्म देकर पालन करने का ही है परन्तु शक्ति दाता तो पिता ही है। में जो तेरी माता हू, वह भी तेरे पिता की सेविका है। इसलिए सदैव पिता की आज्ञा का पालन करना ओर कभी भी हृदय मे भय का कायरता मत लाना।

बालक के हृदय पर माता की शिक्षा का प्रभाव स्थायी होता हे। जिन शिक्षाओ को शिक्षक एक विशेष समय मे भी बालक के हृदयस्थ करा नही सकते, उन्ही को माता सहज मे ही हृदयस्थ करा सकती हे। माता की दी हुई शिक्षा का प्रभाव ऐसा होता है कि यदि माता चाहे तो अपने बालक को वीर बनाए या कायर, मूर्ख बनाए या विद्वान ओर सच्चरित्र बनाए या दुश्चरित्र। लाड-प्यार के समय मे ही नही बल्कि माता के गर्भ मे रहते समय से ही बालक शिक्षा प्राप्त करने लगता हे। मातृ-शिक्षा का बालक के जीवन पर बडा ही प्रभाव पडता हे।

रानी की बाते सुनकर राजा की आशकाए बहुत कुछ मिट गई। वे मन ही मन कहने लगे—रानी! तुझे अभी यह नही मालूम हे कि मैंने तुझे कगाल बना दिया हे ओर जिस पुत्र से तू विनोद कर रही हे, उसके भविष्य का भी कुछ ध्यान नही रखा हे। देखूगा, राज्य देने का समाचार सुनकर तू क्या कहती हे? परन्तु प्रश्न यह हे कि अब इस समाचार को कहू किस हृदय से।

राजा इस प्रकार के विचारो मे डूबे हुए मौन खडे थे कि इतने मे रानी की दृष्टि राजा पर पडी। पति को इस प्रकार देख रानी ने सोचा इन्हे फिर से मेरे मोह ने घेर लिया हे—अत रोहित का सबोधन करते हुए कहा—बेटा चला चल। तुम्हारे पिताजी खेलने के लिए सोने की पूछ वाला मृग शिशु तो लाए नही और खेल देखने आ गए। यह कहती हुई रानी रोहित को लेकर चल दी। महाराज हरिश्चन्द्र मन मे—रानी [illegible] मे सोने की पूछ वाला मृग-शिशु ही लाया हू, परन्तु [illegible] पसन्द करेगी या नही। [illegible] दौडकर रानी के सामने [illegible] और रोहित को गोद मे उठा

लिया। रानी अब तक यही समझ रही थी कि इन्हे पुन स्त्री–मोह ने सताया है, इसलिए वे मुस्कराते हुए यह कहती हुई चल दी कि–पुत्र को भी ले लो, मै अकेली ही रहूगी। रानी को इस प्रकार जाते देख राजा ने कहा– प्रिये तारा! यह विनोद का समय नही है। मेरे आने का कारण तो सोचो। पति की यह बात सुनकर तारा ठिठक गई और विचारने लगी कि क्या आज पति को कोई मानसिक दु ख है जो इस प्रकार कह रहे है। ऐसी अवस्था मे यदि मै चली जाऊ तो मुझे धिक्कार है। रानी को रुकी देख राजा बोले–प्रिये तारा! आज का मिलन अन्तिम मिलन है। अब क्या ठीक कि कब मिले।

इस बात को सुनकर रानी काप गई और जैसे ही पति के मुह की ओर देखा तो सहम उठी। कातर होकर पति का हाथ पकड नम्रतापूर्वक बोली–नाथ! आपने यह क्या कहा? आज का मिलन अन्तिम मिलन क्यो है? क्या इस दासी से रुष्ट हो या आपने अन्यत्र आने का विचार किया है या और किसी कारण से आपको ऐसा करना पडेगा? प्रभो! शीघ्र कहिए, आपके इस कथन का अभिप्राय क्या है?

रानी की यह विनम्रता देख राजा आश्चर्य–चकित रह गए। वे विचारने लगे कि क्षण भर पहले कठोर बनी रानी इस प्रकार मेरा दु ख जानने के लिए क्यो व्याकुल हो उठी है? मैं अब तक यह निश्चय नही कर पाया कि रानी स्वच्छ हृदय है या कलुषित हृदय, क्रूर है या सरल, अभिमानिनी है या विनम्र! कहा तो वह रूठी हुई जा रही थी और कहा इस प्रकार नम्रता दिखा रही है! मेरे प्रति इतना प्रेम! मैने तो दान का फल तत्क्षण ही प्राप्त कर लिया है।

इस प्रकार राजा को विचारमग्न देखकर रानी व्याकुल हो उठी और कहने लगी–नाथ! आप चुप क्यो है? क्या दासी उस बात को सुनने के योग्य नही है?

हरिश्चन्द्र–प्रिये! ऐसी कौन सी बात है जो तुम्हे सुनाने योग्य न हो। यदि मे तुम्हे ही न सुनाऊगा, तो सुनाऊगा किसे! तुम न सुनोगी तो सुनेगा ही कौन? लेकिन सुनाऊ क्या? कोई सुखदायक बात तो है नही, जो तुम्हे सुनाऊ। बल्कि बात को सुनकर तुम दु खी ही होगी।

तारा–यह तो मैं आपकी मुखमद्रा से ही समझ चुकी हू लेकिन मै आपकी अर्द्धांगिनी हू, अत उस सारे दु ख को न उठा सकूगी तो कम से कम आधा तो बाट लूगी। इसलिए आप नि सकोच कहिए।

हरिश्चन्द्र– प्रिये! कर्तव्यवश मैने राज्य–वैभव सहित ससागर पृथ्वी विश्वामित्र को दान कर दी है। उन्होने याचना की और मैं उस याचना को

ठुकराकर सूर्यवश को कलकित नही करना चाहता था। अब न तो अपना घरबार है और न एक जून खाने को ही रहा है। बल्कि दक्षिणा की एक सहस्र स्वर्णमुद्राओ का कर्जदार हू।

तारा–प्राधाधार! क्या यह दु ख की बात हे? क्या इसी बात को सुनाने मे सकोच हो रहा था? मैं तो समझती थी कि कोई ऐसी बात हुई हे जिसके कारण सूर्यवश के साथ–साथ आपको भी कलक लगने की आशका है। यह तो महान् हर्ष की बात है। ससागर पृथ्वी का दान, ऊपर से एक सहस्र स्वर्ण–मुद्रा की दक्षिणा और लेने वाले विश्वामित्र जैसे ऋषि, इससे बढकर सौभाग्य की बात और क्या हो सकती है? नाथ! आज मेरा मस्तक गर्व से ऊचा उठ गया कि मेरा पति ससागर पृथ्वी का दाता है। ऐसे दान करने वाले को भी रहने–खाने की चिन्ता हो तो यह आश्चर्य की बात है। रहने–खाने की चिन्ता तो पशु–पक्षी भी नही करते, उसमे हम तो मनुष्य हे। आपके अटल सत्य के प्रभाव से सदैव आनन्द ही आनन्द है। आप किसी प्रकार की चिता न कीजिए।

अब तक तो राजा को चिन्ता थी कि रानी को राज्यदान की बात असह्य हो उठेगी और वह विपत्ति की कल्पना से काप जाएगी और मेरा विरोध करेगी। लेकिन रानी की बात सुनते ही राजा की चिन्ता दूर हो गई। वह मन ही मन कहने लगे–तारा! मैं तुझे आज ही पहचान सका हू। मे नही जानता था कि तू सहानभूति की मूर्ति है। मैंने राज्य दान नही दिया बल्कि त्रिलोक की सम्पत्ति से बदला किया है। लेकिन तारा, अभी तेरी एक परीक्षा और शेष है।

हरिश्चन्द्र ने तारा से कहा–प्राणवल्लभे! तुमने मेरे इस कार्य का विरोध नही किया, जिसके लिए तुम्हे धन्यवाद देता हू क्योकि आगे चल कर ऐसी–ऐसी स्त्रिया होगी जो विपत्ति के समय भी यदि उनका एक छल्ला बेच देगा तो वे उसका विरोध करेगी और कलह मचा देगी।

तारा–आर्यपुत्र! क्या में सुख की ही साथी हू? मे राज्य के साथ विवाही गई हू या आपके साथ? यदि आपके साथ, तो मेरे लिए आप बडे हे या राज्य? और आपने जो दान दिया हे उसमे मेरा भी तो हिस्सा हे। फिर मै विरोध क्यो करू? भविष्य की स्त्रिया जो अपने आपको पति की अर्द्धांगिनी मानेगी, वे तो कदापि पति के किसी उचित कार्य का किसी समय भी विरोध नही करेगी, लेकिन जो पति की अपेक्षा सम्पत्ति को विशेष समझेगी,

वे अवश्य ही पति के उचित कार्य मे सम्पति–व्यय करने पर भी विरोध करेगी। उनके बारे मे तो कुछ भी विचारना व्यर्थ है परन्तु जो बुद्धिमान होगी वे मेरे चरित्र से कुछ न कुछ शिक्षा ही लेगी।

हरिश्चन्द्र–प्रिये! तुम्हे और तुम्हारे माता–पिता को धन्य है, वह नगर धन्य है, जहा तुम्हारा जन्म हुआ। साथ ही मै भी धन्य हू, जिसे तुम्हारा पति बनने का सौभाग्य पाप्त हुआ है।

तारा–नाथ! सीमा से अधिक किसी की प्रशसा करना भी उसका अपमान है। अत अब आप क्षमा कीजिए और इस सेविका की ऐसी प्रशसा न करिये, जिसके कि वह योग्य नही है।

हरिश्चन्द– अच्छा प्रिये– अब ऐसी बातो मे समय लगाना उचित नही है। क्योकि मुझे आज ही यहा से जाना है और एक मास के भीतर ही विश्वामित्र के ऋण से मुक्त होना है। यदि इस अवधि मे मै ऋणमुक्त न हो सका तो विश्वामित्र श्राप देकर मेरे कुल का नाश कर देगे। अत उचित समझता हू कि इस अवधि तक मै तुम्हे तुम्हारे पिता के यहा पहुचा दू।

यह बात सुनकर रानी को हार्दिक दुख हुआ लेकिन अपनी पीडा को धैर्य से दबाते हुए कहा–प्रभो! आप मुझे पिता के घर क्यो भेजते है? क्या यही रहते हुए ऋणमुक्त होने का उपाय नही कर सकते?

हरिश्चन्द्र–न प्रिये, अब हम लोग यहा नही रह सकते। विश्वामित्र की आज्ञा आज ही राज्य से चले जाने की है।

तारा–तो आपने कहा जाने का विचार किया है?

हरिश्चन्द्र–सिवाय काशी के और कोई स्थान नही जो राज्य से बाहर हो।

तारा–तो क्या मै काशी नही चल सकती?

हरिशचन्द्र– प्रवास और वन के दुख तुम सह न सकोगी, इसलिए तुम्हारा अपने पिता के घर जाना ही अच्छा है।

तारा–जीवन सर्वस्व! आप विचारिये तो सही कि आपके राज्य से बाहर चले जाने और मेरे इसी राज्य मे रहने पर विश्वामित्र की आज्ञा का पूरी तरह पालन कैसे होगा? मैं आपकी अर्द्धांगिनी हू और मेरे यही रहने पर आपका आधा अग राज्य के बाहर गया माना जाएगा इसके सिवाय जिन कष्टो को आप सह सकेगे इन्हे मै क्यो न सहूगी? नाथ! मैं और सब कुछ सुन सकती हू पर यह बात आप मुझे न सुनाइए। छाया काया के, कुमुदिनी

जल के, चन्द्रिका चन्द्र के ओर पत्नी पति के साथ ही रहेगी, विलग नही। मुझे आपके साथ रहने मे जो आनन्द हे, वह पृथक् रहने मे नही। बिना आपके मै स्वर्ग को तिलाजलि दे सकती हू परन्तु आपके साथ नरक मे भी आनन्द मानूगी। मछली को जैसे जल से निकाल देने पर सब आनन्दमय वस्तुए जल के बिना सुखदायी नही होती, वेसे ही स्त्री के जीवन–पति के बिना स्त्री को भी सब सुख दु ख ही हें। अत इस दासी को अपनी सेवा से विलग न कीजिए और चाहे जो कुछ करिए।

हरिश्चन्द्र–प्राणाधिके। अभी तुम्हारा मेरे साथ चलना उचित न होगा। मैं जहा जा रहा हू, वहा रहने के लिए न तो नियत स्थान हे ओर न किसी उद्योग का ही प्रबन्ध हे। यहा तक कि एक समय का भोजन भी पास नही है। ऐसी दशा मे मैं तुम्हे अपने साथ ले जाकर कष्ट मे नही डालना चाहता। इसके सिवाय स्त्री जाति स्वभावत सुकुमार होती हे। तृषा, क्षुधा, मार्ग के कष्ट आदि सहन करने के योग्य नही होती। कदाचित् तुमने इन कष्टो को सह भी लिया तो काशी पहुच कर मैं तुम्हारे खाने, रहने आदि की चिन्ता करूगा या ऋणमुक्त होने की? इन बातो पर ध्यान देकर तुम्हे पिता के यहा रहना ही उचित है। यद्यपि विश्वामित्र ने मेरे साथ ही तुम्हे भी राज्य से चले जाने की आज्ञा दी है परन्तु मै उनसे इस बात की याचना कर लूगा कि वे तुम्हे अपने पिता के यहा रहने की आज्ञा दे दे।

तारा– प्राणनाथ। मैं आपसे पहले ही प्रार्थना कर चुकी हू कि आपकी सेवा के बिना में एक क्षण भी नही रह सकती। मेने जिन कष्टो को नही सहा हे तो आप भी कहा उनके अभ्यस्त हैं? यदि आप सहन करने मे समर्थ होगे, तो मैं क्यो असमर्थ रहूगी? रहा मेरे खाने पीने का प्रश्न, सो जिस प्रकार आप रहेगे, उसी प्रकार में भी रहूगी। प्रभो। ऋण की चिन्ता आपको ही नही, मुझे भी हे। क्योकि उस ऋण मे आधी रकम की ऋणी में भी हू। सुख और लाभ के समयमे पति के साथ रहे ओर दु ख तथा हानि के समय पति से पृथक् रहे, यह पत्नी का कर्तव्य नही हे। किसी कवि ने कहा–

प्रारम्भ कुसुमाकरस्य परितो यस्योल्लसन्मजरी।
पुजे मजुलगुंजितानि रचस्यस्तानातनोरुत्सवान्।।
तस्मिन्नद्य रसाल शाखिनिदशा दैवात् कृशामुचति।
त्व चेन्मुंचसि चंचरीक विनय नीचस्त्वदन्योऽस्तिक।।

हे भ्रमर! बसत के आते ही अब आम मे मजरिया खिल उठी तब तो तूने उसके चारो ओर मजु मजु गुजार करते हुए खूब मजा लिया और अब दैववशात् आम के कृश हो जाने, पुष्प विहीन हो जाने पर यदि तू उससे प्रेम न रखेगा तो तुझसे बढकर नीच कौन होगा?

स्वामी, जब भ्रमर भी ऐसा करने पर नीच कहलाता है तब मनुष्य और विशेषत पत्नी का ऐसा व्यवहार क्यो कर उचित कहा जा सकता है? नाथ, मैं क्षत्रिय कन्या हू, वीर पत्नी हू और वीर माता हू। कष्टो के भय से मैं आपकी सेवा का त्याग कदापि नही कर सकती। प्राणवल्लभ! क्षत्रिय लोग देना जानते है, याचना करना नही जानते। अत आप मेरे रहने के लिए विश्वामित्र से भीख मागे, यह सूर्यवशी राजा और ससागर पृथ्वी के दाता के लिए तो और भी विशेष कलक की बात है। इसलिए कृपा करके आप ऐसी निष्ठुर आज्ञा देकर इस दासी का और अधिक अपमान मत कीजिये। यह सेविका बिना आपकी सेवा के अपना जीवन नही रख सकेगी, पति से वियोग होने की अपेक्षा मृत्यु को बुरा नही समझेगी।

हरिश्चन्द्र–प्रिये! कहा तो तुमने सोने की पूछवाला मृगशिशु लाए बिना महल मे आने से ही रोक दिया था और कहा आज इस प्रकार साथ चलने को कह रही हो?

तारा–नाथ! यह बात तो मै भूल ही गई थी। आपने खूब याद दिलाई, आज तो आप सोने की पूछवाला मृगगशिशु लेकर ही पधारे है। क्या राज का दान करना कोई साधारण कार्य है? आपने इस सोने की पूछवाले मृगशिशु के समान असम्भव कार्य को सम्भाल कर दिखाया है। फिर मेरी प्रतिज्ञा अपूर्ण क्यो कहला सकती है? प्रभो! मैने आपके साथ जो मान का व्यवहार किया था, वह इसी अभिप्राय से कि आप असभव कार्य को भी सभव कर दिखाए। मेरी यह अभिलाषा पूर्ण हुई अब मै आपसे उस निष्ठुर व्यवहार के लिए क्षमा–याचना करती हू।

हरिश्चन्द्र–तारा! मै आज तुमको समझ सका कि तुम कौन हो, मेरे प्रति तुम्हारे क्या भाव हैं और मेरे लाभ के लिए तुम अपने स्वार्थ को किस प्रकार ठुकरा सकती हो। कोई दूसरी स्त्री तुम्हारी समता करने के लिए युवावस्था मे पतिसुख छोडने ओर इस प्रकार त्याग दिखाने मे कदापि समर्थ नही हो सकती। यद्यपि मैंने अपना राज्य दान दिया है, तथापि उसके

13. दुराग्रह टस से मस न हुआ

सभासदो के सभा छोडकर आते ही समस्त नगर मे यह समाचार बिजली की तरह फैल गया कि आज राजा ने राजवेभव सहित ससागर–पृथ्वी विश्वामित्र को दान मे दे दी हे ओर विश्वामित्र ने उन्हे तत्काल ही नगर छोडने की आज्ञा दी है। जनता जहा–तहा झुड के झुड एकत्रित हो इसके बारे मे चर्चा कर रही थी कि राजा ने तो इस राज्य रूपी परतन्त्रता से अपने को स्वतन्त्र कर लिया परन्तु अब हमारी क्या दशा होगी? उस विश्वामित्र को धिक्कार है जिसे ऋषि होकर राज्य का लोभ हुआ। उसे निर्दयी हो राजा से राज्य लेते हुए और उन पर एक सहस्र स्वर्ण मुद्रा का ऋण लादते लज्जा भी नही आई! उस ऋषि से तो हम गृहस्थ ही भले जो छल द्वारा किसी की सपत्ति तो नही हडपते है। उस पापी पर वज्र भी नही गिरा। राजा से ऐसा व्यवहार करते समय उसका हृदय क्यो नही फट पाया ओर वह जीभ टुकडे–टुकडे क्यो नही हो गई जिसने राजा से राज्य मागकर दक्षिणा के ऋणजाल मे फसा लिया और नगर छोडकर जाने की आज्ञा दी हे। इस प्रकार जिसके मुह जो आया वह कहने लगे ओर विश्वामित्र को धिक्कारने लगे।

जो राजा प्रजा का पुत्रवत् पालन करता हे, उसके दु ख मे दु खी और सुख मे सुखी होता हे, जिसके कार्य न्याय ओर धर्म के विरुद्ध नही होते उस राजा को प्रजा भी पितृवत् समझती हे ओर ऐसे राजा के लिए अपना तन–मन–धन तक अर्पण करने मे सोभाग्य मानती हे। लेकिन जो राजा प्रजा को कष्ट मे डालता हे ओर उसके सुख व अधिकारो की उपेक्षा करता हे, केवल अपने ही आनन्द मे आनन्द मानता हे उसकी प्रजा भी राजा के प्रति अच्छे भाव नहीं रखती तथा ऐसो राजा से पीछा छुडाने मे श्रेय माना करती हे। इससे सिद्ध हे कि राजा जेसे चाहे वेसे ही अपनी प्रजा को अपने अनुकूल व प्रतिकूल बना सकता हे।

प्रजा को विकल और विश्वामित्र के प्रति क्रुद्ध देख प्रजा मे से कुछ बुद्धिमान्, नीतिमान लोगो ने जनता से कहा कि इस प्रकार विश्वामित्र पर क्रोधित होकर कहने से न तो अपना ही कुछ लाभ है और न राजा का ही। राजा ने तो राज्य दान करके अपना कर्तव्य पाला है। इसलिए हमे तो ऐसा कार्य करना चाहिए जिससे राजा को कुछ सुख मिले। हमारी समझ से तो इस समय विश्वामित्र के पास चलकर उनसे इस विषय मे बातचीत करना उचित है। यदि वे राजा का ऋण हमसे लेकर उन्हे ऋण-मुक्त कर दे तथा साथ मे कुछ और भी चाहे तो वह लेकर राजा को उनकी इच्छानुसार स्थान पर रहने की स्वतन्त्रता दे दे तो इससे राजा का भी कुछ लाभ होगा, हमारा भी लाभ होगा, और राजा को हमारी सहानुभूति का परिचय मिलेगा।

बुद्धिमानो की यह बात सबको पसन्द आई। प्रजा मे से कतिपय मुख्य-मुख्य लोगो का प्रतिनिधि मडल बनाकर विश्वामित्र के पास भेजा गया और पीछे-पीछे जनता भी चली। प्रजा के इस झुड मे से कोई कहता था कि मै राजा को इतना धन दे सकता हू। कोई कहता था कि मै अपना सर्वस्व ही राजा के ऊपर न्यौछावर करने को तेयार हू।

विश्वामित्र चिन्तित भाव से बैठे हुए विचार कर रहे थे कि हाय! मैं आया था क्या करने और क्या हो गया। मेने विचारा तो था कि मै हरिश्चन्द्र का मान-मर्दन करूगा, अपराध स्वीकार कराकर उसे दड दूगा और उस पर अपने तपोबल का प्रभाव प्रकट करके भविष्य मे किसी ऋषि की और विशेषत मेरी अवज्ञा न करने की प्रतिज्ञा कराऊगा, लेकिन यहा तो मैने अपने ही हाथो अपना मान-मर्दन कर डाला, अपने ही मुख से स्वय अपने लिए दड माग लिया ओर अपने आप ही हरिश्चन्द्र के सत्य से प्रभावित हो गया। एक मै हू जो वृक्षो की छाया मे रहने वाला, भिक्षान्न से निर्वाह करने वाला होकर आज चक्रवर्ती राजा बनने जा रहा हू और एक वह ससागर पृथ्वी का स्वामी महाराज हरिश्चन्द्र हे जिसने प्रसन्नता के साथ अपना सर्वस्व मुझे देकर ऊपर से ऋण लाद लिया है। हम दोनो मे विजयी कौन हुआ-मै या हरिश्चन्द्र? एक तो इस राज्य रूपी जेल से छूटकर स्वतन्त्र हो गया और दूसरा में जो अपनी स्वाधीनता को क्रोध-सागर मे डुबा इस राज्य रूपी जेल मे आकर बन्दी हो गया हू। तपोबल और सत्यबल के सग्राम मे किसको पराजय मिली? हरिश्चन्द्र! यद्यपि मेरा तपोबल तुम्हारे सत्यबल से परास्त हो गया, परन्तु मैं सहज मे ही अपने तपोबल को कलकित और तुम्हारे सत्यबल को प्रशसित नही होने दूगा। मै अन्त तक अपने को कलक से बचाने का उपाय करूगा।

यद्यपि क्रोध ने मेरा सर्वनाश कर दिया है, मुझे त्यागी से भोगी बना दिया है, मै राजर्षि नही ब्रह्मर्षि भी हो जाऊ तो क्या? परन्तु मे इस दुष्ट क्रोध पर विजय नही पा सका हू। फिर भी इस समय इस तरह पश्चात्ताप करूगा ओर हरिश्चन्द्र को राज्य लौटा दूगा तो ससार मे मेरी निन्दा होगी तथा मुझे मार्ग चलना ही कठिन हो जाएगा।

विश्वामित्र इसी प्रकार के विचारो मे निमग्न थे कि सेवक ने प्रजा के प्रतिनिधि–मडल के आने की सूचना दी। विश्वामित्र समझ गए कि ये लोग हरिश्चन्द्र के ही विषय मे कुछ कहने आए होगे। ये लोग निश्चित ही प्रशसा के पात्र हैं परन्तु इस समय उनको मुझसे किसी भी बात की आशा करना व्यर्थ है, फिर भी उनकी बात सुनना उचित है। यह सोचकर उन्होने प्रतिनिधि–मडल के आने की आज्ञा दी।

प्रतिष्ठित प्रजाजनो के आने और उनके प्रणाम कर चुकने के पश्चात् विश्वामित्र ने कर्कश स्वर मे पूछा– क्या है?

प्रतिनिध–मडल के नेता ने उत्तर दिया–हम आपसे कुछ प्रार्थना करने आए हैं।

विश्वामित्र–कहो, क्या कहना है?

नेता–हमने सुना है महाराज हरिश्चन्द्र ने आपको राज्य दान मे दिया है और आज से आप हमारे राजा हुए हैं।

विश्वामित्र–हा।

नेता–राजा का कर्त्तव्य है कि प्रजा के दु खो को ध्यानपूर्वक सुनकर उन्हे दूर करने का पयत्न करे।

विश्वामित्र–तुम अपना दु ख तो कहो।

नेता–हमने सुना हे कि जिसने अपना राज्य–वेभव एक क्षण मे दान कर दिया, अपने स्त्री, पुत्र की भी किचित् चिन्ता न की, उस महाउदार को आपने एक सहस्र स्वर्ण मुद्रा का ऋणी बनाकर यहा से चले जाने की आज्ञा दी है।

विश्वामित्र– शायद तुम लोगो को बात का अच्छी तरह पता नही हे। हरिश्चन्द्र ने मेरे आश्रम की बदिनी देवागनाओ को छोड दिया था। जिसका मै उपालम्भ देने आया ओर मेने उससे केवल यही कहा कि तू अपना अपराध स्वीकार कर ले, परन्तु वह तो ऐसा निकला कि अपराध स्वीकार करना तो दूर रहा, उल्टे कहने लगा कि मेंने उन्हे दया करके राज–धर्मानुसार छोडा हे। मेंने कहा–राजधर्म तो दान देना भी हे तो क्या तू अपना राज्य मुझे दान

कर सकता है? बस इसी पर उसने अपना राज्य मुझे दान कर दिया है। अब, तुम्ही बताओ कि जो राजा ऋषियो के आश्रम की बदनियो को छोड दे, हठ मे पडकर अपना अपराध भी स्वीकार न करे और बात की बात मे अपना राज्य दूसरे को सौंप दे, वह राज्य करने योग्य कैसे कहा जा सकता है?

नेता—उन्होने आपको राज्य दान दिया है तो आप प्रसन्नतापूर्वक राज्य कीजिए, हमे इस विषय मे कुछ भी नही कहना है। बल्कि हमारी प्रार्थना तो यह है कि आपने उनके ऊपर जो ऋण लाद रखा है, वह हमसे ले लीजिए। यदि अधिक लेने की इच्छा हो तो अधिक ले लीजिए, परन्तु यह स्वतन्त्रता दे दीजिए कि उनकी जहा इच्छा हो, वहा रहे। उन्हे यहा से जाने के लिए बाध्य न कीजिए। हरिश्चन्द्र हमे पिता से भी अधिक प्रिय है? अत उनके विषय मे हमारी इस प्रार्थना को स्वीकार कीजिए। यदि आप हरिश्चन्द्र को यह स्वतन्त्रता देने के बदले मे हमारा सर्वस्व भी लेना चाहे तो हम इसके लिए भी तैयार हैं। साथ ही आपको यह भी विश्वास दिलाते है कि वे आपके राज—कार्य मे किसी प्रकार का हस्तक्षेप नही करेगे और राजमहल से दूर हम लोगो के घरो मे शातिपूर्वक जीवन व्यतीत करेगे।

विश्वामित्र— तुम लोग जो कुछ मुझसे कहते हो वही बात हरिश्चन्द्र से क्यो नही कहते कि वह अपना अपराध स्वीकार कर ले। मुझे राज्य की आवश्यकता नही है। उसके अपराध स्वीकार करते ही मैं राज्य उसी को लौटा दूगा और फिर वह पहले की तरह ही आनन्द से यही रहकर अपना राज्य करे।

नेता—हरिश्चन्द्र ने जब कोई अपराध ही नही किया है तो हम उनसे अपराध स्वीकार करने के लिए कैसे कह सकते है?

विश्वामित्र—तुम लोग भी हरिश्चन्द्र की ही बुद्धि के मालूम पडते हो। हरिश्चन्द्र ने अपराध किया है, फिर भी तुम कहते हो कि किया ही नही।

नेता—खैर, किया होगा, हम इस बात की मीमासा नही कराना चाहते। यदि उन्होने अपराध किया है और उसे स्वीकार नही करते हें तो इसका फल वे भोगेगे, परन्तु उनका ऋण हमसे लेकर उन्हे यही रहने की आज्ञा देने मे आपको क्या आपत्ति है? हम तो आपसे यही प्रार्थना करते हे कि आपको जब उन्हे कष्ट देना अभीष्ट नही है तो ऋणमुक्त करके यहा से चले जाने की अपनी आज्ञा भी लौटा लीजिए।

विश्वामित्र—मेने जो कहा हे, उसे तो तुम लोग समझते नही और अपनी ही कहे जाते हो। तुम हरिश्चन्द्र से ही क्यो नही कहते कि वह अपना

अपराध स्वीकार कर ले। बस, फैसला हुआ। फिर न तो उसे कही जाने की ही जरूरत है और न राज्य छोडने की ही।

नेता—जब उन्हे राज्य का लोभ होगा, तब वे स्वय ही अपना अपराध स्वीकार कर लेगे। यदि अपराध स्वीकार न करेगे तो राज्य भी नही पायेगे। उन्हे ऋणमुक्त करके यहा रहने देने की बात से और अपराध स्वीकार करने से तो कोई सबध हे नही ओर फिर ऐसा करने मे आपको क्या आपत्ति हे?

विश्वामित्र इसका क्या उत्तर देते। अत उन्हे अन्याय का ही आश्रय लेना पडा और प्रतिनिधि—मडल की बात को सत्य समझते हुए भी उन्हे यही कहना पडा कि तुम लोग भी दुराग्रही हो, अत यहा से निकल जाओ। में व्यर्थ की बातो मे समय नही खोना चाहता।

विश्वामित्र की आज्ञा से उसी समय सेवको ने इन सभ्य गृहस्थो को निकाल दिया। जाते समय इन लोगो ने विश्वामित्र के प्रति घृणा प्रकट करते हुए कहा—दुराग्रही हम नही बल्कि आप हें, जो अपने राज्यदाता को इस प्रकार कष्ट मे डालने का प्रयत्न कर रहे हे ओर झूठा अपराध स्वीकार करने के लिए विवश करते हे।

प्रतिनिधि—मडल की सफलता की आशा से नगर के शेष लोग राज—सभा के समीप ही खडे थे। प्रतिनिधि—मडल के बाहर निकलते ही सब लोग उसके पास आ गए, परन्तु उत्तर सुनकर सबको निराशा हुई। प्रजा कहने लगी कि आप लोगो का अपमान भी हुआ ओर सफलता भी न मिली।

नेता ने कहा— कार्य करना अपने अधिकार की बात हे। रही अपमान की बात, सो जो विश्वामित्र अपने राज्यदाता हरिश्चन्द्र को भी अपने राज्य से निकल जाने की आज्ञा दे सकता है तो वह हमे निकाल दे तो इसमे आश्चर्य की बात ही क्या हे? आपको और हमे इसके लिए किचित् भी दु ख न मानना चाहिए।

प्रतिनिधि—मडल के असफल होने से प्रजा को बहुत दु ख हुआ। विश्वामित्र ओर हरिश्चन्द्र के स्वभावो एव न्यायकारिता आदि का तुलनात्मक विचार प्रजा के हृदय को विदीर्ण कर रहा था। उधर स्त्रियो मे भी घर—घर यही चर्चा हो रही थी। वे तारा के स्वभाव आदि का स्मरण कर दु खित हो रही थीं ओर सुकुमार रोहित का बार—बार विचार कर रही थी। प्रतिनिधि—मडल के साथ—साथ अब प्रजाजन राजा के महल के सन्मुख आकर एकत्रित हो गए और उनके महल से बाहर आने की प्रतीक्षा करने लगे।

14. प्रणपूर्ति की राह पर

कुछ समय पहले विशाल राज्य के अधिपति राजा हरिश्चन्द्र, रानी तारा और राजकुमार रोहित इस समय दीन से भी दीन है तथा वे विश्वामित्र जो थोडी देर पहले वनवासी थे, भिक्षा ही जिनका आधार था, इस समय ससागर पृथ्वी के स्वामी बन गये है। ससार की यह परिवर्तनावस्था होते हुए भी जो सुख–वैभव पर घमण्ड करते हैं या जो अपने दु ख से कातर होते है, उन्हे अज्ञानी मानने के सिवाय और कुछ नही कहा जा सकता है। यह ससार चक्र के समान परिवर्तनशील है। जो आज बालक है वे ही कल बुड्ढे दीख पडेगे, जो आज सुखी है, वही कल दु खी हो सकता है और जो दु खी है वह सुखी भी हो सकता है। इसलिए ज्ञानी पुरुष कहते है कि न तो सुख मे हर्षित होओ ओर न दु ख मे घबराओ?

राजा हरिश्चन्द्र, तारा और रोहित के साथ राजसी वेश को छोडकर राजमहल से बाहर निकले। हरिश्चन्द्र के जिस मस्तक पर स्वर्णमुकुट शोभित होता था, आज उसी पर केशो का मुकुट है। जिस शरीर पर बहुमूल्य वस्त्राभूषण रहते थे, आज उसी पर केवल एक पुराना वस्त्र है और जिसमे से आधे से शरीर का ऊपरी भाग ढाके हुए है। रानी और रोहित भी इसी वेश मे हे। तीनो के शरीर पर आभूषण नही बल्कि उनके चिन्ह मात्र दिखलाई पडते हें। इतना होने पर भी इनके चेहरे पर असाधारण तेज झलक रहा हे।

मनुष्य की स्वाभाविक सुन्दरता या कुरूपता, किसी समय ओर किसी वेश मे नही छिपती, उपाय करने पर भी नही छिपती। तपस्वी का शरीर यद्यपि दुर्बल होता हे वस्त्र भी विशेष प्रकार के नही रहते, फिर भी उसके तेज ओर सुन्दरता की समता अनेक वस्त्रालकारधारी दुराचारी का शरीर

कदापि नही कर सकता। इसी प्रकार इस समय हरिश्चन्द्र, तारा ओर कुमार रोहित दीनवेश मे थे लेकिन उनका तेज इस वेश मे भी शोभा दे रहा था।

हरिश्चन्द्र, तारा ओर रोहित, तीनो राजमहल से निकल कर विश्वामित्र के समीप आये। विश्वामित्र इन लोगो को देखकर विचारने लगे कि क्या यह वही राजा है जो अवध के राजसिहासन पर बेठता था, जिसके सिर पर मुकुट शोभा पाता था, जिसके ऊपर चवर ढुला करते थे और छत्रछाया किये रहता था। क्या यही वह रानी है जो बहुमूल्य वस्त्राभूषणो से अलकृत रहती थी, अनेक दासिया जिसकी सेवा मे उपस्थित रहती थी, क्या यह वही महारानी तारा है जो महलो मे उसी प्रकार शोभित होती थी जैसे आकाश मे चन्द्रमा। क्या यह वही बालक है जिसके लिए ससार के बहुमूल्य पदार्थ भी तुच्छ माने जाते थे, जो अवध का भावी–शासक कहलाता था और जिससे प्रजा भविष्य की अनेकानेक आशाए करती थी। वही राजा, वही रानी और वही बालक आज इस वेश मे हैं, फिर भी चेहरे पर विषाद की रेखा नही है। राजा ने तो मुझे सब दान कर दिया है इसलिए उसका ऐसा करना तो कोई विशेषता नहीं रखता है, परन्तु रानी तो उससे भी बढकर निकली। इस वेश मे भी ललाट पर सुहाग बिन्दी कैसी शोभा दे रही है, जैसे आभूषण मे जडा हुआ रत्न हो। मै तो विचारता था कि रानी स्त्री–स्वभावानुसार दु ख से भयभीत हो पति के इस कार्य का विरोध करेगी, परन्तु धन्य है इसे जो इस दशा मे भी पति का सहयोग करने जा रही हे।

राजा, रानी और रोहित ने विश्वामित्र के निकट आकर प्रणाम किया और राजा हरिश्चन्द्र ने विनीत होकर कहा– महाराज, अब हमे आशीर्वाद दीजिए। मै आज अपनी प्राणो के समान प्रिय राज्य को आपके हाथो मे समर्पित्त कर रहा हू। आज से प्रजा के पिता, प्रभु, पालक तथा रक्षक आदि सब कुछ आप ही हें। आशा करता हू कि आप इस पर प्रेमपूर्वक वेसे ही शासन करेगे, वैसे पिता पुत्र पर करता हे।

विश्वामित्र ने राजा के कथन को सुन तो लिया परन्तु आत्मग्लानि के मारे सिर ऊपर न उठा सके। पहले तो विचार कर रहे थे कि जाते समय मे राजा को यह कहकर अपमानित करूगा कि तुम्हारे, तुम्हारी स्त्री या पुत्र के शरीर पर यह वस्तु हे जिसे रखने का तुम्हे अधिकार नही हे। लेकिन राजा

ने अपने, तारा और बालक के शरीर पर लज्जा की रक्षा के हेतु केवल एक–एक वस्त्र रखा है और यह भी पुराना। इसके सिवाय उनके पास कोई भी ऐसी वस्तु न थी, जिसके लिए विश्वामित्र को कुछ कहने का अवसर मिले। यहा तक कि पैरो मे जूते भी नही थे।

विश्वामित्र को सिर नीचा किये देख और उनके ऐसे करने के कारण को समझकर बिना किसी उत्तर की पतिक्षा किए ही महाराज हरिश्चन्द रानी तथा रोहित को लेकर चल दिए। बाहर आते ही पजा उनके साथ हो चली। आगे–आगे राजा और उनके पीछे गोद मे रोहित को लिए हुए रानी अपने पूर्वजो की राजधानी अयोध्या से बाहर निकले। साथ के स्त्री–पुरुष इनके वियोग के दु ख से विलाप कर रहे थे। परन्तु राजा–रानी के मुख पर विषाद की एक रेखा तक भी न थी। हरिश्चन्द और तारा ने सब स्त्री पुरुषो को लौट जाने के लिए कहा परन्तु ऐसे समय मे उनके कथन को कौन सुनता था। सब लोग साथ–साथ नगर से बाहर आए। राजा इन लोगो को लौटते न देख चिन्तित हुए कि यदि वे लोग मेरे साथ आए तो बडा अनर्थ होगा। विश्वामित्र इसके लिए मुझे ही अपराधी ठहराकर कहेगे कि मेरे राज्य को निर्जन बनाने का उपाय कर रहा है। अनेक प्रकार से समझाने पर भी जब वे लोग न लौटे तो राजा और रानी नगर के बाहर आकर एक स्थान पर ठहर गए। नगर के सब पुरुष हरिश्चन्द्र को और स्त्रिया तारा को घेर कर खडी हो गई। पुरुष तो राजा से कह रहे थे कि आप यही रहिए, यहा से न जाइए। विश्वामित्र के राज्य से हम लोगो को कष्ट होगा। आपका ऋण हम दिए देते है। आप राज–कार्य न करके यदि शान्ति से बैठे भी रहेगे, तब भी अन्याय न हो सकेगा। यदि आप जाते ही है तो हम लोग भी आपके साथ चलेगे। हमारे लिए अयोध्या वही है, जहा आप हैं। आपके बिना अयोध्या भी हमे नरक के समान दु खदायी होगी।

हरिश्चन्द्र के पास तो पुरुषवृन्द इस प्रकार विनय कर रहा था और उधर राजपुरोहित प्रधान तथा नगर के अन्य प्रतिष्ठित पुरुषो की स्त्रिया तारा से कह रही थी कि आपने तो राज्य नही दिया है तो फिर आप क्यो साथ जा रही हैं? राजा ने राज्य दिया है और उन्हे विश्वामित्र नही रहने देते तो उनका जाना ठीक भी हैं, परन्तु आप क्यो जाए? आपके जाने की तैयारी

देखकर हमे बहुत दु ख हो रहा है अत हमारी प्रार्थना है कि आप यही रहे। यदि विश्वामित्र आपको राजमहल मे नही रहने देगे तो आप हमारे यहा रहे, परन्तु आपका जाना किसी भी प्रकार से उचित नही है। यदि आप न मानेगी तो हम भी आपके साथ–साथ चल देगी।

साथ मे आने वाला प्रत्येक पुरुष ओर स्त्री इसी प्रकार राजा ओर रानी से कह रहा था। सबको पृथक्–पृथक् कब तक समझाया जाएगा, इस विचार से दोनो ने भाषण द्वारा ही प्रजा को समझाना उचित समझा। राजा और रानी अलग–अलग एक–एक टीले पर खडे हो गए और जिस टीले पर राजा खडे थे वहा पुरुष और जिस पर रानी खडी थीं वहा स्त्रिया टकटकी लगाए उनके मुह की ओर देखने लगी।

15. विदाई सन्देश

लोगो पर उपदेश का प्रभाव या तो भय से पडता है या प्रेम से। भय द्वारा जो उपदेश मनवाया जाता है वह तभी तक अपना प्रभाव रख सकता है, जब तक कि भय है। लेकिन जिस उपदेश का प्रभाव प्रेम से होता है यह नष्ट नही होता वरन् उत्तरोत्तर वृद्धि करता जाता है उदाहरणार्थ एक राजा उपदेश दे जो किसी विशिष्ट शक्ति से सपन्न है और एक त्यागी दे, जिसमे राजा के समान कोई शक्ति नही है तो इन दोनो मे से राजा का उपदेश तभी तक माना जाएगा जब तक उसमे शक्ति है। लेकिन त्यागी यदि स्वय भी न रहे तब भी उसका उपदेश नष्ट न होगा। साराश यह कि प्रेमपूर्वक दिया हुआ उपदेश उत्कृष्ट है लेकिन उसके लिए यह आवश्यक है कि उपदेशक स्वय वैसा आचरण करके आदर्श स्थापित करे, त्याग दिखाए। जब तक वह स्वय त्याग नही दिखलाता, केवल दूसरो को ही उपदेश देता है, तब तक उसके उपदेश का भी कोई प्रभाव नही होता।

वक्ता पर जब श्रोताओ की अपूर्व श्रद्धा होती है, तभी वे ध्यानपूर्वक उपदेश सुनते है। जहा वक्ता के प्रति लोगो के हृदय मे श्रद्धा का अभाव है वहा वक्ता का कर्त्तव्य और श्रोता का श्रवण, दोनो ही निरर्थक जाते हैं। महाराज हरिश्चन्द्र पर जनता की अपार श्रद्धा थी, अत उनके वक्ता बन कर खडे होने पर श्रद्धा से ओतप्रोत जनता ध्यानपूर्वक अपने हितैषी महाराज का उपदेश सुनने लगी।

पुरुषो से घिरे हुए टीले पर खडे होकर महाराज उनसे कहने लगे—

मेरे प्यारे भाइयो! आप लोग मेरे साथ यहा तक आए और मेरे वियोग से दु खित हो रहे हैं तथा मेरे साथ सहानुभूति प्रकट कर रहे हे, यह आप लोगो का अनुग्रह है। लेकिन आप इस बात पर विचार कीजिए कि मुझसे आप लोगो का इतना प्रेम होने का कारण क्या हें? भाइयो! यह प्रेम

मुझसे नही किन्तु सत्य से हे। जिस हरिश्चन्द्र के लिए आप इतने दु खित हो रहे है, आसू बहा रहे हैं, यहा तक कि अपना घरबार छोडकर जिसके साथ जाने को तैयार हैं, यदि वही हरिश्चन्द्र अत्याचारी होता, अपने स्वार्थ के लिए आप लोगो को दु ख मे डालता, आपके अधिकारादि की अवहेलना करता, दुराचरण मे पडकर यही राज्य किसी वेश्या को दे देता तो आप लोग मेरे जाने से प्रसन्न ही न होते किन्तु स्वय भी मेरे निकालने का उपाय करते। लेकिन मैने सत्याचरण किया हे, अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए इस राज्य को दान मे दिया है, इसी से आप लोगो की मेरे प्रति श्रद्धा हे। ऐसी अवस्था मे आप लोगो का मुझसे यही रहने का आग्रह करना उचित ही हे। लेकिन मेरे यही रहने से जो प्रतिज्ञा मैंने की हे वह भग होगी ओर प्रतिज्ञाभग करना असत्याचरण है। मै अब तक आपका राजा रहा हू अत मेरा इस प्रकार सत्यपालन मे कायरता दिखाना आप लोगो के लिए भी शोभा की बात नही है।

अब आप लोग साथ चलने को कहते है, परन्तु आप लोग ही विचारिए कि मेरे साथ चलने से और नगर को जनशून्य बना देने से सत्य कलकित होगा या उसकी प्रतिष्ठा बढेगी? विश्वामित्र ने मुझे केवल स्त्री–पुत्र को साथ ले जाने की आज्ञा दी है, आप लोगो को ले जाने की नही। इसलिए आप लोगो के साथ चलने का अर्थ यही हुआ कि या तो मेने विश्वामित्र को राज्य नही दिया या उनसे जो प्रतिज्ञा की वह भग की है। मैं आप लोगो से प्रार्थना करता हू कि आप लोग प्रसन्नतापूर्वक यहीं रहे और मेरी चिन्ता न करे। प्रेम साथ–साथ चलने के बाह्य आचरण से नही बल्कि सत्य–पालन के आन्तरिक–आचरण से किया जाना उचित है। यदि आप लोगो का मुझ पर प्रेम है तो मै आपसे यही कहता हू कि जिस सत्य के लिए मैंने अपने पूर्वजो के राज्य को दान कर दिया और अपनी राजधानी तथा आप लोगो को छोड कर जा रहा हू, उसी सत्य के पालन मे तत्पर रहे। उसके पालन मे होने वाले कष्टो से भयभीत न होवे।

बन्धुओ! आज तक मे राजा रहा ओर आप लोगो पर शासन करता रहा, परन्तु आज से विश्वामित्र राजा हुए हैं। अब वे शासन करेगे। मे आशा करता हू कि आप लोग उन्हे भी वेसा ही सहयोग प्रदान करते रहेगे, जेसा कि मुझे करते रहे हे।

अब आप लोग जो यह कहते हे कि हमे विश्वामित्र के शासन मे दु ख होगा, तो मित्रो, यह आपके हृदय की दुर्बलता हे। आज मे राज्य को

दान मे देकर जा रहा हू इसलिए आप लोग मुझे ऐसा कह रहे है, किन्तु यदि मेरी मृत्यु हो जाती तो दूसरा शासक आप पर शासन करता या नही? वह शासक भी यदि आप लोगो पर अत्याचार करता तो आप किससे कहते? भाइयो! दु ख केवल दुर्बल आत्मा को हुआ करता है, सबल आत्मा वाले मनुष्यो के तो दु ख कभी समीप ही नही फटकता। आप लोग सत्य का सचय करके बलवान बनिए, फिर किसी की क्या शक्ति है जो आपको दु ख दे सके। राजा तथा पजा का तो ऐसा सबध है कि प्रजा पर अत्याचार करने वाला राजा एक क्षण भी राज्यासन पर नही ठहर सकता। पहले तो विश्वामित्र स्वय ही बुद्धिमान हे, इस समय वे कुद्ध होकर चाहे जो कुछ कहे, परन्तु वे नीतिज्ञ हे, इसलिए प्रजा पर कदापि अत्याचार न करेगे। मान लो कि उन्होने कभी अत्याचार किया भी तो आप सत्याग्रह पर विश्वामित्र के अत्याचार का प्रतिकार कर सकते है। अत्याचार के भय से भागना वीरो का नही, कायरो का काम है। वीर लोग तो सदा अत्याचार का प्रतिकार ही करते है। आप सूर्यवशी राजाओ की प्रजा है, अत इस प्रकार कायर बनकर उन्हे कलकित करना आप लोगो को किसी प्रकार भी शोभा नही देगा।

प्रियवरो! अपना राज्य, अपना देश, अपनी प्रजा और अपनी राजधानी मैं और किसी समय इतने आनन्द से नही छोड सकता था, जितने आनन्द से आज छोड रहा हूँ। अन्य किसी समय यदि कोई मुझसे छुडाना भी चाहता तो मै उस छुडाने वाले का प्रतिकार करता, उससे युद्ध करता और उस युद्ध मे मैं स्वय ही आप लोगो से सहायता लेता। परन्तु मैं सत्यपालन के लिए उन सब चीजो को–जिन्हे कि मैं अन्त समय तक किसी दूसरे को न लेने देता–आज प्रसन्नतापूर्वक छोड रहा हू। कर्त्तव्य और सत्य के आगे राज्य–वैभव, सुख, तृण के समान है और वन–वन के महान् कष्ट राज–सुख की अपेक्षा अत्यधिक सुख–दाता हैं। जिस सत्य और कर्त्तव्य के लिए मैं इन सबको छोड रहा हू, उस सत्य और कर्त्तव्य का आप लोग भी पालन करेगे। उस समय आप भी जानेगे कि सत्य और कर्त्तव्य के आगे राज–वैभव कितना तुच्छ है।

अब मै आप लोगो से यही कहता हू कि आप लोग सत्यपालन मे मेरी सहायता कीजिए। आप लोगो का घर लौट जाना ही उचित है। मुझे आज ही अवध की सीमा को छोडना है और सूर्य अस्ताचल की ओर जा रहा हे। यदि समय पर सीमा पार न कर सका तो प्रतिज्ञा भ्रष्ट होऊगा। जो मेरे साथ ही आपके लिए भी कलक की बात है। मै आशा करता हू कि आप लोग

मेरे साथ एक कदम भी न चलकर अपने–अपने घर लोट जाएगे। आपके भूतपूर्व राजा की आपसे यही अन्तिम प्रार्थना हे कि आप साथ चलकर मेरे सत्य को कलकित न करे। मेरा आपको यही आशीर्वाद है ओर आप भी मुझे यही आशीर्वाद दीजिए कि हम लोग सत्य–पालन मे दृढ रहे।

हरिश्चन्द्र के इस भाषण को लोग चुपचाप सुनते हुए आखो से आसू बहाते रहे। पशु–पक्षी ओर वृक्ष भी हरिश्चन्द्र के इस यथार्थ परन्तु करुणापूर्ण भाषण को सुनकर जडवत् खडे हो गए तो सहृदय मनुष्यो मे यह शक्ति कब हो सकती थी कि वे हरिश्चन्द्र के कथन का कुछ प्रतिवाद करते।

दूसरी ओर तारा की सखिया और अन्यान्य स्त्रिया अपने नेत्रो के जल से तारा के चरण धोती हुई प्रार्थना कर रही थी कि आप न तो राज्य देने मे ही साथ थी, न दक्षिणा का मौखिक ऋण लादने मे ही, आप क्यो जाती है? उनके इस प्रकार प्रार्थना करने पर तारा बोली–

मेरी प्यारी माताओ, बहिनो तथा पुत्रियो! यद्यपि मै आज आप लोगो से एक अनिश्चित समय के लिए बिछुड रही हू परन्तु यह सोभाग्य की बात है कि मै पति की सेवा के लिए जा रही हू। मेरे साथ ही आप लोगो के लिये भी यह प्रसन्नता की बात होनी चाहिए कि आपकी ही जाति मे से तारा नाम की एक क्षुद्र स्त्री पति की सेवा के लिए अपने सब सुखो को छोड रही हे। यद्यपि आप लोग पतिव्रत के नियमो की जानकार है, तथापि इस समय वियोग के दु ख मे पडकर उन्हे भूल रही हे। लेकिन आप विचारिये तो सही कि जब मे उनकी अर्द्धांगिनी हू तो जो दान उन्होने दिया, क्या वही दान मैने नही दिया है? जो ऋण उन पर है, क्या वही मुझ पर नही हे? फिर वे तो कष्ट सहे और मै कष्ट से बचने के लिये यहा रह जाऊ, यह केसे उचित हे! सुख के समय पति के साथ रहकर दु ख के समय साथ छोड देना क्या पतिव्रता के लिये उचित हे? बहिनो! आप लोग तो अपने धर्म पर स्थिर रहे अर्थात् पति की सेवा करे ओर मुझे पति की सेवा–त्याग का उपदेश दे, यह आप लोगो को शोभा नही देता हे। आप मेरे लिये जो प्रेम दर्शा रही हे, वह सब पतिसेवा का ही प्रताप हे। यदि मे पतिसेवा से विमुख होकर आपके पास आती और कहती कि मुझे स्थान दे, तो सम्भवत ही नही बल्कि निश्चय ही मेरा तिरस्कार करके मुझे पतित से पतित समझती ओर घृणा की दृष्टि से देखती। लेकिन पतिसेवा के लिए मे सब सुखो को छोडकर उनके साथ जा रही हू, इसी से आप लोग मुझ से यहा रहने के लिए आग्रह कर रही हें। जिस पतिसेवा का यह प्रताप हे, उसे में कदापि नही छोड सकती ओर आपसे भी

यही प्रार्थना करती हू कि आप लोग यह अनुचित आग्रह न करे। स्त्री का धर्म केवल पतिसेवा है। वस्त्राभूषण आदि पतिसेवा के सन्मुख तुच्छ हैं।

बहिनो! इस समय महाराज का साथ छोड देने से मैं तो कलकिनी होऊगी ही, परन्तु साथ ही समस्त स्त्री जाति भी कलकिनी होगी। मेरे साथ ही सब लोग स्त्री–जाति मात्र को धिक्कारेगे और कहेगे कि स्त्रिया स्वार्थी और कपटी होती है। वे तभी तक का साथ देती है जब तक पति सुखी है धन–वैभव–सम्पन्न है। धन के न रहने पर और पति के ऊपर किसी प्रकार का कष्ट आते ही वे पति को छोड देती है। मै केवल दु खो के भय से अपने साथ ही समस्त स्त्रीजाति को यह कलक नही लगने दे सकती। मैं पति के साथ वन–वन भटक कर कष्टो को सहती हुई पति की सेवा करके ससार को यह दिखा देना चाहती हू कि कैसी भी विषम अवस्था हो, स्त्रिया पति की सेवा नही छोडती हैं। जो पुरुष स्त्रियो को धूर्त आदि समझकर अपमानित करते हैं, उन्हे भी मेरे चरित्र से मालूम होगा कि स्त्रिया क्या हैं और उनका अपमान करके हम कितना अन्याय करते है।

बहिनो! आपका मुझ पर जो प्रेम है, वह अवर्णनीय है। इस प्रेम का कारण मेरी पतिसेवा ही है। इसलिए मेरा आपसे यही कहना है कि आप लोग पति की सेवा मे सदा रत रहे, पति से अधिक प्रेम रखे और अन्यान्य धार्मिक कार्यो की अपेक्षा पति–सेवा को अधिक महत्व दे। स्त्री के लिए पति–सेवा से बढकर दूसरा कोई नैतिक धर्म नही है।

बहिनो! अब आप लोग मेरे साथ चलने के विचारो को त्यागकर मेरे प्रति अपने प्रेम का परिचय पति की सेवा द्वारा दीजिये। जिन बहिनो के पति नही हे वे परमात्मा का ध्यान करे और अपना सारा समय उसी के भजन मे व्यतीत करे।

बहिनो! दिन ढलता जा रहा है, इसलिए आप लोग मुझे आशीर्वाद देकर विदा कीजिये। मैं आपसे केवल यही आशीर्वाद मागती हू कि किसी भी समय और किसी भी अवस्था मे मै पतिसेवा से विमुख न होऊ। लेकिन आप लोग इस बात को ध्यान मे रखे कि आशीर्वाद उन्ही लोगो का फलदायक होता है जो स्वय भी उसके अनुसार कार्य करते हो।

तारा के इस भाषण ने सब स्त्रियो को आश्चर्य–चकित कर दिया। वे चित्रलिखित सी रह गई और अपने आपको धिक्कारने लगी। कुछ स्त्रिया तारा को आभूषण भेट देने लगी परन्तु तारा ने उन्हे यह कहकर लेने से

इनकार कर दिया कि मेरे आभूषण मेरे पति है और वे मेरे साथ ही हैं। यदि उनकी अपेक्षा इन आभूषणो को मैं बडा समझती तो मैं अपने आप के आभूषणो को ही क्यो छोड जाती?

अवध–निवासी स्त्री–पुरुषो मे से बहुतो की इचछा राजा–रानी के साथ चलने की थी परन्तु दोनो के भाषणो को सुन कर उनके विचार बदल गये। उनके साथ जाने की अपेक्षा अरोध्या मे रहकर सत्य ओर कर्त्तव्य के पालन को ही उन्होने अच्छा समझा। सब ने प्रसन्नचित होकर महाराज हरिश्चन्द्र और महारानी तारा की जय का घोष करते हुए उन्हे विदा किया।

महाराज हरिश्चन्द्र, रोहित ओर रानी तारा इस कोलाहलमय जनसमूह से बाहर निकलकर वन की ओर चले। उन्हे इस प्रकार जाते देख सब लोग विलाप करने लगे। इन लोगो के विलाप को सुनकर पशु–पक्षी भी विकल होने लगे और राजा–रानी की आखे भी भर आई।

जिनकी सवारी के लिए अनेक वाहन उपस्थित रहते थे, महल से बाहर निकलने पर हजारो सेवक साथ होते थे, जिनके आगे–आगे बन्दीजन यशगान करते चलते थे, जिनको प्रणाम करने के लिए प्रजा मार्ग पर पक्तिबद्ध खडी होती थी, आज वे ही राजा–रानी पैदल, नगे पाव और अकेले जा रहे थे। वे रानी जो आभूषणो के भार से ही थकी–सी प्रतीत होने लगती थी, आज बालक रोहित को गोद मे लिए पति के पीछे–पीछे चल रही थी। जिनके पैर रखने के लिए पुष्प बिछाये जाते थे, वे ही आज कटीले और पथरीले मार्ग पर चल रही थी, इतना कुछ होते हुए भी दम्पति के मुह पर चिन्ता की रेखा तक नही थी।

जब तक राजा और रानी दिखते रहे तब तक प्रजा बराबर टकटकी बाधकर उन्हे देखती और विलाप करती रही और जब वे ओझल हो गए तब सब लोग मन मारकर घर की ओर लोटे, जैसे कोई अमूल्य पदार्थ खोकर लोटे हो।

16. अवध को अन्तिम प्रणाम

ससार का नियम है कि दु खी आदमी अपने दु ख से उतना नही घबराता जितना एक सुखी मनुष्य दु ख पडने पर घबराता है। जो नीचे ही है, यदि वह गिरे तो उसे उतनी चोट नही पहुचती जितनी ऊपर से गिरने वाले को पहुचती है। इसी के अनुसार हरिश्चन्द्र और तारा, जिन्हे आज की अवस्था की कभी कल्पना न थी, जो यह भी नही जानते थे कि नगे पाव चलना कैसा होता है, उनको आज इस कण्टकाकीर्ण पथ पर चलने से अधिक कष्ट होना चाहिए था, परन्तु उनको नाममात्र का भी दु ख नही था वरन् प्रसन्नचित्त थे।

पुत्र सहित राजा–रानी अवध को अन्तिम प्रणाम कर काशी जाने के लिए वन की ओर चल दिए। मार्ग मे रोहित को कभी राजा लेते थे तो कभी वह स्वय ही पैदल चलने लगता था। राजा और रानी के कोमल पैरो मे काटे और ककर चुभते जाते थे, जिससे खून निकल–निकल कर पैरो मे इस प्रकार लग रहा था जैसे पावो मे महावर लगाया हो।

प्रजा के समझाने–बुझाने मे राजा और रानी का बहुत समय लग गया था और थोडी दूर जाते ही शाम पड गई।

अधियारी काली रात मे भयानक जगल साय–साय कर रहा था। जो राजा–रानी सदा मधुर–मधुर बाजो और गानो को सुना करते थे, वे ही आज वन के पशुओ के स्वर सुन रहे थे। जो बालक रात के समय हिडोले मे झूला करता था, वही कभी माता और कभी पिता की गोद मे चिपटा जा रहा था ओर उन पशुओ के स्वर तथा सन्नाटे मे वृक्षो की झुरमुराहट सुन रहा था। जब कभी अधेरे मे किसी का पाव–ऊचा नीचा पडता तो पति पत्नी का और पत्नी पति का हाथ पकडकर एक–दूसरे की सहायता करते जाते थे। यद्यपि राजा और रानी, दोनो के पैर काटे लगने से लोहू–लुहान हो गए किन्तु दोनो ही चुप थे। रानी तो यह विचार कर चुप थी कि कहूगी तो पति के हृदय

को दु ख होगा और कहेगे कि मेरे कारण इसे दु ख हो रहा है और राजा विचारते थे कि जो कष्ट मुझे हो रहे हैं, वे ही रानी को भी होते होगे और फिर रानी स्त्री होते हुए भी इन कष्टो को सह रही हे, जबकि मे तो पुरुष हू। में क्यो कायरता प्रकट करू। रानी तो स्वय कष्ट सहकर मेरे लिए एक आदर्श उपस्थित कर रही हे।

बालक को लिए हुए दोनो पथिक जैसे–तेसे एक वृक्ष के समीप पहुचे। दिन भर के भूखे तो थे ही इस समय भी पास कुछ खाने को न था, जो खाते। इसलिए चुपचाप उसी वृक्ष के नीचे सो रहे। हिसक पशुओ की रक्षा के लिए बारी–बारी से कुछ देर राजा जागते रहे और कुछ देर रानी। इस प्रकार अनेक सेवको से सुरक्षित महलो मे रहने वाले, कोमल शैया पर सोने वाले राजा–रानी और रोहित ने कुछ देर सोकर और कुछ देर जागकर रात बिताई।

अरुणोदय के समय राजा–रानी उठ बैठे और परमात्मा का स्मरण करके आत्मचिन्तन मे लीन हो गए। जहा अन्य लोग दु ख के समय परमात्मा को कोसने लगते है, वहा हरिश्चन्द्र और तारा धन्यवाद दे रहे थे। वे लोग अपने आपको कष्ट मे नही समझ रहे थे, किन्तु समझ रहे थे कि हम सत्य की परीक्षा दे रहे है।

परमात्मा को स्मरण करने के पश्चात् राजा और रानी रोहित को लेकर फिर मार्ग तय करने लगे। बारह पहर से अधिक व्यतीत हो चुके थे, परन्तु अभी तक अन्न का एक दाना भी उनके मुह मे नही गया। कुछ देर चलने पर बालक स्वभावानुसार रोहित को भूख लगी। भूख तो कल भी लगी थी, जो सह्य थी किन्तु आज भूख असह्य हो गई थी। वह तारा से खाने के लिए मागने लगा परन्तु तारा के पास आश्वासन के सिवाय ओर क्या था जो उसे देती। बालक के अधिक कहने–सुनने पर तारा ने थोडे से जगली फल तोडकर रोहित को दिए परन्तु उसे वे कब अच्छे लग सकते थे, जो वह खाता। उसने फलो को चखकर फेक दिया ओर मा से फिर खाने को मागने लगा।

समय की गति बलवान हे। जो राजा ओर रानी नित्य दूसरो को भोअन बाटा करते थे, जिनके आश्रय से हजारो मनुष्य नित्य भोजन पाते थे, वे ही आज स्वय दो दिनो से भूखे हे। जिस रोहित के लिए अनेकानेक भोज्यपदार्थ सदा विद्यमान रहते थे जो उन्हे आग्रह करने पर भी नही खाता था ओर जो अमृत के समान स्वादिष्ट फलो को अपने साथ खेलने वाले बालको को बाट दिया करता था, वही आज भूख से विकल हो रहा था ओर

उसे वे जगली फल खाने को मिल रहे थे, जिनको कभी उसने देखा भी न था, चखने की बात तो दूर रही।

सन्तान के क्षुधातुर होने और भोजन मागने पर न दे सकने के कारण माता–पिता के होने वाले दु ख को हम आप सभी जानते हैं। हरिश्चन्द्र और तारा को भी रोहित के भूख–भूख चिल्लाने से वही दु ख हो रहा था, परन्तु इसका उपाय क्या? तारा आश्वासनो से रोहित का मन बहलाती जा रही थी परन्तु वे आश्वासन कब तक काम कर सकते थे।

हरिश्चन्द्र पुत्र की दशा से विकल हो गए। वे मन ही मन कह रहे थे कि मै कैसा अभागा पिता हू जो अपने भूखे बालक को एक टुकडा भी नही दे सकता और दु खी हो रहे थे कि इन लोगो को इस प्रकार कष्ट मे डालने का कारण मै ही हू।

राजा एक तो दो रोज से भूखे थे, दूसरे चलने से भी अत्यधिक थक गए थे, तीसरे गर्मी के मारे प्यास से कण्ठ सूखा जा रहा था और ऊपर से बालक की क्षुधा का दु ख उन्हे और भी अधीर कर रहा था। वे चलते–चलते एक वृक्ष के नीचे मूर्छित होकर गिर पडे। तारा पति की यह दशा देखकर घबरा उठी। रोहित ऐसी हालत मे अपनी भूख भूल गया और तारा से पूछने लगा कि पिताजी क्यो गिर गए? तारा ने रोहित को राजा के पास बैठा दिया और उसके हाथ मे पत्ते देकर कहा–बेटा, जरा तुम इन पत्तो से अपने पिता के मुह पर हवा तो करो। रोहित अपने छोट–छोटे हाथो से हवा करने लगा ओर रानी राजा के लिए जल की चिन्ता करने लगी।

आवश्यकता आविष्कार की जननी है। घर बनाना, भोजन बनाना, कपडे बनाना आदि प्रत्येक आविष्कार आवश्यकता के कारण ही हुए है। आवश्यकता का अनुभव किये बिना किसी आविष्कार की आवश्यकता प्रतीत नही होती हे। रानी यद्यपि राजमहल की रहने वाली थी, वन कैसा होता है, उसके वृक्ष केसे होते है तथा उन पर किस प्रकार चढा जाता है ओर दोने किस प्रकार बनाये जाते हें आदि बाते वे नही जानती थी लेकिन जल की आवश्यकता ने उन्हे वृक्ष पर चढना और दोना बनाना भी सिखा दिया। रानी को जब इधर–उधर जल दिखाई न पडा तब वे एक वृक्ष पर चढकर जलाशय देखने लगी। थोडी दूरी पर उन्हे एक सरोवर दिखाई पडा। वे वृक्ष से उतरकर दोडती हुई उस सरोवर पर पहुची और कमल के पत्ते का दोना बनाकर जल भरकर पति के पास लाई।

रानी को पैदल चलने का यह पहला ही अवसर था, दो–दो दिन की भूखी थी और पैरो मे काटे–ककर चुभने से असह्य पीडा का अनुभव कर रही थी, परन्तु इन सब बातो की कुछ भी परवाह न कर वे पति के लिए दौडकर जल ले आई। यदि आज की स्त्रियो की तरह तारा भी होती तो सम्भवत पहले तो इन सब दु खो को सहन करने के लिये तैयार ही न होती ओर कदाचित् तैयार भी हो जाती तो वन के मध्य पति की इस दशा को देखकर किकर्तव्यविमूढ हो जाती। परन्तु तारा ने ऐसी अवस्था मे भी धैर्य ओर दृढता न छोडी।

रानी ने जल लाकर पति के मुह पर छिडका। शीतल जल के छींटो से राजा की मूर्छा दूर हुई और आखे खुली एव रानी के अनुरोध पर थोडा–सा जल पिया।

राजा ने जल पिया और शाति मिलने पर रानी से पूछा–प्रिये! इस निर्जन वन मे यह जल तुम कहा से लाई? इसने तो मेरे लिए अमृत का काम किया है।

तारा–प्रभो! मै इसे समीप ही के एक सरोवर से लाई हू।

हरिश्चन्द्र–प्रिये! मै तुम्हे साथ नही ला रहा था। परन्तु अब अनुभव करता हू कि यदि तुम साथ न होती तो मेरी दु ख की नाव पार नही जा सकती थी। तुम मेरे लिए अद्वितीय सुखदात्री सिद्ध हुई हो।

राजा की बात सुनकर तारा इस आपत्ति के समय मे भी हस पडी–स्वामिन्! मेरे पास सुख है, तभी तो मैं सुखदात्री हू।

हरिश्चन्द्र–हा, यदि तुम्हारे पास सुख न होता तो तुम सुखदात्री केसे हो सकती थी?

तारा–प्रभो! आप दु ख से घबरा जाते हे अत आपके पास जो दु ख है वह मुझे दे दीजिये ओर मेरे पास जो सुख है वह आप ले लीजिए।

हरिश्चन्द्र–यह कैसे हो सकता हे? सुख–दु ख कोई ऐसे पदार्थ तो है नही जो बदल लिए जाए। मुझे तो आश्चर्य होता हे कि तुम इस दशा मे भी अपने को सुखी मान रही हो। सुख को दु ख से बदलने का उपाय क्या हे, उसकी कुजी क्या हे, यह बताओ ओर यह भी बताओ कि तुम ऐसे कष्ट सकती हुई भी अपने आपको सुखी केसे मान रही हो तथा दु ख से घबराहट क्यो नही होती हे?

तारा–नाथ! जिस समय आपने राज्यदान करने का सुनाया, उस समय दु ख मुझे पीसने आया था। परन्तु मेने जान लिया कि यह मेरा शत्रु

है। शत्रु को समझ लेने पर सब उससे सावधान रहते और उसे जीतने का उपाय करते ही हैं। इसी के अनुसार मैने दु खरूपी शत्रु को–जिसे कि मै उस समय तक जानती न थी–जीतकर कैद कर लिया। यदि मै उससे भय खा जाती या परास्त हो जाती तो वह मुझे पीस ही देता, परन्तु मै उससे भयभीत नही हुई। अब, जब से मैने उसे कैद कर लिया है तो वह शत्रुता की जगह मेरा उपकार कर रहा है और मुझे ऐसे–ऐसे काम करना सिखा रहा है कि जिन्हे करना मै जानती ही न थी।

रानी की बात सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुए और धन्यवाद देते हुए कहने लगे कि–मे समझता था कि तुम राज्य छूट जाने और इस प्रकार भूखे रहकर जगल मे चलने आदि के दु खो से दु खित हो जाओगी, परन्तु तुम तो इस समय भी अपने आपको सुखी बता रही हो।

तारा–प्रभो! मै दु खित तो तब होऊ जब आपका राज्य छूटा हो। आपका राज्य छूटा ही नही है, बल्कि कृत्रिम राज्य के बदले अलौकिक और वास्तविक राज्य प्राप्त हुआ है।

हरिश्चन्द्र–तारा! यह तो तुम एक अत्युक्तिपूर्ण बात कह रही हो।

तारा–नही नाथ, मै आपको बताती हू कि आपका वह राज्य कैसे कृत्रिम था और इस समय का राज्य कैसे अकृत्रिम है? पहले आप उस सिहासन पर बैठते थे जिसके छिन जाने आदि बातो का सदा भय बना रहता था लेकिन आज आप कुश के उस सिहासन पर बैठे है जिसके विषय मे किसी प्रकार का भय नही है। यदि आप यह कहे कि राजा लोग कुशासन पर नही बैठते, सिहासन पर ही बैठते है तो वे राजा कुशासन की उत्कृष्टता को नही जानते। किन्तु आपने उस सोने के सिहासन की अपेक्षा इस कुशासन को बडा समझा है इसी से तो उसे त्यागकर इसे अपनाया है।

हरिश्चन्द्र–यह तो तुमने ठीक कहा।

तारा–स्वामी! पहले आप पर जो चवर ढुला करता था, वह तभी तक पवन करता था जब तक कि कोई उसे हिलाता रहता था। लेकिन यह प्राकृतिक पवन ऐसा चवर है कि सदेव हिला करता है और इसी के दिये पवन से आप तथा सारा ससार जी रहा है। वह चवर तो केवल आप को पवन देता था परन्तु यह चवर तो सबको पवन देता है और इस प्रकार उस कृत्रिम चवर की अपेक्षा यह अकृत्रिम चवर विशष आनन्द का दाता है।

प्रभो, उस राज्य मे आपके सिर पर जो छत्र रहता था वह तो आडम्बर था। इसके सिवाय वह छत्र केवल आप ही पर छाया रखता था,

परन्तु यह वृक्ष रूपी छत्र आडम्बर–रहित और सब पर छाया रखने वाला है। उस छत्र की छाया के बिना सबको दु ख नही हो सकता, परन्तु इसकी छाया के बिना मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सभी दु खी हो सकते है।

आपके उस राज्य मे सब जीव आपसे भय खाते थे, वह राज्य क्रोध, अहकार आदि पेदा करने वाला था परन्तु इस राज्य मे क्रोध, अहकार, वैर आदि का नाम भी नही है। यह राज्य प्रेम का है। देखिये तो, ये हरिण आपकी ओर केसी आखे फाडकर प्रेम से देख रहे हैं। आप जब उस राज्य के स्वामी थे तब क्या हरिण इस प्रकार निर्भय होकर आपके राजसिहासन के समीप आते थे?

नाथ, उस राज्य मे गायकगण आपको कृत्रिम गान सुनाते थे, बन्दीजन आपकी अत्युक्तिपूर्ण प्रशसा करते थे, परन्तु इस राज्य मे पक्षीगण आपको अकृत्रिम राग सुनाते है। अब आप ही बतलाइए कि इस राज्य की समानता वह राज्य कैसे कर सकता है। उस राज्य मे यदि कुछ लोग आपके हितचिन्तक थे, आपसे प्रेम करते थे तो कुछ लोग आपके अहितचिन्तक ओर आपसे ईर्ष्या करने वाले भी रहे होगे, परन्तु इस राज्य मे आपसे कोई भी ईर्ष्या करने वाला नही है।

रानी की बात सुनकर राजा उनकी बुद्धि ओर उनके धेर्य पर प्रसन्न हो उठे। वे कहने लगे–तारा, तुमने तो इस दशा मे भी मुझे उस राज्य से भी अच्छे राज्य का स्वामी बनाया है। तुम स्त्री नही वरन् एक शक्ति हो। तभी मे उसको त्यागकर इस राज्य को प्राप्त कर सका हू। वास्तव मे तुमने मेरे दु ख की गठडी ले ली है। अब मुझे कोई दु ख नही रहा इसलिए चलो, अब और आगे बढे।

राजा रानी फिर चलने लगे। पिता के मूर्छित होकर गिर जाने ओर माता–पिता को बातचीत करते देख बालक रोहित भूखा होते हुए भी शान्तचित्त बेठा था लेकिन बालक अपनी भूख को कब तक दबा सकता था? वन के खट्टे–तूरे फलो से उसकी तृप्ति नही हुई थी इसलिए माता–पिता से वह पुन खाने को मागने लगा।

जिस देव ने राजा को सत्य से डिगाने का प्रण किया था वह तो विश्वामित्र के राज्य ले लेने ओर हरिश्चन्द्र को राज्य से निकाल देने पर यह विचार कर प्रसन्न हुआ था कि अब हरिश्चन्द्र सत्य का पालन न कर सकेगा

परन्तु राजा को सत्यपालन के लिए इस पकार कष्ट सहते देख आश्चर्यचकित हो गया। इस समय उसने विचारा कि इन्हे राज्य छूटने आदि का कैसा दु ख है? इसकी परीक्षा मै स्वय लू। इस विचार से वह एक वृद्धा का रूप धारण करके सिर पर लड्डुओ का पिटारा रख हरिश्चन्द और तारा के साथ–साथ चलने लगा। वह एक लड्डू हाथ मे ले रोहित को दिखा–दिखाकर ललचाने लगा कि देखे अपने पुत्र की भूख से दु खित राजा–रानी लड्डू मागते है या नही। रोहित वृद्धा को लड्डू बताते देख अपनी माता की ओर देखने लगा। तारा ने रोहित से कहा–बेटा, ऐसे लड्डू तो तुम नित्य ही खाते थे और अब आगे चलकर और भी खाओगे।

माता–पिता के स्वभाव के सस्कारो का प्रभाव बालको पर भी हुआ करता है। जिसके माता–पिता स्वय मागना नही जानते, उनके बालक भी प्राय ऐसे ही हुआ करते हैं। ऐसे बालको को यदि कोई स्वय भी कुछ देने लगता है तो वे नही लेते, मागना तो दूर रहा। रोहित बालक था और आज दो दिन से भूखा भी था परन्तु उसने उस वृद्धा से लड्डू नही मागा और न मा से ही कहा कि तुम मुझे माग दो।

वृद्धा अपने लड्डू वाले हाथ को रोहित के समीप इस तरह ले जाती थी मानो उसे लड्डू दे रही हो परन्तु जिस तरह कोई घृणित वस्तु की ओर नही देखता, उसी तरह रोहित ने भी माता की बात सुनने के पश्चात् उसकी ओर नही देखा और न हरिश्चन्द्र या तारा ने ही उससे कहा कि तू एक लड्डू दे दे। तारा मन ही मन यह अवश्य कहती थी कि रोहित को आश्वासन देने के लिए यह वृद्धा अच्छी आ गई। इसके आ जाने से मेरे बालक का मार्ग सुगम हो गया और वह अपने भूख के दु ख को बहुत कुछ भूल गया है।

रोहित राजा ओर रानी की ऐसी दृढता देखकर वह देव निराश हो अपना सा मुह लेकर एक तरफ को चलता बना।

चलते–चलते राजा रानी ओर रोहित काशी मे गगा तट पर आ पहुचे। गगा की धारा देखकर उन्हे अपूर्व हर्ष हुआ। दोनो उस धारा से अपनी तुलना करते हुए परमात्मा से प्रार्थना करने लगे कि– हे प्रभो, हमारी धारा भी गगा की तरह सदा एकसी रहे।

गगा की धारा को सबोधित कर राजा कहने लगे– गगे! तू हिमालय से निकलकर समुद्र मे जा रही हे। न तो किसी के लौटाने से लौटती हे ओर

न किसी के रोकने पर रुकती है। बल्कि जो तेरे मार्ग को रोकता है, उसका तू अविराम विरोध करती हे। तेरी धारा सम हे, उसके मध्य कही भी विषमता नही है। तेरी ही तरह मैं भी इस ससार रूपी हिमालय से निकलकर परमात्मा रूपी समुद्र मे जाना चाहता हू। जिस प्रकार तेरे जल की धारा नही लौटती उसी प्रकार मुझे भी अपने सत्य की धारा मे विघ्नकर्त्ताओ के झूठ का निरन्तर विरोध करते हुए समवेग से धारा को चलने देना चाहिए। अब तक तो मे अपने इस कर्तव्य पर स्थिर रहा हू और आशा हे कि आगे भी दृढ रहूगा।

गगे! तू तो जिन प्रदेशो मे होकर निकली है, उनको हरा–भरा बनाकर वहा के निवासियो को सुख देती गई हे। मै भी अवध से काशी आया हू, परन्तु यहा के लोगो को मैं क्या शाति प्रदान कर सकूगा, यह नही कह सकता।

उधर रानी कह रही थी–गगे! तेरा भी नाम स्त्री वाचक है और मैं भी स्त्रियो मे से हू। मै अब अपनी और तेरी तुलना करती हू।

जिस प्रकार तू हिमालय से निकलकर समुद्र को जाती हे, उसी प्रकार हम स्त्रिया भी पीहर को छोडकर ससुराल जाती हे। जिस तरह तू अपने एक समुद्र को छोडकर दूसरे मे जाने का विचार नही करती उसी प्रकार हम भी एक ससुराल को छोडकर दूसरी मे जाने का विचार नही करती। जेसे तू समुद्र मे जाकर मिल जाती है, दूसरी नही जान पडती, उसी तरह हम भी ससुराल मे जाकर मिल जाती हैं, दूसरी नही जान पडती। जिस तरह तू अपने उद्गम स्थान पर तो कल कल करती है, परन्तु समुद्र मे पहुचकर शात ओर गम्भीर बन जाती है, उसी प्रकार हम भी पीहर मे तो कल–कल करती हें परतु ससुराल मे शात ओर गभीर बन जाती हे। जिस प्रकार तेरी एक धारा होने से तू पावन कहलाती हे, उसी प्रकार हम मे भी जो एक धारा रखती हे वे पावन कहलाती हैं। जिस प्रकार तू नि स्वार्थ भाव से समुद्र मे जाती हे उसी प्रकार हम भी नि स्वार्थ–भाव से ससुराल जाती हें। जेसे तू अविराम बहती ओर उस बहाव मे बाधा पहुचाने वाले का विरोध करती रहती हे उसी प्रकार हम भी पति सेवा तथा उनके हित चिन्तन मे सलग्न रहती ओर उसमे बाधा पहुचाने वाले विषयो का विरोध करती हे। जिस प्रकार तू अपनी धारा को रोकने वाले पहाडो को चीर डालती हे, उसी प्रकार हम भी अपन पतिहित की धारा को रोकने वाले सुखो को चीर डालती हें। गगे! अव बता ऐसा करना तूने हम स्त्रियों से सीखा हे या हम स्त्रियो ने तुझस सीखा हे!

गगे। यदि इसमे मैने कोई अहकार की बात कही हो तो मुझे क्षमा करना। क्षमा के साथ–साथ मैं तुझसे यह और मागती हू क मेरी जो धारा इस समय बह रही है, वह अन्त तक ऐसी ही बनी रहे।

दम्पति ने इस प्रकार गगा से अपनी तुलना की और वहा से चलकर धर्मशाला मे आए।

धर्मशाला बनवाने का अभिप्राय तो यह होता है कि उसमे उन लोगो को रहने दिया जाए, जिनके रहने का कोई स्थान नही है और जो तत्काल ही अपना अन्य प्रबन्ध नही कर सकते हैं। लेकिन आजकल सुना जाता है कि प्राय किसी बडे आदमी के आने पर या आने की सूचना मिलने पर धर्मशाला से गरीबो को तो निकाल दिया जाता है या ठहरने नही दिया जाता और धनिको के लिए सम्पूर्ण धर्मशाला या उसका कुछ भाग सुरक्षित कर दिया जाता है। परन्तु जिन धर्मशालाओ मे ऐसा होता है वे वास्तव मे धर्मशाला नही, बल्कि धनिको की विलासशाला है।

न किसी के रोकने पर रुकती है। बल्कि जो तेरे मार्ग को रोकता हे, उसका तू अविराम विरोध करती है। तेरी धारा सम हे, उसके मध्य कही भी विषमता नही है। तेरी ही तरह मैं भी इस ससार रूपी हिमालय से निकलकर परमात्मा रूपी समुद्र मे जाना चाहता हू। जिस प्रकार तेरे जल की धारा नही लौटती उसी प्रकार मुझे भी अपने सत्य की धारा मे विघ्नकर्त्ताओ के झूठ का निरन्तर विरोध करते हुए समवेग से धारा को चलने देना चाहिए। अब तक तो में अपने इस कर्तव्य पर स्थिर रहा हू और आशा हे कि आगे भी दृढ रहूगा।

गगे! तू तो जिन प्रदेशो मे होकर निकली हे, उनको हरा–भरा बनाकर वहा के निवासियो को सुख देती गई है। मै भी अवध से काशी आया हू, परन्तु यहा के लोगो को मैं क्या शाति प्रदान कर सकूगा, यह नही कह सकता।

उधर रानी कह रही थी–गगे! तेरा भी नाम स्त्री वाचक हे ओर मे भी स्त्रियो मे से हू। मै अब अपनी और तेरी तुलना करती हू।

जिस प्रकार तू हिमालय से निकलकर समुद्र को जाती हे, उसी प्रकार हम स्त्रिया भी पीहर को छोडकर ससुराल जाती है। जिस तरह तू अपने एक समुद्र को छोडकर दूसरे मे जाने का विचार नही करती उसी प्रकार हम भी एक ससुराल को छोडकर दूसरी मे जाने का विचार नही करती। जेसे तू समुद्र मे जाकर मिल जाती है, दूसरी नही जान पडती उसी तरह हम भी ससुराल मे जाकर मिल जाती हैं, दूसरी नही जान पडती। जिस तरह तू अपने उद्गम स्थान पर तो कल कल करती हे, परन्तु समुद्र मे पहुचकर शात ओर गम्भीर बन जाती है, उसी प्रकार हम भी पीहर मे तो कल–कल करती हें परतु ससुराल मे शात ओर गभीर बन जाती हे। जिस प्रकार तेरी एक धारा होने से तू पावन कहलाती हे, उसी प्रकार हम मे भी जो एक धारा रखती हे वे पावन कहलाती है। जिस प्रकार तू नि स्वार्थ भाव से समुद्र मे जाती हे उसी प्रकार हम भी नि स्वार्थ–भाव से ससुराल जाती हे। जेसे तू अविराम बहती और उस बहाव मे बाधा पहुचाने वाले का विरोध करती रहती हे, उसी प्रकार हम भी पति सेवा तथा उनके हित चिन्तन मे सलग्न रहती ओर उसमे बाधा पहुचाने वाले विषयो का विरोध करती हे। जिस प्रकार तू अपनी धारा को रोकने वाले पहाडो को चीर डालती हे उसी प्रकार हम भी अपने पतिहित की धारा को रोकने वाले सुखो को चीर डालती हें। गगे! अब बता, ऐसा करना तूने हम स्त्रियों से सीखा हे या हम स्त्रियो ने तुझसे सीखा हे!

गगे! यदि इसमे मैने कोई अहकार की बात कही हो तो मुझे क्षमा करना। क्षमा के साथ–साथ मैं तुझसे यह और मागती हू क मेरी जो धारा इस समय बह रही है, वह अन्त तक ऐसी ही बनी रहे।

दम्पति ने इस प्रकार गगा से अपनी तुलना की और वहा से चलकर धर्मशाला मे आए।

धर्मशाला बनवाने का अभिप्राय तो यह होता है कि उसमे उन लोगो को रहने दिया जाए, जिनके रहने का कोई स्थान नही है और जो तत्काल ही अपना अन्य पबन्ध नही कर सकते हैं। लेकिन आजकल सुना जाता है कि प्राय किसी बडे आदमी के आने पर या आने की सूचना मिलने पर धर्मशाला से गरीबो को तो निकाल दिया जाता है या ठहरने नही दिया जाता और धनिको के लिए सम्पूर्ण धर्मशाला या उसका कुछ भाग सुरक्षित कर दिया जाता है। परन्तु जिन धर्मशालाओ मे ऐसा होता है वे वास्तव मे धर्मशाला नही, बल्कि धनिको की विलासशाला है।

17. काशी में

निन्दंतु नीति निपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मी. समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्यारुयात्पथ. प्रविचलन्ति पदं न धीरा ।।

नीति–निपुण मनुष्य की चाहे कोई निन्दा करे या स्तुति करे। लक्ष्मी आये अथवा स्वेच्छानुसार चली जाये। चाहे आज ही मृत्यु हो जाए या युगान्तर मे हो। किन्तु धीरे मनुष्य न्याय मार्ग से एक कदम भी विचलित नही होते हैं।

ऊपर कहे गए नीति–वाक्य के अनुसार हरिश्चन्द्र, तारा ओर रोहित ने दो दिन से भूखे तथा पास मे एक पैसा न होते हुए भी किसी से भीख मागने या अनुचित रीति से अपनी क्षुधा मिटाने का विचार न किया। इस प्रकार कष्ट सहकर भी नीति को न छोडने के कारण ही अनेक युग बीत जाने पर भी आज लोग हरिश्चन्द्र और तारा की प्रशसा करते हे।

रोहित को लिये हुये राजा–रानी धर्मशाला मे आये। धर्मशाला का व्यवस्थापक दीनवेशधारी राजा–रानी को देख आश्चर्यचकित हो विचारने लगा कि आज तक इस धर्मशाला मे अनेक स्त्री–पुरुष, धनिक ओर निर्धन आये परन्तु ऐसा सुन्दर तो एक को भी नही देखा। कही सोन्दर्य ही तो मनुष्य रूप धारण करके नही आया हे? ऐसा सोचकर उसने पूछा कि–आप कोन हे और यहा किस अभिप्राय से पधारे हें?

राजा–हम दीन श्रमजीवी हें। जीविकोपार्जन के लिये यहा आए हे और इस धर्मशाला मे ठहरने के इच्छुक हे। हमे कही थोडा–सा स्थान दे दीजिए, जहा हम लोग रह सके।

व्यवस्थापक–आप लोगो को जितने और जिस स्थान की आवश्यकता हो, ले लीजिये।

राजा–हम दीन हैं इसलिए हमे विशेष स्थान तो नही चाहिए, लेकिन एक छोटी सी कोठरी दे दीजिये और उसका कितना किराया होगा, वह भी बतला दीजिये।

व्यवस्थापक–किराया! यहा किराया नही लिया जाता और न कोई किराया देकर रहने वाला आता ही है। यह तो है धर्मशाला। यहा दीनो को रहने के लिए स्थान भी है और भोजन भी दिया जाता है।

राजा–यदि ऐसा हे और हमे यहा किराये पर कोई स्थान नही मिल सकता तो फिर हम कोई अन्य स्थान ढूढेगे। लेकिन बिना किराया दिये तो हम नही रह सकेगे।

व्यवस्थापक–जब आप लोग दीन हैं तो किराया कहा से देगे? क्या यहा का भोजन भी नही करेगे?

राजा–मै धर्मार्थ मिलने वाला भोजन भी नही कर सकता और न बिना किराया दिये ही रह सकता हू। मैं जिस तरह अपना उदर–पोषण करूगा, उसी प्रकार से किराया भी दूगा।

व्यवस्थापक–ऐसा क्यों?

राजा–इसलिये कि मै दीन हू, परन्तु भिखारी नही।

व्यवस्थापक–तो क्या तुम्हारे स्त्री–पुत्र भी यहा भोजन नही करेगे? उन्हे तो भोजन करने दे।

राजा–नही।

व्यवस्थापक–पुत्र तो अभी बालक है, उसे तो भोजन कराने मे कोई हर्ज नही है।

राजा– एक समय की भिक्षा या धर्मार्थ मिला हुआ भोजन भी सस्कारो मे अन्तर डाल सकता है।

राजा की बाते सुनकर व्यवस्थापक बहुत ही प्रसन्न हुआ। वह मन ही मन कहने लगा कि यद्यपि ये है तो दीन, परन्तु है कोई नीतिज्ञ और भले आदमी। अत उसने जाने देना उचित न समझा और एक छोटा सा स्थान दिखाकर किराया भी बता दिया। स्त्री–पुत्र सहित राजा उस कोठरी मे आये। राजा ने तारा से कहा–तुम जब तक इसे झाड बुहारकर साफ करो तब तक मे नगर मे उद्योग कर कुछ भोजन–सामग्री ले आऊ।

जिसके यहा हजारो मजदूर काम किया करते थे, वही राजा मजदूरो के दल मे सम्मिलित हो मजदूरी कर रहे थे ओर जो रानी सदैव हजारो दास–दासियो पर आज्ञा करती थी, वही अपने हाथो झाडू निकाल रही थी। तथापि दोनो ही इस विचार से प्रसन्न थे कि हम सत्य के लिए तपस्या कर रहे है।

बात की बात मे रावी ने कोठरी झाड–बुहारकर साफ कर ली ओर आसपास की दुकानो से भोजन वनाने के लिए किराये पर बरतन भी ले आई। यह सब कर चुकने पर रानी विचारने लगी कि पति तो काम की तलाश मे गये हे परन्तु वे इस समय सिवाय मजदूरी के और क्या करेगे? वे मजदूरी करके लाएगे और तब मै भोजन बनाकर दू, इसमे मेरी क्या विशेषता होगी? इधर वेसे ही वे दो दिन से भूखे हैं, फिर भी मजदूरी करने गये है ओर वे मजदूरी करके लाए, मैं बनाऊगी तब तक फिर भूखे रहेगे। इधर मैं भी उस समय तक यो ही बैठी रहूगी। जब वे मजदूरी करने गए है, तब मुझे मजदूरी करने मे क्या हर्ज हे। मैं तो उनकी अर्द्धांगिनी हू। वे राजा थे तो मै रानी थी। जब वे मजदूर हे तो मै भी मजदूरनी हू।

ऐसा विचारकर रानी पडोस की स्त्रियो के निकट जाकर कहने लगी–यदि आप लोगो के यहा कोई मजदूरी का कार्य हो तो कृपा करके मुझे बतलाइये।

तारा व रोहित के रूप–सोन्दर्य को देख ओर बात सुनकर उन स्त्रियो का हृदय भर आया। वे आपस मे कहने लगी कि यह हे तो कोई भद्र महिला परन्तु है विपदग्रस्त। उनमे से एक ने रानी से पूछा कि– आप कोन है ओर क्या काम कर सकती हे?

रानी–में मजदूरनी हू। पीसना–कूटना, बरतन माजना आदि कार्य में सरलता से कर सकती हू।

तारा की इस बात ने उन स्त्रियो के हृदय मे ओर भी करुणा उत्पन्न कर दी। वे कहने लगी कि– तुम मजदूरनी तो नही जान पडती परन्तु विपत्ति की मारी अवश्य हो। हमे तुमसे मजदूरी कराना उचित प्रतीत नही होता अत तुम्हे जो चाहिये हो सो ले लो।

रानी–यदि मुझे सम्मान के योग्य समझती हे तो आप लोग मुझे भिखमगी न वनाइए ओर कोई मजदूरी का कार्य देने की कृपा कीजिये। यदि कार्य न हो तो मना कर दीजिये। देर करने से हम भोजन वनान म भी देर

होगी, जिसके फलस्वरूप हमे अधिक समय तक भूख सहनी पडेगी। मै बिना मजदूरी किए तो आपसे कुछ भी नही ले सकती।

स्त्रियो ने जब समझ लिया कि यह ऐसे न लेगी तब उन्होने तारा को कुछ काम दिए। जिनको तारा ने इतने शीघ्र और कुशलतापूर्वक किया कि वे सब उनकी कार्यकुशलता पर मुग्ध हो गई। उन्होने मजदूरी दी और मजदूरी पाकर तारा ने भोजन सामग्री खरीदी और उससे भोजन बनाकर रोहित को परसा। सदा के अनुसार रोहित मचल गया और माता से कहने लगा कि तुम भी भोजन करो। परन्तु तारा ने उसे समझाया कि तेरे पिताजी के आ जाने पर मै भी भोजन करूगी। तारा के समझाने–बुझाने पर रोहित ने भोजन किया।

रोहित को भोजन कराकर रानी द्वार पर बैठी पति की प्रतीक्षा करने लगी। उधर राजा भी इस विचार से कि बालक और स्त्री भूखे है। मजदूरी मिलते ही भोजन सामग्री खरीदकर स्थान पर आये। राजा के आने पर रानी ने कहा–नाथ, भोजन कीजिए। राजा आश्चर्य से पूछने लगे कि– भोजन बनाने की सामग्री लेकर तो अब आ रहा हू, तुमने भोजन कहा से बना लिया।

रानी–प्रभो, अच्छा हो कि यह बात आप भोजन करने के बाद पूछिए। हा, यह मैं आपको विश्वास दिलाती हू कि यह भोजन न्यायोपार्जित हे, अन्यायोपार्जित नही।

रानी के विश्वास दिलाने पर राजा ने भोजन किया और फिर रानी से पूछा– प्रिये, अब बताओ कि यह भोजन सामग्री तुमने कहा से और केसे प्राप्त की? मुझे आश्चर्य है कि तुमने इतने ही समय मे सामग्री कैसे प्राप्त कर ली?

रानी–प्रभो, आप यह सामग्री कहा से लाए हैं?

राजा– यह तो मै मजदूरी करके लाया हू।

रानी– मजदूर की स्त्री भी मजदूरनी ही होती है। आप जब मजदूरी करने गए तो फिर मुझे मजदूरी करने मे क्या लज्जा हो सकती थी। जिस प्रकार आप मजदूरी करके यह भोजन सामग्री लाए है, उसी प्रकार मै भी मजदूरी करके लाई हू। जब आपको अन्यायवृत्ति प्रिय नही तो मुझे कैसे प्रिय हो सकती थी? आपकी लाई हुई भोजन सामग्री शेष रहेगी। गृहस्थ का कर्तव्य हे कि अल्प सचय करे, तो अपने यहा भी कम से कम एक दो समय

की भोजन सामग्री शेष होनी ही चाहिए। स्वामी, हम लोगो को अब किसी प्रकार का कष्ट नही हो सकता। क्या आप ओर मे दोनो मिलकर अपना पेट भरने के लिए भी नही कमा सकेगे?

रानी की बात सुनकर राजा को सन्तोष हुआ। वे आश्चर्यपूर्वक कहने लगे– तारा, तुमने तो गजब कर दिया। तुम–सी स्त्री पाकर में कृतार्थ हुआ।

जो राजा और रानी कुछ ही दिन पहले धन–धान्यादि से सुखी थे, अब गरीबीपूर्ण जीवन मे, रूखे–सूखे भोजन मे ओर धर्मशाला की एक छोटी–सी किराए की कोठरी मे ही अपने को सुखी मान रहे थे। जिनके यहा हजारो मजदूर लगे रहते थे, वे आज स्वय मजदूरी करके और ऐसा करते हुए भी अपने–आपको सुखी समझ रहे थे, इस गरीबी को दूर करने के लिए किसी अन्यायपूर्ण कार्य करने की इच्छा भी स्वप्न मे नही करते थे। इसलिए नीतिकारो ने कहा है कि धीर मनुष्य चाहे जैसी परिस्थिति मे हो, किन्तु वे कभी भी न्यायमार्ग नही छोडते है।

राजा–रानी इसी प्रकार मजदूरी करके सुखपूर्वक दिन व्यतीत करने लगे। रानी अपने गृहकार्य से निवृत्त होकर पडोस के घरो मे मजदूरी करने जाती और राजा सवेरे ही जाकर मजदूरो के दल मे सम्मिलित हो जाते थे। राजा और रानी को देखकर लोग आश्चर्य करते और विचार करते थे कि ये कोन हैं? परन्तु न तो कोई इन्हे पहचान ही सका ओर न ही किसी को अपना परिचय दिया। अपने दल मे एक नये मजदूर को सम्मिलित होते देख मजदूर भी आपस मे कानाफूसी करते कि यह कोन है? इसका ललाट कितना भव्य है, भुजाए कैसी लम्बी हे, वक्षस्थल केसा चौडा हे ओर शरीर कितना सुन्दर तथा सुडौल हे? यह कोई देव तो नही हे जो मजदूर के वेश मे हम से कुछ छल करने आया हो? यह मजदूरी के तो सभी कार्य जानता हे परन्तु इसके पास मजदूरी का कोई औजार नही हे।

मजदूरो मे से एक मजदूर ने साहस क[illegible] [illegible]ने पूछा–महाशय हम आपका परिचय जानना चाहते हे।

राजा–भाई, जेसे म[illegible] आप हे, वेसा [illegible] विशेष परिचय क्या? हम स[illegible] [illegible]पने कार्य [illegible] सहयोग रखना चाहिए।

राजा का उत्तर सुन[illegible] कुछ [illegible]

राजा जिनके यहा मजदूरी पर जाते थे, वे भी उनके कार्य से प्रसन्न रहते थे। मजदूरी के जितने भी कार्य होते हैं राजा उन सभी को जानते थे। पहले के लोग इसीलिए अपनी सन्तान को सब कार्य सिखलाते थे कि किसी समय और किसी भी दशा मे वह भूखो न मरे।

राजा का मजदूरो से अच्छा प्रेम हो गया। राजा उन्हे उचित सलाह देते और यथासामर्थ्य उनकी सहायता करते थे। इस प्रकार सब मजदूर उनके अनुगामी बन गए और महाराज हरिश्चन्द का मजदूरो पर एक छोटा सा राज्य हो गया।

18. ऋण–मुक्ति का उपाय

महाराज हरिश्चन्द्र और महारानी तारा मजदूरी करते हुए आनन्दपूर्वक दिन व्यतीत कर रहे थे, परन्तु विश्वामित्र के ऋण की चिन्ता उन्हे चेन नही लेने देती थी। हरिश्चन्द्र के पास कुछ न होते हुए भी वे ऋण–मुक्त होने की चिन्ता मे थे और एक आज के वे लोग है जो ऋण लेकर देने की सामर्थ्य होते हुए भी नही देते है या कह देते है कि हमने लिया ही नही या फिर दिवाला निकाल देते है और एक हरिश्चन्द्र हैं जिन्होने विश्वामित्र से ऋण तो लिया नही था केवल दक्षिणा देना जबान से मात्र कह दिया था, तब भी उन्हे देने की चिन्ता थी। इस अन्तर का कारण यही है कि आज के ऐसा करने वाले लोगो ने तो अन्यायवृत्ति को अपना साधन मान रखा है लेकिन हरिश्चन्द्र को न्याय वृत्ति ही प्रिय थी। सत्पुरुषो की ऐसी वृत्ति को देखकर एक कवि ने कहा है–

प्रिय न्याय्या वृत्तिमलिनमसुभगेप्यसुकर–
त्वसन्तो नाभ्यर्थ्या सुहृदपि न याच्य कृशधन ।
विपद्यच्चै· स्थेय पदमनुविधेय च महता–
सता केनोद्दिष्ट विषममसिधाराव्रतमिदम्।।1।।

सत्पुरुषो को यह तलवार की धार जेसा कठिन व्रत किसने बताया है? जो प्राण जाने पर भी मलिन ओर पाप कर्म नही करते, किन्तु न्यायोपार्जित आजीविका ही जिनको प्रिय हे। वे दुष्टो से या अल्पधन वाले सज्जनो से भी याचना करना नही जानते हें। जेसे–जेसे विपत्ति आती हे वेसे–वेसे नही घबराते हुए सदा उच्चपद के ही विचार करते ओर उच्चता के ही अनुगामी बनते जाते हे।

एक दिन इसी चिन्तित दशा मे राजा को नीद आ गई। किन्तु कुछ देर पश्चात चोंककर वे जाग गए ओर बेठ गए। पति को इस प्रकार चोंकते देख रानी ने उनसे इसका कारण पूछा। हरिश्चन्द्र कहने लगे– प्रिये,

विश्वामित्र का जो ऋण मुझ पर लदा है, वह मुझे किसी भी समय चैन नही लेने देता है।

पति की बात सुनकर तारा कहने लगी–नाथ, आप चिन्ता क्यो करते हैं? जैसा ऋण आप पर है, वैसा ही मुझ पर भी तो है। फिर आप अकेले चिन्ता क्यो करे? किसी न किसी प्रकार ऋण से मुक्त हो ही जाएगे।

हरिश्चन्द्र–लेकिन ऋण मुक्त होगे कैसे! अपनी आमदनी तो केवल इतनी ही है कि उससे निर्वाह हो सकता है। एक सहस्र स्वर्ण–मुद्रा आएगी कहा से, जो ऋण भी दिया जा सके?

तारा–स्वामी, जब हम अयोध्या से चले थे तब तो खाने को भी पास नही था और न आशा थी कि कि काशी मे हमे कुछ मिल जाएगा। फिर भी यहा हमारा काम किस प्रकार चल रहा है कि आप भी भोजन करते है, और गृहस्थो का कर्त्तव्य–पालन करते हुए अतिथि–सत्कार भी करते हैं।

राजा–उद्योग?

तारा–जिस उद्योग से खाने को मिल रहा है तो उसी उद्योग से ऋण भी दिया जाएगा। फिर आप चिन्ता क्यो कर रहे है?

राजा–यह तो मै पहले ही कह चुका हू कि उद्योग द्वारा हमारी आय इतनी नही होती कि जीवन–निर्वाह भी हो जाए ओर ऋण–मुक्त भी हो सके। अतएव चिन्ता क्यो न करू?

तारा– यदि हमारी नीयत साफ है, सत्य पर अटल है, ऋण चुकाने की सच्ची चिन्ता हे, तो ऋण अवश्य ही चुक जायेगा। ऋण तो उनका नही चुकता जो चुकाने की ओर से उदासीन हैं, किन्तु आप तो उसके लिये चिन्तित है। अत आप तो अवश्य ही ऋणमुक्त होगे।

रानी की बात सुनकर राजा को धैर्य प्राप्त हुआ। कुछ दिन तो राजा–रानी उसी प्रकार अपने कार्य मे लगे रहे परन्तु अवधि के कुछ दिन शेष रहने पर राजा को पुन ऋण–चिन्ता ने घेर लिया। राजा ने सोचा कि जैसे भी हो ऋण–मुक्त होना चाहिए। उस दिन से मजदूरी करने नही गये और किसी के यहा नोकर रहकर ऋण की मोहरे प्राप्त करने के विचार से बाजार गये। एक बडी–सी दुकान पर पहुचकर उसके एक सेवक से कहा कि–मुझे सेठ से कुछ कहना है। दीनवेशधारी राजा को पहले तो वह सेवक टालता ही रहा, परन्तु राजा के विशेष अनुनय–विनय करने पर उसने सेठ को सूचना दी कि एक मजदूर आपसे कुछ बात करना चाहता हे।

जिन मजदूरो की कमाई पर धनिको का जीवन निर्भर है जो श्रमजीवी आप छोटे रहकर दूसरो को बडा बनाते हे, प्राय उन्ही श्रमजीवियो

की बात को वे बडे लोग नही सुनते हे। उनको उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। उनके दु ख पर ध्यान नही देते बल्कि विशेष कहने–सुनने पर उनके साथ अभद्रतापूर्ण व्यवहार तक करते हुए सुने जाते हैं। वे धन के कारण धनान्ध हो जाते है। ऐसो को ही लक्ष्य कर एक शायर ने कहा हे–

नशा दौलत का बदअवतार को जिस आन चढा।
सर पै शैतान के एक और शैतान चढा।।

अनुभवशून्य और क्षुद्रहृदय मनुष्य पर जिस क्षण सम्पति का नशा चढ गया, उस समय मानो शैतान के सिर पर एक ओर शेतान चढ गया हे।

यद्यपि यह सर्वथा अनुचित हे कि दीनो पर दया न करना, अपने उपकारी का उपकार न मानना। परन्तु धन के मद मे उन्हे अपने कर्तव्य का ध्यान नही रहता है। धन के नाश हो जाने पर जब वे भी उसी श्रेणी मे आ जाते है तब चाहे उन्हे अपनी भूल प्रतीत हो और श्रमजीवियो से प्रेम करने लगे परन्तु पहले ही यदि वे इस बात को समझ ले तो ऐसा पश्चात्ताप करने का अवसर ही क्यो आए?

परन्तु मजदूर वेशधारी राजा से बातचीत करना उस धनान्ध सेठ को कब उचित प्रतीत हो सकता था, अत उसने राजा की ओर देखकर अपने मुनीम–गुमाश्तो से कहा कि–कोई मजदूरी का काम हो तो इसे दे दो।

राजा–मे मजदूर तो हू ही ओर मजदूरी मेरा धन्धा हे परन्तु इस समय में उसके लिए नही आया हू। मै तो आपसे एक ऐसी बात करना चाहता हू कि जिसमे आपका भी लाभ हे ओर मेरा भी लाभ हे।

परन्तु सेठ ने यह विचार कर कि यह मजदूर मेरे लाभ की क्या बात बता सकता हे ओर कोन इससे बात करने मे समय खोये, राजा को धुतकार दिया। राजा वहा से निराश होकर दूसरी दुकान पर पहुचे परन्तु वहा भी यही दशा हुई। इस प्रकार कई दुकानो पर गए परन्तु किसी ने भी उनकी बात नही सुनी। जिस प्रकार हीरे की पहिचान न होने के कारण भीलनी उसकी उपेक्षा कर घुघची को महत्त्व देती हे, उसी प्रकार राजा की भी कोई परीक्षा न कर सका और उन्हे सभी जगह निराश होना पडा।

इस तरह अनेक स्थानो पर अपमानित होने पर भी राजा निराशा को दबाकर प्रयत्न करते रहे। एक सेठ ने राजा की बात सुनना स्वीकार किया। राजा ने कहा– मे लिखना–पढना नापना–तोलना आदि व्यापार–सबधीसब कार्य जानता हू। इतना ही नही एक सेनिक की तरह दुकान की रक्षा भी कर सकता हू। किन्तु म ऋणी हू, अत आप मेरा ऋण चुकाकर मुझे अपने यहा

नौकर रख लीजिए और जब तक मै ऋण–मुक्त न हो जाऊ, तब तक आप मुझसे काम लीजिये और मेरा वेतन अपने लेने मे जमा करते रहिए।

सेठ–तो फिर खायेगा क्या?

राजा–मेरी स्त्री मजदूरी करती है और उसी मजदूरी से मेरा निर्वाह हो जाएगा।

सेठ–कितना ऋण है?

राजा–एक हजार मुहरे।

सेठ–एक हजार! क्या जुआ खेला था?

राजा–नही।

सेठ–तो फिर इतना ऋण कैसे हो गया? क्या किसी और व्यसन मे फस गया था?

राजा– मैं व्यसन के समीप भी नही जाता। मुझे एक ब्राह्मण की दक्षिणा देना है, बस यही ऋण है।

सेठ–तेरा जितना वेतन नही होगा, उससे अधिक तो रकम का ब्याज हो जाएगा। इस पकार हमारी रकम तो कभी पूरी हो ही नही सकती। इसके अलावा तेरा विश्वास क्या और तू भाग जाए तो हम कहा ढूढते फिरेगे?

राजा–आप विश्वास रखिए, मै कदापि नही भाग सकता।

सेठ–हमको धोखा देता है, मूर्ख समझता है। एक हजार स्वर्ण मुद्रा की दक्षिणा देने वाला और दुकान का सब कार्य जानने वाला मनुष्य इस हालत मे कदापि नही रह सकता। चल, भाग जा यहा से बेकार की बाते करके हमारा समय खराब न कर।

राजा–सेठ जी आप नौकर रखकर तो देखिए कि मै आपकी दुकान की केसी उन्नति करता हू।

सेठ–पहले अपनी उन्नति तो कर ले, फिर हमारी दुकान की करना। अपना पेट तो भरा नही जाता ओर चला है हमारी दुकान की उन्नति करने!

इस सेठ से भी ऐसा अपमानजनक उत्तर सुनकर राजा निराश हो गए। वे वापस धर्मशाला लौट आए और तारा से कहने लगे– आज मैंने अपनी मजदूरी भी खोई जगह–जगह अपमानित भी हुआ परन्तु किसीने मेरी पूरी बात नही सुनी और न कार्य ही सिद्ध हुआ। अब क्या करू, किस प्रकार ऋण से छुटकारा मिले।

तारा–नाथ विपत्ति के समय ऐसा ही होता हे। यदि ऐसा न हो ओर कोई किसी प्रकार से सहायता दे या बात सुनने लगे तो फिर वह विपत्ति ही

कैसी? स्वामी, विपत्ति के समय तो केवल धैर्य धारण कीजिए। जिस सत्य के लिए हम इस विपत्ति को सह रहे हैं, वही हमे हस चिन्ता से भी मुक्त करेगी।

यद्यपि तारा ने हरिश्चन्द्र को बहुत कुछ धैर्य दिया परन्तु उन्हे शाति न मिली। ऋण की मियाद का दिन जैसे–जेसे निकट हो रहा था, वेसे–वेसे ही राजा का खाना–पीना भी छूटता जा रहा था। होते–होते यह दशा हो गई– कि राजा चलने–फिरने मे भी अशक्त हो गए।

मनुष्य के लिए चिन्ता से बढकर कोई कष्ट दु खदायी नही होता है। चिन्ता भीतर ही भीतर मनुष्य को भस्म कर देती हे। कवि ने कहा हे–

चिन्ता ज्वाल शरीर वन, दव लागी न बुझाय।
बाहर धुंआ न नीसरे, अन्दर ही जल जाय।।
अन्दर ही जल जाय, जरे ज्यों काच की भट्टी।
रक्त मास जरि जाय, रहे पिंजर की टट्टी।।
कह गिरधर कविराय, सुनो रे सज्जन मिन्ता।
वे नर कैसे जिएं जिन्हे तन व्यापी चिन्ता।।

ऋण–चिन्ता से व्याकुल राजा को चारो ओर निराशा ही निराशा दिखलाई पडती थी। चिन्ता से अत्यधिक आतुर हो वे परमात्मा की प्रार्थना करने लगे–हे प्रभो, जिस सत्य के लिए मैंने राज–पाट छोडा, मे मजदूर तथा रानी मजदूरनी बनी, अनेक प्रकार के कष्ट सहे, वह सत्य क्या इस थोडे से ऋण के लिए चला जाएगा? सत्य जाने के पहले यदि मृत्यु हो जाए तो श्रेष्ठ है, परन्तु सत्य न जाने पाए।

पति की यह दु खावस्था रानी से देखी नही जाती थी। वे पति को धैर्य भी बधाती और विचारती कि यदि पति के वचन की रक्षा मेरे प्राण देने से होती हो तो मे इसके लिए भी तेयार हू।

जहा आज की स्त्रिया इसके लिए तेयार नही होती कि थोडे से आभूषण दे देने से पति के वचन की रक्षा होती हे, वहा रानी अपने प्राण देकर भी पति के वचन की रक्षा करने को तेयार हे। यदि आज की स्त्रिया तारा का आदर्श सामने रखे तो सर्वस्व देने को तेयार हो जाए।

राजा को तो ऋण की चिन्ता थी ओर तारा को राजा की चिन्ता। वे विचारती थी कि मेने जिन पति के लिए सब सुख तृण की तरह छोड दिए

जिन का मुख–चन्द्र देखकर मैं मजदूरी करती हुई भी कुमुदिनी की तरह प्रसन्न रहती हू, उन पति की यह दशा हो गई है। अब मै क्या करू? इसी चिन्ता मे रानी के नेत्रो से अविरल अश्रुधारा बह चली।

आज मियाद का अन्तिम दिन था। राजा इसी चिता मे थे कि आज के सूर्य मे ऋण कैसे चुकाया जाय? रानी भी ऋण और पति की चिन्ता से विकल थी। दोनो के नेत्रो से आसू बह रहे थे और दोनो ही उदास थे। उसी समय धर्मशाला के द्वार पर आकर विश्वामित्र ने हरिश्चन्द्र के लिए पूछा। विश्वामित्र की आवाज सुनकर तारा और हरिश्चन्द्र की विकलता और भी बढ गई। वे विचारने लगे कि अब इनका ऋण कहा से चुकाया जाय? राजा ऋण चुकाने से इनकार तो कर नही सकते और पास कुछ है नही। अत वे सोचने लगे कि अब इन्हे क्या उत्तर दूगा? इसी भय के मारे उनकी जबान सूख गई।

कोठरी के द्वार पर विश्वामित्र यमराज की तरह आकर खडे हो गए। वे अपनी क्रोधपूर्ण वाणी मे बोले–कहा है हरिश्चन्द्र?

हरिश्चन्द्र की विकलता और विश्वामित्र को द्वार पर खडे देख तारा धैर्य रखकर बाहर निकली और विश्वामित्र को प्रणाम करते हुए कहा– आपने बडी कृपा की, जो पधारे। कहिए, क्या आज्ञा है?

विश्वामित्र क्रोधित होकर कहने लगे–क्या तू नही जानती कि मै क्यो आया हू? कहा है तेरा पति? उससे कह कि मेरा ऋण दे।

तारा–महाराज, आपका ऋण अवश्य देना है। आप साहूकार है और हम ऋणी। लेकिन यदि हमारे पास कुछ होता और हम देने की सामर्थ्य रखते तो जब राज्य देने मे देर नही की, तो दक्षिणा का ऋण देने मे क्यो देर करते? इस समय तो आप क्षमा कीजिये और कृपा करके कुछ मुहलत और दे दीजिये। यदि हम लोग जीवित है तो आपका ऋण देगे ही, किन्तु आपने हम लोगो को क्रोध से भस्म ही कर दिया तो इससे न तो आपका ऋण वसूल होगा ओर न हम ऋण–मुक्त ही हो सकेगे।

विश्वामित्र रानी की बात सुनकर अपनी आखो को लाल–लाल करके कहने लगे–अच्छा, अब तुम लोग इस प्रकार की धूर्तता करने पर उतारू हुए हो। क्या इसीलिए वह धूर्त आप तो छिप गया ओर तुझे भेजा हे?

तारा–आप शात हो ओर विचारिए कि जब हम लोग अयोध्या से चले थे उस समय हमारे पास खाने तक को अन्न का दाना नही था। फिर हमने अपने दिन कितने कष्ट से निकाले होगे? हमारा आपका राज्य देने–लेने के कारण घनिष्ठ सम्बन्ध हे, इस कारण आपको हमारे समाचार पूछकर

सहानुभूति प्रकट करनी चाहिए थी। इस सबध से भी नही, तो आप साहूकार हे और हम ऋणी है, इस नाते भी आपको हमारी कुशल पूछना उचित था। लेकिन आप तो ओर क्रुद्ध हो रहे है। यदि हमारे पास देने योग्य कोई वस्तु होती और हम ऋण न देते तो आपका क्रुद्ध होना उचित ही था, परन्तु जब हमारे पास ऐसी कोई चीज ही नही हे, जिससे हम ऋण दे सके, तब आप अकारण ही क्यो क्रुद्ध हो रहे हे?

विश्वामित्र–मैं ऋण मागने आया हू, ज्ञान सीखने नही। यदि तुम्हारे पास उस समय कुछ नही था और इस समय नही है, तो मैं क्या करू? इस बात को पहले ही सोच लेना था। लेकिन तब तो हठवश राज्य भी दे दिया और दक्षिणा भी देना स्वीकार किया ओर अब, जब मियाद समाप्ति के दिन मैं दक्षिणा लेने आया, तब वह तो छिप गया और तू इस प्रकार उत्तर देती है। यदि तुम्हारे पास देने को नही है तो अपने पति से कहो कि वह अपना अपराध स्वीकार कर ले। ऐसा कर लेने पर में दक्षिणा भी छोड दूगा और राज्य भी लोटा दूगा।

आज की सी स्त्रिया होती तो सम्भवत अपने पति से कहती कि अब तो कष्ट–सहिष्णुता की सीमा हो गई। अब कब तक सत्य को लिए फिरेगे। जरा–सा अपराध स्वीकार कर लेने पर इस ऋण–चिन्ता से भी छूटते हे ओर राज्य भी मिलता हे। लेकिन तारा सत्यपालन ओर पतिवचन की रक्षा के लिए न मालूम कितना साहस रखती थी कि इतने कष्ट सहने पर भी पति के कार्य को न तो अनुचित्त ही बताया ओर न यही कहना चाहती थी कि आप अपराध स्वीकार कर ले।

विश्वामित्र की बात सुनकर तारा कहने लगी– महाराज, आप ओर सब कुछ कहिए, लेकिन सत्य छोडने के लिए कदापि न कहिए। जिस सत्य के लिए हमने इतने कष्ट सहे ओर सह रहे हें, उस सत्य को अन्त समय तक भी हम नही छोड सकते। हमे राज–सुख का उतना लोभ नही हे, जितना सत्य का हे। चाहे यह किसी लोभी मनुष्य से भले हो जाय कि थोडे से लोभ के लिए सत्य छोड दे, परन्तु हमसे ऐसा न हो सकेगा।

विश्वामित्र–हू, रस्सी जल गई ऐठ नही गई। फिर यह बात किसे सुनाती हे कि हमारे पास कुछ नही हे? चाहे कुछ हो या न हो, सत्य छोडो या न छोडो, हमे हमारी दक्षिणा दे दो बस हम चले जाएगे। में तो समझता था कि हरिश्चन्द्र हो हठी हे परन्तु तू तो उससे भी ज्यादा हठी जान पडती हे।

तारा—महाराज हमे ऋण चुकाने से तो इनकार नही, परन्तु हमारी पार्थना तो केवल यही है कि इस समय हमारे पास ऋण चुकाने की सुविधा नही है। आप बुद्धिमान है, अनुभवी है और हमारे साहूकार है, इसलिए मै आपसे पार्थना करती हू कि आप ही कोई उपाय बताइए, जिससे आपका ऋण चुका सके। आप उपाय बताए और फिर हम उस उपाय से आपका ऋण न चुकाए तो अवश्य ही हम अपराधी हैं।

विश्वामित्र—उपाय भी तू ही पूछेगी? अपने पति के लिए ऐसी सुखदात्री है कि उसे बोलने का भी कष्ट न होने देगी? अच्छा, ले मैं बताता हू उपाय, किन्तु क्या उस उपाय को करेगी?

तारा—महाराज, आप जो भी उपाय बताएगे, वह न्यायोचित ही होगा, इसलिए हम कदापि उसके करने से पीछे नही हटेगे।

विश्वामित्र—मै उपाय बताता हू कि तुम लोग बाजार मे बिको और मेरा ऋण चुकाओ।

यह बात सुनकर साधारण मनुष्य को क्रोध आना स्वाभाविक था दूसरी स्त्री होती तो कहती कि जिससे लिया जाता है, उसे भी बिककर नही दिया जाता, लेकिन मेरे पति ने तो तुम्हे वचन दान ही दिया है, अत जब होगा तब देगे, बिके क्यो? लेकिन तारा को तो लिया हुआ देना और वचन दान देना, दोनो ही समान थे। इसलिए विश्वामित्र की बात से उन्हे दु ख या क्रोध न होकर प्रसन्नता हुई। वे कहने लगी—महाराज, आपने ठीक उपाय बताया। यह उपाय अब तक मेरी बुद्धि मे आया ही न था, अन्यथा आपको इतना क्रोध करने और कुछ कहने—सुनने का कष्ट ही न करना पडता। आपके ऋण से हम अवश्य मुक्त हो जाएगे। आपने उपाय बताने की बडी कृपा की हे। अब हम अवश्य ही ऋण—मुक्त हो जाएगे और आप अपना लेना भी पा जाएगे। आप ठहरिए मैं आज के ही सूर्य मे ऋण चुकाए देती हू।

तारा की बात सुनकर विश्वामित्र आश्चर्यमग्न हो गए और विचारने लगे कि यह स्त्री, स्त्री नही वरन् एक शक्ति है जो पति का ऋण चुकाने के लिए बिकने को भी तेयार हो गई। धन्य है इसे ओर इसके पति को भी धन्य है, जिसे ऐसी स्त्री प्राप्त हुई हे।

19. आत्म–विक्रय

विश्वामित्र को द्वार पर ठहराकर तारा महाराज हरिश्चन्द्र के पास गई जो कोठरी मे पडे–पडे अपने आपको कोस रहे थे। तारा ने उनके पास आकर कहा–नाथ, उठिए, अब चिन्ता की कोई बात नही हे। ऋण–मुक्त होने का उपाय विश्वामित्र ने स्वय बता दिया है। आप मुझे बाजार मे बेच कर ऋण चुका दीजिए। ऐसा करने से हम जहा ऋण–मुक्त होगे, वही विश्वामित्र को उनका लेना भी मिल जाएगा और हम अपने सत्य की रक्षा कर सकेगे।

तारा की बात सुनकर हरिश्चन्द्र का गला भर आया ओर कहने लगे–क्या मैं तुम्हे बेच दू? क्या आज मेरी ऐसी परिस्थिति हो गई हे कि मुझे स्त्री बेचनी पडे? हाय! हाय! स्त्री–विक्रेता पुरुष कहलाने की अपेक्षा तो मृत्यु श्रेष्ठ है। तुम स्त्री होती हुई भी मुझसे कई गुनी श्रेष्ठ हो जो अपने पति के वचन की रक्षा के लिए स्वय बिकने को तेयार हो, लेकिन मे पुरुष होते हुए भी अपने कर्त्तव्य के पालन मे असमर्थ हू। हे भगवान्! अब कोन कह सकता है कि सत्य नही हे। यदि ऐसा न होता तो आज तारा किस विश्वास से बिकने के लिए तेयार होती?

ससार मे तीन प्रकार के मनुष्य हैं। एक तो वे जो ऋणी नही हैं परन्तु दान देते हैं, दूसरे वे हैं जो लेकर देते हैं ओर तीसरे वे हैं जो दोनो मे से किसी प्रकार भी नही देते। अर्थात् न तो दान ही देते हैं ओर न लिया हुआ ऋण ही। ये तीनो प्रकार के मनुष्य क्रमश उत्तम, मध्यम ओर नीच माने जाते हैं। विना लिए देने मे तो विशेषता हे, परन्तु लेकर देने मे कोई विशेषता नही हे। फिर भी ससार मे ऐसे–ऐसे मनुष्य निकलेगे ही जो लेकर नही देते। ऐसे मनुष्यो की गणना न तो उत्तमो मे ही हाती हे ओर न मध्यमो मे ही।

किसी से ऋण लेकर उसे चुका देना भी जब मध्यम दर्जे की बात हे अर्थात् अच्छा तो हे विना लिए दना या केवल वचन से देने का कहकर

अनेक कष्ट सहकर भी देना तो कितनी विशेषता की बात है, जिसे आप स्वय विचारे। हमारे देश मे ऐसे कई उदाहरण हैं कि अपने वचन की रक्षा के लिए अपनी सतान तक को मृत्यु के मुख मे दे दिया। राज्य से वचित रखकर अपने प्रिय पुत्र को वन भेज दिया और आत्म–विक्रय द्वारा वचन का पालन किया।

इधर एक तो राजा स्वय वैसे ही दु खी हो रहे थे तो उधर ऊपर से विश्वामित्र जले पर नमक छिडक रहे थे कि अरे घमडी! अभी तेरी अकड नही गई! अब क्या स्त्री को बेचेगा? देख, अब मै तुझे किस प्रकार के दु ख–सागर मे ला पटकता हू कि जिससे तुझे मालूम होगा कि आश्रम की बदिनी देवागनाओ को छोड देने और ऊपर से हठ करने का क्या फल होता है?

यह सब सुनकर तारा ने हरिश्चन्द्र से कहा–स्वामी आप चिन्ता न कीजिए। मै किसी और कारण से नही, किन्तु सत्य–पालन के लिए बिक रही हू। सत्य–पालन के समय इस प्रकार की चिन्ता करना वीरो का काम नही है। इसलिए अब देर न कर शीघ्र दास–दासियो के क्रय–विक्रय बाजार मे चलिए और मुझे वहा बेचकर विश्वामित्र को एक सहस्र मुद्रा देकर हर्षित हो कि आज के सूर्य मे ही हमने ऋण चुका दिया है। यह शोक का समय नही, वरन् प्रसन्नता का है कि हमने अपने सत्य की रक्षा कर ली है।

यद्यपि रानी उसी सत्य के पालन की बात कह रही थी, जिसके लिए राजा ने स्वय इतने कष्ट सहे है। फिर भी उन्होने रानी की बात का कुछ भी उत्तर नही दिया। पति की ऐसी दशा देखकर रानी ने विचारा कि पति स्वय न तो मुझे बिकने की स्वीकृति ही दे सकेगे और न चलने के लिए आगे ही होगे। इधर सूर्य ढल रहा है और इससे पहले ऋण न चुका तो सत्य से भ्रष्ट भी होगे और बिकने से जो लाभ होना चाहिए, वह भी न होगा।

ऐसा विचार कर रानी ने अपने पास बची शेष भोजन सामग्री से कोठरी तथा बर्तन आदि का किराया चुकाकर इधर–उधर से थोडा सा घास एकत्रित कर लिया और सिर पर रख पति से कहने लगी–स्वामी चलिए। यह समय दु ख करने का नही, किन्तु सत्य पालन करने का है। सूर्य अस्ताचल की ओर जा रहा है और यदि उससे पहले ऋण न चुका तो आप प्रतिज्ञा भ्रष्ट हो जाएगे।

बिकने के लिए तारा को उद्यत देखकर हरिश्चन्द्र के प्राण सूखने लगे। वे अपने मुह से कुछ भी न बोल सके और विश्वामित्र भी अवाक् रह गए वे मन ही मन कहने लगे– में समझता था कि मै योगी हू, और अपने तपोबल से जिसे चाहू नीचा दिखा सकता हू, परन्तु यह मेरा भ्रम था। विपरीत

इसके, इन गृहस्थो ने तो मुझे ही अपने सत्यबल से नीचा दिखा दिया हे। पहले तो हरिश्चन्द्र ने ही राज्य देकर मेरा मान भग किया ओर अब तारा दक्षिणा के लिए बिककर मेरे रहे–सहे अभियान को भी नष्ट कर रही हे।

तारा समझ गई कि दु ख–मग्न पति मेरे चल दिए विना कदापि न उठेगे, अत वे रोहित को गोद मे लेकर बाजार की ओर चल दी। तारा को जाते देख विवश होकर हरिश्चन्द्र भी साथ हो लिए। आगे–आगे तारा, उनके पीछे हरिश्चन्द्र ओर उन दोनो के पीछे विश्वामित्र चलते हुए दास–दासियो के बाजार मे आ पहुचे।

भारत मे भी किसी समय दास–दासी के क्रय–विक्रय की प्रथा प्रचलित थी, लेकिन इतिहास से यह प्रकट होता हे कि जिस समय अन्य देशो मे यह प्रथा जोरो पर थी, उस समय भारत से इस प्रथा का अन्त हो चुका था। यद्यपि भारत मे दास–दासी के क्रय–विक्रय की प्रथा थी अवश्य, लेकिन दास–वाणिज्य के विषय मे लेखको ने यूरोप के दासो के साथ होने वाले जिन घृणित और अमानुषिक व्यवहारो का वर्णन किया हे, उनसे भारत सदा बचा रहा हे। वेसा अत्याचार कभी नही होने दिया जेसा पाश्चात्य देशो मे होता था। इतिहासकार कहते हैं कि इगलेड मे तो यह प्रथा उन्नीसवी शताब्दी तक बराबर जारी थी। भारत मे भी कही–कही दासत्व–प्रथा अभी शेष हे, लेकिन दास–व्यवसाय नही होता ओर इस शेष प्रथा का भी क्रमश अन्त होता जा रहा हे।

रानी ने विचार किया कि पति तो दु खवश मुझे बेच न सकेगे, इसलिए में स्वय ही अपने आपको बेचू। वे बाजार मे आवाज देकर कहने लगी भाइयो! मे दासी हू, गृहोपयोगी सब कार्य कर सकती हू, अत जिसको दासी की आवश्यकता हो, वह मुझे खरीद ले।

रानी के स्वरूप को देखकर लोग आश्चर्य करने लगे यह दासी तो विचित्र प्रकार की हे। इस बाजार मे अब तक ऐसी सुन्दर ओर सुडोल दासी कभी बिकने नही आई। इसकी सुकुमारता ओर रूप–लावण्य से प्रगट हे कि यह कोई सभ्रात महिला हे, परन्तु विपत्ति के वश होकर बिक रही हे। इन लोगो मे से एक ने तारा से पूछा कि– तुम कोन हो, कहा रहती हो ओर क्यो बिक रही हो?

तारा–म पहले ही कह चुकी हू कि मे दासी हू। दासी का विशेष परिचय क्या? हा यदि आप लोग चाहे तो मे क्या क्या–काम कर सकती हू, यह अवश्य पूछ सकते हें?

वह–तुम्हारा मूल्य क्या है?

तारा–ये ऋषि खडे है, इनके मै और मेरे पति ऋणी है। इन्हे एक सहस्र स्वर्ण–मुदाए देनी हैं। जो कोई इनकी एक सहस्र स्वर्ण–मुद्रा चुका देगा, मै उसी के यहा दासीपना करने के लिए चलने को तैयार हू।

तारा का मूल्य सुनकर लोग भौचक्के से हो आपस मे कहने लगे कि एक सहस्र स्वर्ण–मुदाए देकर ऐसी कोमलागी दासी खरीदकर क्या करेगे? जो स्वय इतनी कोमल है, वह हमारा क्या काम कर सकेगी?

उन लोगो मे से कोई विश्वामित्र से कहने लगा कि– तुम साधु हो, तुम्हे धन की ऐसी क्या आवश्यकता है जो इसको बिकने के लिए विवश कर रहे हो? कोई राजा के लिए कहता कि यह कैसा पुरुष है जो अपने सामने अपनी स्त्री को बिकते देखता है? कोई तारा के बारे मे ही कहने लगा कि यह स्वय ही न मालूम कैसी स्त्री होगी जो इसका पति स्वय अपनी उपस्थिति मे इस बिकने दे रहा है। इस प्रकार तीनो के लिए कटु शब्द कहकर सब चले गए। किसी ने भी तारा को खरीदने का विचार नही किया।

जिस स्थान पर बिकने के लिए तारा खडी थी, वही एक वृद्ध और अनुभवी ब्राह्मण खडा हुआ इन सब बातो को सुन रहा था। तारा की बातो और उनके लज्जादिक गुणो से उसने अनुमान किया कि यह कोई विपद्ग्रस्त विदुषी महिला है जो अपने आपको बेच रही है। उसके लक्षणो से प्रगट हे कि यह गुणवती और सच्चरित्रा है। वे लोग तो मूर्ख है जो एक सहस्र स्वर्ण–मुद्राओ को इसकी अपेक्षा अधिक समझते हैं।

ऐसा विचार कर वह वृद्ध ब्राह्मण तारा से कहने लगा–भद्रे! तुम्हारे लक्षणो से यह तो प्रगट ही है कि तुम किसी कुलीन घर की महिला हो ओर विपत्ति की मारी अपने आपको बेचकर इनका ऋण चुका रही हो। लेकिन क्या इतना और बता सकती हो कि यह ऋण किस बात का देना है?

तारा–दक्षिणा का।

ब्राह्मण–आपका नाम, गोत्र आदि क्या है?

तारा– इसके लिए तो मैं पहले ही कह चुकी हू कि मै दासी हू ओर दासी का नाम, गोत्र आदि क्या पूछना।

ब्राह्मण–यद्यपि तुम्हारे सद्गुणो को देखकर एक सहस्र स्वर्ण मुद्राए अधिक नही है किन्तु मेरे पास केवल पाच सौ है। यदि तुम अपने बदले मे इतनी मुद्राए दिलाना स्वीकार करो, तो मै देने को तैयार हू।

ब्राह्मण की बात सुनकर तारा विचारने लगी कि अब क्या करना चाहिए? देनी तो है एक सहस्त्र मुद्राए ओर ये ब्राह्मण पाच सो ही देते हे।

प्रसन्नता की बात है कि जहा किसी ने मुझे एक पेसे मे भी नही खरीदना चाहा था, वहा इन्होने मेरी कीमत पाच सो मुद्राए तो लगाई। यद्यपि इनसे सब ऋण तो नही चुकेगा, परन्तु आधी दक्षिणा मिल जाने से विश्वामित्र शात अवश्य हो जाएगे तथा शेष के लिए पति को कुछ ओर मियाद दे देगे। जिसमे पति इनकी शेष मुद्राए भी चुका देगे और कुछ ही दिनो मे मुझे भी छुडा लेगे। अभी इनका भाग्य–सूर्य जो विपत्ति के बादलो मे छिपा है, वह सदा छिपा न रहेगा।

ऐसा विचार कर तारा ने हरिश्चन्द्र से कहा–स्वामी, ये ब्राह्मण पाच सौ मुद्राए देते हैं। यद्यपि ऋण चुकाने के लिए यह मुद्राए पर्याप्त नही हें परन्तु आधा ऋण अवश्य चुक जाएगा। अब आप जेसी आज्ञा दे वेसा करू।

तारा की बात सुनकर विश्वामित्र ने विचारा कि इसको बिकवाकर पाच सौ मुद्राए ले लेना ही ठीक है। जो शेष पाच सौ रहेगी, उनको भी अभी देने के लिए राजा से तकाजा करूगा। अब तो राजा के पास स्त्री भी नही है। जो उसे बेचकर शेष ऋण चुका देगा। इस प्रकार वह कष्ट से घबराकर अपना अपराध स्वीकार कर लेगा, बस! बात खत्म हो जाएगी। इसके सिवाय रानी के बिक जाने से जो अब तक इसे धैर्य देती रहती थी, फिर कोई धेर्य देने वाला भी न रहेगा। परिस्थिति के, स्त्री–वियोग के ओर मेरे ऋण के दु ख से कातर होकर यह अवश्य ही अपना अपराध स्वीकार कर लेगा।

हरिश्चन्द्र तो दु ख के आवेश मे तारा की बात का कुछ भी उत्तर न दे सके, किन्तु इसी बीच विश्वामित्र बोल उठे कि–उससे क्या पूछती हे? पाच सो देता हे तो पाच सौ दिलाओ, जिससे मुझे कुछ तो सन्तोष हो!

विश्वामित्र की इस बात ने हरिश्चन्द्र के दु खित हृदय मे तीर का काम किया। वे मन ही मन कहने लगे–हाय! ऋणी होना भी कितने दु ख की बात है। यदि आज मैं ऋणी न होता तो तारा के इस प्रकार बिकने ओर विश्वामित्र के वाग्बाण सहने की क्या आवश्यकता होती? ससार के वे लोग नितान्त अभागे और दु खी हे जिन पर दूसरे का ऋण हे। लेकिन ऋण उनके लिए दु खदाता हे जो उसे चुकाना चाहते हें ओर अपना सत्यपालन करना चाहते हे। जो दूसरे का ऋण डुबाने वाला हे, उसके लिए तो ऋण का होना ओर न होना दोनो बराबर हें।

विश्वामित्र की बात सुनकर तारा पति से कहने लगी–नाथ! ऋषि को इतनी मुद्राए मिल जाने से कुछ सन्तोष हो जाएगा इसलिए आप मुझे बिकने की आज्ञा दीजिए।

कुछ ही दिन पूर्व जो दानवीर महाराज हरिश्चन्द्र दूसरो को दासत्व से मुक्त करते थे, जो मानव–विक्रेताओ को दड देते थे, उनकी ही इस समय अपनी स्त्री को बिकते देख जो हृदय की दशा हुई होगी, वह अवर्णनीय है।

रानी के बहुत समझाने–बुझाने पर भी राजा कुछ न बोल सके, लेकिन सिर हिलाकर रानी को बिकने की स्वीकृति दे दी। रानी ने ब्राह्मण से कहा–महाराज, लाइये पाच सौ मुदाए ही दीजिए। ब्राह्मण से पाच सौ मुद्राए लेकर राजा ने विश्वामित्र को सौप दी। मुद्राए देकर ब्राह्मण ने जैसे ही तारा से कहा–दासी चलो! वैसे ही हजारो सेविकाओ से सेवित रानी को दूसरे के घर दासी बनकर जाते देख हरिश्चन्द्र को वज्राघात सा दुःख हुआ और मूर्छित होकर गिर पडे। उन्हे यह दुःख असह्य हो उठा कि आज से रानी 'दासी' कही जाएगी। इस समय होने वाले उनके हार्दिक दुःख का केवल अनुमान ही किया जा सकता है।

पति को मूर्छित होकर गिरते देख रानी घबरा उठी और मन मे कहने लगी कि अब तक तो मै इन्हे धैर्य बधाती रहती थी, इनके दुःख को किसी प्रकार कम करती रहती थी, लेकिन अब इनकी क्या दशा होगी? ये तो अभी से इस प्रकार अधीर हो उठे है, अब क्या करू? पति को सात्वना देने के लिए ब्राह्मण से आज्ञा प्राप्त कर रानी ने हरिश्चन्द्र के मुख पर आचल से हवा की और उन्हे उठाकर बैठाया। हरिश्चन्द्र को कुछ सचेत देख रानी कहने लगी–नाथ, यह समय दुःख से मूर्छित होने का नही किन्तु सत्यपालन का है। सूर्यास्त होना ही चाहता है और यदि उससे पहले विश्वामित्र की दी हुई अवधि मे ऋण न चुका तो आप सत्य से पतित हो जाएगे। सत्यपालन के समय मूर्छित होने से काम नही चल सकता, इसके लिए तो हृदय को वज्रसमान दृढ बनाना पडेगा। आप तो मेरे जाने से ही इस प्रकार दुःखी हो रहे है और में भी इस समय आप ही की तरह दुःखित हो जाऊ तो फिर सत्य का पालन कैसे हो सकेगा? नाथ! जिस सत्य के लिये आपने राज–पाट छोडा, भूख–प्यास आदि के दुःख सहते हुए मजदूरी की, विश्वामित्र के मर्मभेदी वचन सुने और मैं दासीपने का काम करने के लिए बिकी, क्या उस सत्य को आप खोना चाहते है? सत्य को जाने देना वीरोचित और क्षत्रियोचित कार्य नही हे। इस समय तो आपको प्रसन्न होना चाहिये कि मुझे जिस ऋण की चिन्ता थी, जिस ऋण के कारण सत्य चले जाने की नौबत आ गई थी, उसमे से आधा तो चुक गया हे। आप किसी प्रकार की चिन्ता या दुःख न कीजिए और न मेरे लिए यह विचारिए कि जो रानी थी वह अब दासी हो गई है। मे तो आज

से नही, सदा से दासी हू। स्त्रिया जन्म से दासी होती हे। जो स्त्री किसी की दासी न होकर स्वतन्त्र रहती हे, वह पतित गिनी जाती हे। इसके सिवाय मान भी लो कि मे दासी बनी हू तो किसी अन्य कारण से नही, किन्तु सत्यपालन के लिए बनी हू। यह तो ब्राह्मण ने मुझे खरीदा हे, लेकिन इस समय चाडाल भी मेरा मूल्य देता तो मे प्रसन्नतापूर्वक उसकी भी दासी बनना स्वीकार कर लेती। अपने सत्य ओर धर्म की रक्षा करते हुए चाहे ब्राह्मण की दासी होऊ या चाडाल की, दोनो बराबर हैं। मुख्य कार्य तो सत्य को न जाने देना हे। आप पुरुष है, क्षत्रिय हें ओर सूर्यवश मे जन्म लिया हे। इतने कष्ट तो आपने सह लिए अब थोडे से कष्ट से अधीर होकर सत्यपालन से वचित रहना आपके लिए शोभा नही देता हे। आप सत्य पर विश्वास ओर धेर्य रखिए ओर प्रसन्नता से मुझे आशीर्वाद देकर विदा कीजिए। मेरे भाग्य मे यदि आपकी सेवा करना लिखा होगा तो पुन मैं अवश्य ही आपके दर्शन करूगी।

रानी के इन शब्दो को सुनकर राजा के शरीर मे बिजली दोड गई। सत्य का स्मरण कर सब दु ख भूल गए और उठ खडे हुए। रानी से कहने लगे–तारा! मेरे सत्य की रक्षा तुमने ही की है। यदि तुम न होती तो मै कभी का सत्यभ्रष्ट हो गया होता। तुम जो कहा करती थी कि आधा ऋण मुझ पर है ओर मै आधा कष्ट बाट लूगी, वह तुमने सत्य कर दिखाया हे। अब शेष ऋण की कोई चिन्ता नही है तुमने ऋण चुकाने का मार्ग मुझे बता दिया हे। अब मे तुम्हे प्रसन्नतापूर्वक विदा करता हू ओर आशीर्वाद देता हू कि जिस सत्य के लिए तुमने इतने कष्ट सहे हैं, वही तुम्हारी रक्षा करे।

तारा–नाथ, आपको धन्य हे। अब आप इस पुत्र को सभालिए। में बिकी हू, यह नही बिका हे।

पति के हाथ पुत्र को सोप ओर प्रणाम कर जेसे ही रानी ने चलने को पेर बढाया कि रोहित जो यह सब देख रहा था, चीख उठा ओर माता से लिपटकर कहने लगा– मा तुम मुझे छोडकर कहा जाती हो? में भी तुम्हारे साथ चलूगा। मुझे छोडकर मत जाओ, मुझे मत छोडो, मे तुम्हारा रोहित हू, तुम्हारा बेटा!

इन शब्दो ने माता के हृदय मे क्या–क्या भाव उत्पन्न किए होगे? यह सभी जानते हैं। तारा क मातृ–हृदय मे भी वही भाव पेदा हुए लेकिन उन्होने धैर्य धारण करत हुए कहा–बेटा मे इन ब्राह्मण महाराज की सेवा करने जाती हू। तुम अपने पिताजी के पास रहकर उनकी सेवा करना।

रोहित—मा, मै पिताजी की सेवा करना नही जानता। मैं तो उन्हे प्रणाम करना जानता हू सो प्रणाम किए लेता हू। मै तो तुम्हारी सेवा करूगा और जब तुम पिताजी की सेवा करना सिखला दोगी, तब उनकी भी सेवा करूगा।

जब तारा ने देखा कि रोहित किसी भी प्रकार पति के पास न रहेगा ओर कदाचित् रह भी गया तो उन्हे इसके पालन—पोषण मे कष्ट होगा तो ब्राह्मण से प्रार्थना कर कहने लगी— महाराज, यह बालक मुझे छोडता नही हे।

ब्राह्मण—मै घर मे अकेला नही हू, किन्तु पुत्र, पुत्र—वधू आदि ओर भी हे। मैने तुम्हे उनसे पूछकर नही खरीदा है, इसलिए इसी बात की चिन्ता है कि वे लोग इस विषय मे मुझे न मालूम क्या कहे। अब यदि इसे और साथ ले लोगी तो इसके हठ करने, रोने आदि मे तुम्हारा बहुत—सा समय जाएगा, जिससे तुम काम नही कर सकोगी। इसके सिवाय मै तुम्हे भी खाना दू और इसे भी, इस प्रकार दो मनुष्यो का भोजन—व्यय क्यो सहन करू?

ब्राह्मण की अन्तिम बात सुनकर राजा मन ही मन कहने लगे— सत्य तू अच्छी कसौटी कर रहा है। जिस बालक के सहारे से सैकडो लोग भोजन करते थे, आज उसी का भोजन भी भार हो रहा है।

ब्राह्मण की बात सुनकर रानी ने कहा— महाराज, यह बालक बडा विनीत है। हठ करना या रोना तो जानता ही नही। आप स्वय ही इसके लक्षणो से जान सकते हैं कि वह होनहार बालक है। इसके लिए मै आपसे पृथक् भोजन न लूगी, आप मेरे लिए जो कुछ देगे, उसी मे से खाकर वह भी आपका कुछ काम करता रहेगा। कृपा करके इसे भी साथ ले चलने की आज्ञा दीजिए।

ब्राह्मण ने देखा कि जब यह इसके लिए पृथक् भोजन भी न लेगी, बल्कि यह लडका भी मेरा काम करेगा तो साथ ले चलने को कहने मे क्या हर्ज हे? ऐसा विचार करके ब्राह्मण ने रोहित को साथ चलने की रानी को आज्ञा दे दी। ब्राह्मण की आज्ञा पाकर रानी पुत्र को लेकर ब्राह्मण के साथ चल दी। राजा खडे—खडे तब तक उनकी ओर देखते रहे जब तक वे आखो से ओझल नही हो गए। लेकिन रानी ने मुडकर इसलिए नही देखा कि मेरे देखने से राजा को अधिक दुख होगा।

लेकिन जाते समय रानी ने मन ही मन यह अवश्य ही कहा कि— हे ससार की स्त्रियो! मेरी दशा से तुम लोग कुछ शिक्षा ग्रहण करो। कुछ दिन

पहले तक रानी कहलाने वाली मैंने पति के वचन की रक्षा के लिए ही राज–सुख त्याग कर कष्ट सहे है ओर दासीपना स्वीकार किया है। इतना ही नही, यदि इससे भी विशेष कष्ट हो तो उन्हे भी सहन करूगी। आज यदि मै राज–सुख के कारण गृहस्थी के कार्यो को न जानती होती या जानकर भी करने मे लज्जा या आलस्य करती तो अपने पति की सहायता कभी नहीं कर पाती। आप भी धन–वैभव के मद मे स्त्रियोचित कार्यो मे कमी लज्जा या आलस्य न करे। अन्यथा जीवन तो कष्टमय होगा ही, लेकिन आप स्वय सत्य का भी पालन नही कर सकेगी इसके सिवाय पति के सत्य की रक्षा के लिए अपने प्राण तक देने मे सकोच न करे। यदि आप इस बात का ध्यान रखेगी तो अपने धर्म का भी पालन करेगी और ससार मे अक्षय कीर्ति भी प्राप्त करेगी।

यद्यपि रानी ने राजा को काफी धैर्य दिलाया था लेकिन रानी के आखो से ओझल होते ही उनका धैर्य छूट गया और रानी के दासी बनने के दु ख से कातर बन मूर्छित होकर गिर पडे। पुत्र का वियोग भी उन्हे असह्य हो उठा।

विश्वामित्र ने राजा की इस स्थिति से लाभ उठाना चाहा। उनका अनुमान था कि इस समय यदि मैं राजा से ऋण का तकाजा करके कुछ कटुवचन कहूगा ओर दूसरी ओर अपराध स्वीकार के लाभ का लोभ दूगा तो सम्भव है कि यह अपना अपराध स्वीकार कर ले। ऐसा विचार कर विश्वामित्र अपने वाग्बाण द्वारा हरिश्चन्द्र के दु खित हृदय को ओर भी छेदने लगे कि–अरे निर्लज्ज! सूर्य तो अस्त होना चाहता है ओर तू इस प्रकार के ढोग दिखला रहा है। यदि स्त्री–पुत्र इतने प्रिय थे, यदि दक्षिणा नही दे सकता था तो फिर तूने किस बल पर हठ की थी? अब या तो मेरी शेष मुद्राए सूर्यास्त होने से पूर्व दे दे या हठ छोडकर अपराध स्वीकार कर ले। अपराध स्वीकार करने पर ये पाच सौ मुद्राए लोटा दूगा ओर शेष बची पाच सौ मुद्राए भी छोड दूगा व तेरा राज्य भी लोटा दूगा।

विश्वामित्र ने ये बाते कही तो थी किसी ओर अभिप्राय से कि राजा सत्य छोडना स्वीकार कर लेगा, लेकिन फल कुछ ओर ही हुआ। विश्वामित्र की इन बातो ने राजा को एक प्रकार की शक्ति प्रदान की। वे रानी की अन्तिम शिक्षा को याद करके खडे हो गए ओर विश्वामित्र से कहने लगे–आप ओर जो चाहे कटु वचन कह ले, लेकिन सत्य छोडने का कदापि न कहे। क्योकि–

परित्यजेच्च त्रैलोक्य राज्य देवेषु वा पुन ।
यद्वाप्यधिकमेतेभ्या न तु सत्य कथचन।।
त्यजेच्च पृथिवी गन्धमापश्च रसमात्मन ।
ज्योतिस्तथा त्यजेद्रूप वायुः स्पर्शगुण त्यजेत्।।
प्रभां समुत्सृजेदर्को धूमकेतुस्तथोष्मता ।
त्यजेच्छब्दं तथाकाश सोम शीताशुता त्यजेत्।।
विक्रमं वृत्रहा जह्यात् धर्म जह्याच्च धर्मराट्।
नन्वह सत्यमत्स्रष्टुं व्यवसेयं कथंचन।।

त्रैलौक्य के राज्य पर लात मारना, स्वर्ग–साम्राज्य का परित्याग करना एव इनसे भी बढकर कोई वस्तु हो तो उसका भी परित्याग करना मुझे स्वीकार है, परन्तु सत्य से विलग होना मुझे कदापि स्वीकार नही हो सकता। पृथ्वी, जल, वायु, ज्योति, सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा ये सब अपने–अपने गुण और प्रकृति को चाहे छोड दे, परन्तु मैं सत्य को किसी भी प्रकार न छोडूगा। चाहे इन्द्र अपने पराक्रम को छोड दे या धर्मराज धर्म का त्याग कर दे, लेकिन मैं सत्य छोडने का प्रयत्न किसी भी प्रकार नही कर सकूगा। इसको आप ध्यान मे रखे।

महाराज! जिस सत्य के लिए मैने राज्य देने मे भी सकोच नही किया जिस सत्य के लिए स्त्री, पुत्र सहित मैंने वन के कष्ट सहे, जिस सत्य के लिए मै मजदूर और रानी मजदूरनी बनी, जिस सत्य के लिए मेरी स्त्री बाजार मे दासी बनकर बिकी, तो क्या अब मैं पाच सौ मुद्राओ के ऋण से डरकर उस सत्य को छोड दूगा? इतने कष्ट तो सह लिए और अब जरा–से कष्ट के लिए क्या मै अपना सत्य छोड सकता हूं? ऋषिजी, आप ठहरिए! मै सूर्यास्त के पहले ही ऋण चुका दूगा।

इस प्रकार विश्वामित्र को उत्तर देकर महाराज हरिश्चन्द्र रानी के छोडे हुए घास को अपने सिर पर रखकर बिकने के लिए भी आवाज देने लगे।

राजा को बिकते देख पुन लोगो के मन मे वैसा ही आश्चर्य पेदा हुआ जेसा रानी के बिकते समय हुआ था। इन लोगो ने रानी से किये गए प्रश्नो की तरह राजा से भी कुल, जाति आदि के बारे मे प्रश्न किए लेकिन राजा ने वेसे ही उत्तर दिए जैसे रानी ने बिकते समय दिए थे कि– मेरी जात–पात निवास–स्थान आदि का क्या पूछना? हा यह अवश्य बतलाए देता हू कि ससार मे पुरुषोचित जितने भी कार्य है मे उन सबको कर सकता हू।

यद्यपि राजा ने सब काम जानना, करना स्वीकार किया था, लेकिन पाच सौ मुद्राए देकर उन्हे खरीदना किसी को भी उचित प्रतीत नही हुआ। सब लोग मूल्य अधिक बता कर मुह बिचकाते हुए चल दिए।

उसी बाजार के एक कोने मे खडा–खडा एक भगी यह सब हाल देख रहा था। वह रानी को बिकते देख चुका था ओर राजा व विश्वामित्र की आपस मे होने वाली बातचीत को सुन चुका था। वह मन ही मन विचारने लगा कि कैसे अच्छे दास–दासी बिक रहे हें, परन्तु ये लोग मेरे यहा चलना क्यो कर स्वीकार करेगे? इसी विचार से वह रानी के बिकते समय भी कुछ नही बोल सका था और इसी विचार से अभी भी चुप खडा था।

लोगो के इस प्रकार चुपचाप बिना मूल्य लगाए चले जाने से राजा को बडी निराशा हुई और सोचने लगे कि क्या आज सूर्यास्त से पहले में ऋण न चुका सकूगा? यदि ऐसा हुआ तो मुझे अपने कलक को धोने के लिए कही भी स्थान नही मिलेगा।

भगी खडा–खडा उन लोगो की मूर्खता को धिक्कार रहा था जो मूल्य अधिक बताकर चले गए थे। वह इस बात का निश्चय नही कर सका कि यह दास मेरे साथ चलेगा या नही? चले या न चले, फिर भी मे तो अपनी ओर से पूछ ही लू। ऐसा निश्चय कर भगी राजा के पास आकर कहने लगा–महाशय, मै भगी हू। मेरे यहा श्मशान की रखवाली का काम हे। यदि आप मेरे यहा चलना स्वीकार करे तो मे आपको खरीद सकता हू।

भगी की बात सुनकर राजा को रानी की जाते समय कही गई बातो का स्मरण हो आया। राजा मन मे कहने लगे कि रानी मुझ से कहती ही थी कि यदि मुझे भगी खरीदता तो मे उसके यहा भी चली जाती। जब वह भगी का दासत्व स्वीकार करने को तेयार थी तो फिर मुझे भगी का दासत्व स्वीकार करने मे क्या हर्ज हे? में तो सत्य के हाथ बिक रहा हू, न कि भगी के हाथ।

इस प्रकार विचार कर राजा ने भगी से कहा कि– मुझे आपका दासत्व स्वीकार करने में कोई आपत्ति नही हे। आप जो आज्ञा देंगे, उसका मैं पालन करूगा। आप मुझे खरीद लीजिए ओर मेरा मूल्य इन ऋषि को चुका दीजिये।

राजा को भगी के हाथ विकने को तेयार देख विश्वामित्र मन ही मन प्रसन्न हो रहे थे कि अब सूर्यास्त मे थोडा समय बाकी हे अत विवश होकर राजा अपना अपराध स्वीकार कर लेगा। लेकिन जब राजा भगी का भी दासत्व करन पर उतारू हो गए तो विश्वामित्र की यह आशा भी मिट्टी मे मिल

गई। अत उन्होने एक बार और पयत्न करना चाहा और राजा से कहने लगे– क्या भगी के हाथ बिकेगा?

राजा–मुझे यह नही देखना है कि किसके हाथ बिक रहा हू, यदि कुछ देखना है तो यह कि मैं आपके ऋण से मुक्त हो रहा हू। इसके सिवाय–

विद्या विनय संपन्ने, ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिता समदर्शिन ।।

जो पण्डित यानी ज्ञानी है, उनकी दृष्टि विद्या और विनय से सम्पन्न ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ते और चाडाल पर एक–सी रहती है। अतएव ब्राह्मण हो या चाडाल सत्य पालन मे मेरे लिए दोनो ही बराबर है।

विश्वामित्र–देख हरिश्चन्द, अभी भी कुछ नही बिगडा है। अब भी समझजा और अपनी हठ छोडकर अपनाध स्वीकार कर ले तो इन सब विपत्तियो से भी छुटकारा पा जाएगा और तेरा राज्य भी तुझे वापस मिल जाएगा।

राजा–महाराज, कुछ बिगडने–न–बिगडने के लिए तो क्षमा कीजिए। आप जेसो की कृपा से ही सत्यपालन का यह स्वर्ण अवसर मुझे प्राप्त हुआ हे और ऐसे अवसर को खोने की मूर्खता कभी नही हो सकेगी।

राजा के उत्तर को सुनकर विश्वामित्र क्रोध करते हुए बोले–अच्छा, ला मुदाए अभी नही, लेकिन आगे चलकर मालूम पडेगा कि हठ का परिणाम कितना भयकर होता है।

विश्वामित्र ओर हरिश्चन्द की बातचीत से भगी समझ गया कि यह दास कोई कुलीन पुरुष है, लेकिन किसी कारण विशेष से अपने आपको बेच रहा हे। विश्वामित्र के 'ला' कहते ही भगी आवेश मे आ गया ओर पाच सौ स्वर्ण मुदाए देकर राजा से पूछा–क्या और दू? यदि और भी देना हो तो अधिक भी देने को तेयार हू।

हरिश्चन्द्र ने कहा–बस इतनी ही।

विश्वामित्र जब मुद्राए ले चुके तब राजा ने हाथ जोडकर कहा–महाराज, अब तो मै आपके ऋण से मुक्त हो गया हू, अब कृपा करके आशीर्वाद दीजिए। मै आपसे यही आशीर्वाद चाहता हू कि अवध की प्रजा को कष्ट न हो।

विश्वामित्र राज्य लेने के समय से ही हरिश्चन्द्र पर ऊपरी तोर पर तो क्रोध पगट कर रहे थे लेकिन अन्तरग मे प्रशसा करते हुए धन्यवाद देते थे। हरिश्चन्द्र की इस बात ने तो उनके हृदय को और भी नम्र बना दिया।

वे मन मे कहने लगे–हरिश्चन्द्र तुझे धन्य हे। तूने भगी का दासत्व स्वीकार किया, लेकिन सत्य से नही डिगा। तुझे जितना भी धन्यवाद दिया जाए, उतना ही कम हें।

विश्वामित्र का ऋण चुक जाने पर राजा की प्रसन्नता का पारावार न रहा। उन्होने परमात्मा का स्मरण करते हुए कहा कि आज भी में तेरे प्रभाव से सत्य का पालन करने मे समर्थ हो सका।

हरिश्चन्द्र के ऋणमुक्त होते ही सूर्य अस्त हो गया। सध्या की लालिमा चारो ओर इस तरह फैल गई मानो राजा हरिश्चन्द्र की दानवीरता दिग्दिगन्त तक व्याप्त हो गई हो। इसी समय पश्चात्ताप करते हुए विश्वामित्र एक ओर चले गए ओर प्रसन्न मन से महाराज हरिश्चन्द्र अपने मालिक भगी के साथ उसके घर की ओर चल दिए।

20. ब्राह्मण के घर में तारा

ससार मे जितने भी अच्छे कार्य है, चाहे वे कष्ट साध्य हो, लेकिन उनका फल अच्छा ही होता है, शुभ कार्य के करने मे होने वाले कष्ट, कष्ट नही वरन् सफल होने की तपस्या है। यदि तप करने, दान देने, सत्य–पालने आदि मे कष्टो का भय किया जाए तो इन कार्यो को करने वाला, कभी भी नही करेगा। यदि कोई कहे कि कष्ट पाप से होते है, धर्म से नही अत जिन कार्यो से कष्ट हो वे पाप हे, तो समझना चाहिए कि ऐसा कहने वाले लोग नितात अनभिज्ञ हैं। यदि सत्कार्य बिना कष्ट के ही सफल होते हो तो फिर ऐसा कोन मूर्ख होगा जो सरलता से होने वाले सत्कार्यो को छोडकर कष्ट सहने के लिए पाप करेगा? कौन ऐसा होगा जो सुख के कारण अच्छे कार्यो को न करके बुरे कार्यो को करेगा? इसके सिवाय यदि कष्ट होने से सत्कार्य पाप कहे जाएगे तो उन कार्यो को धर्म मानना पडेगा, जिनमे कष्ट नही अपितु सुख होता हे। ससार मे बुरे कार्य भी सुख की आशा से किए जाते हें ओर लोग उनमे भी सुख मानते हे। जेसे व्यभिचार करना, चोरी करना आदि दुष्कार्यो को सभी बुरा कहते हैं लेकिन उनको करने वाले उनमे भी सुख मानते हे। ससार मे प्रत्येक प्राणी जो कुछ भी करता हे, सुख के लिए ही करता है। यह बात दूसरी हे कि वह भ्रमवश दु ख के कारण को सुख ओर सुख के कारण को दु ख मानता हो। जेसे–योगी योग मे सुख मानते है ओर भोगी भोग मे। जिन कार्यो को करने वाला अपने आपको सुखी मानता हो वे काम न तो नितात अच्छे ही हो सकते हे और न नितात बुरे ही। इसी प्रकार जिन कार्यो को करते समय कर्त्ता को दु क्ष होता है, वे काम भी न तो नितात बुरे ही हो सकते हे ओर न नितात अच्छे ही। कार्य ही अच्छाई या बुराई उसके फल पर निर्भर हे। जेसे दुराचार करते समय उसका कर्ता उसमे सुख मानता हे लेकिन उसका फल इस लोक मे ही शरीर की दुर्बलता, हृदय की मलीनता आदि रूप

मे प्राप्त होता है और परलोक मे भी वह दण्ड पाता हे। इसी प्रकार योग–साधना मे साधना के समय तो कष्ट होता है लेकिन उसका फल इस लोक और परलोक दोनो ही जगह लाभप्रद है। तात्पर्य यह हे कि कार्य के करते समय होने वाले सुख–दु ख से यह नही कहा जा सकता हे कि यह कार्य धर्म है या पाप, किन्तु उसके फल दु ख–सुख पर से इस बात का निर्णय हो सकता है।

हरिश्चन्द्र ओर तारा ने जो कुछ किया वह सुख की अभिलाषा से किया। यद्यपि इस समय उनको कष्ट अवश्य हो रहा था लेकिन अन्तिम फल सुख ही था। ये कष्ट तो सत्य–पालन मे काटे सरीखे थे जो गुलाब का फूल प्राप्त करते समय हाथो मे लगा करते हें। यह किसी प्रकार उचित नही माना जा सकता है कि कोई मनुष्य काटे लगने के कारण ही सुगन्ध और कोमलता गुण वाले गुलाब के फूल को दुर्गन्ध–युक्त और कठोर कहे। इसी प्रकार कष्ट होने के कारण परिणाम मे अच्छे फल देने वाले सत्य–दान ओर पति–सेवा को भी पाप कैसे कहा जा सकता हे? यदि पाप भी हो तो हरिश्चन्द्र को पुन राज्यप्राप्ति ओर इन्द्रादि देवो के प्रार्थना व प्रशसा करने आदि के सुख किस धर्म के फल कहे जाएगे? इससे स्पष्ट हे कि सत्कार्य चाहे कष्ट –साध्य हो लेकिन उनका फल सुखप्रद हे, अत सत्कार्य धर्म हे और दुष्कार्यों के करने मे चाहे सुख मिलता हो लेकिन उनका फल दु खप्रद हे अत वे पाप हे।

हरिश्चन्द्र ओर तारा इसी सत्य रूपी गुलाब के लिए ही दु ख रूपी काटो को सह रहे थे। इसी के लिए उन्होने सहर्ष राज्य त्याग दिया ओर मजदूरी करने मे भी उन्हे कुछ लज्जा नही हुई। उनका ध्येय तो सत्य पालन था ओर उसमे होने वाले प्रत्येक कष्ट को सहने के लिए वे तेयार थे।

रोहित को लिये हुए तारा ब्राह्मण के घर आई। ब्राह्मण ने अपनी पत्नी, पुत्रवधू आदि को तारा को बतलाते हुए कहा कि–मे यह दासी लाया हू।

तारा के सोन्दर्य को देखकर ब्राह्मण के घर की स्त्रिया आश्चर्य मे पड गई कि जिसकी आकृति ही वडप्पन की सूचक हे यह दासी केसे हुई? इसके बारे म उन्होने ब्राह्मण से पूछा भी तो उसने उत्तर दिया कि–मे स्वय भी इस वात को नही जानता। तुम्हारे जेसे विचार मेरे मन मे भी उठे थे ओर मेंने इससे पूछा भी था लकिन इससे अपना परिचय नही दिया। परिचय दे या न दे लेकिन आकृति से यह अपने घर के उपयुक्त जान पडी, अत मे इसे

ले आया हू। इसके लक्षणो से जान पडता है कि यह है तो गुणवती। इससे गृहकार्य कराकर देखना कि यह विश्वास करने योग्य है या नही।

ब्राह्मण ने तारा को रहने के लिए एक छोटी–सी कोठरी और बिछाने के लिए एक चटाई दे दी। घर पहुचते–चहुचते रात हो चुकी थी, इसलिए उस रात तो तारा से कुछ काम नही लिया गया और विश्राम करने की आज्ञा दे दी।

तारा ने कोठरी को झाड–बुहार कर चटाई पर रोहित को सुला दिया और स्वय भी पति–वियोग और उनके कष्टो की चिन्ता करते हुए पड रही। वे विचार करने लगी कि धर्मशाला मे भी ऐसी कोठरी थी। वहा पर तो जमीन पर ही सोती थी, लेकिन यहा चटाई तो है। रोहित भी मेरे पास है। सूर्य भी वही है, चन्द भी वही है, ग्रहनक्षत्र, तारे, आकाश, पृथ्वी आदि भी वही हैं और मै भी वही हू, परन्तु बिना पति के ये सब अच्छे नही लगते हैं। मैं तो अपने ऋण से मुक्त होकर चली आई लेकिन वहा स्वामी पर न मालूम क्या–कैसी बीत रही होगी।

इस प्रकार सोचते–विचारते रानी चिन्ता मे डूब गई। लेकिन थोडी देर बाद उन्हे ध्यान आया कि पति को तो मै शिक्षा देती थी और अब स्वय ही घबराने लगी हूँ। जिस सत्य का प्रभाव बतलाकर स्वामी को धैर्य बँधाती थी वही सत्य अब भी उनकी सहायता करेगा। इसके सिवाय इस समय मेरे चिन्ता करने से कुछ भी लाभ होने वाला नही है। चिन्ता करने से शरीर ओा बलक्षीण होगा एव खरीदार को मैने जिन कार्यो के करने का विश्वास दिलाया हे उनको भी नही कर सकूगी। ऐसा होने पर मैं उस सत्य से भ्रष्ट हो जाऊगी जिसके लिए इतने कष्ट सहे है।

इस प्रकार हृदय मे धैर्य धारण कर तारा सो गई ओर नियमानुसार थोडी–सी नीद लेकर सूर्योदय से पहले ही उठ बैठी एव परमात्मा का नाम–स्मरण, प्रार्थना आदि करके ब्राह्मण के घर पहुची। उस समय वहा सभी लोग सो रहे थे। तारा के आवाज देने पर घर का दरवाजा खुला। तारा को सामने खडी देखकर वे लोग आश्चर्य से कहने लगे कि–दासी तू अभी से आ गई। अभी तो सवेरा भी नही हुआ। तू इतनी जल्दी उठती है?

तारा–मै दासी हू ओर मेरा कर्तव्य हे कि मालिक के उठने से पहले उन कार्यो को कर डालू जो पहले ही हो जाना चाहिए। आपकी वराबरी करके यदि मे भी देर तक सोती रहू तो काम केसे चले।

सबसे पहले तारा ने घर, पशुशाला आदि को झाडकर साफ कर डाला। पश्चात् रात का शेष पानी छानकर पानी लाई और बर्तन माजकर भोजन बनाने लगी। भोजन कर घर के सब लोग बहुत प्रसन्न हुए ओर कहने लगे कि– यह दासी क्या, घर मे एक लक्ष्मी आई हे। घर के सब काम इसने किस चतुराई से किये हे और भोजन भी ऐसा अच्छा बनाया हे कि आज जो स्वाद आया वह पहले कभी नही आया था।

रसोई आदि के कार्यो से निवृत्त होकर तथा स्वय भी खा–पीकर तारा घर की स्त्रियो को शिक्षाप्रद बाते, गीत आदि सुनाने लगी। जिन्हे सुनकर वे स्त्रिया ओर भी प्रसन्न हुई एव उसकी प्रशसा करने लगी।

तारा घर–गृहस्थी के सब कार्य बडी दक्षता और स्वच्छता से करती। गाय आदि से भी वे ऐसा प्रेम और उनकी ऐसी व्यवस्था करती कि वे दूध भी अधिक देने लगी। इस प्रकार अपनी दक्षमा से तारा ने घर के सब लोगो की सहानुभूति प्राप्त कर ली।

ब्राह्मण का युवा पुत्र तारा के सौन्दर्य और चतुराई पर मुग्ध हो गया। वह विचारने लगा कि यह दासी बिना शृगार के ही इतनी सुन्दर मालूम पडती हे तो शृगार करने पर न मालूम कितनी सुन्दर लगेगी। अत यह स्त्री–रत्न तो प्राप्त होना चाहिये, इसी मे बुद्धिमानी है।

ब्राह्मण–पुत्र के हृदय मे तारा को अपनी प्रेयसी बनाने की अभिलाषा दिनो–दिन बढने लगी और किसी न किसी बहाने तारा से बात करने के मोके की तलाश मे रहने लगा। तारा उसकी हरकते ताड गयी ओर उससे बचकर रहने लगी। ब्राह्मण पुत्र ने जब देखा कि यह दासी मेरी ओर देखती ही नही हे तो वह प्रलोभनो द्वारा तारा को अपने वश मे करने के प्रपच रचने लगा।

ससार मे जो मनुष्य निर्लोभी हें, उनको कोई अपने धर्म ओर कर्तव्य से विमुख नही कर सकता हे। लोभ के कारण ही लोग धर्म से पतित हो जाते हे, लेकिन जिस तारा ने धर्म के लिए राज–सुख ओर पति–सुख का भी लोभ नही किया, वे इन थोडे से प्रलोभनो मे केसे फस सकती थी? लोभ को तो उन्होने पहले ही लीज लिया था ओर इसी से वे अपने पति के सत्य की रक्षा ओर अपने कर्तव्य के पालन करने मे समर्थ हो सकी थी।

एक दिन तारा को अच्छी–सी साडी देते हुए ब्राह्मण पुत्र कहने लगा कि– तुम इस साडी को पहना करो ये मोटे कपडे तुम्हारे शरीर पर शोभा नहीं देते। तारा तो पहले ही उस धूर्त–लम्पट की दृष्टि को ताड चुकी थी अत साडी को न छूते हुए उत्तर दिया कि–आप यह साडी मालकिन का दीजिए।

दासी को महीन और अच्छे कपडे पहनना उचित नही है। इनसे आलस्य पैदा होता है और आलस्य से मालिक के कार्य मे बाधा पडती है। हमे तो मोटा कपडा पहनना ही उचित है।

तारा के उत्तर से ब्राह्मण पुत्र को कुछ निराशा हुई और विचारने लगा कि मैने तो सोचा था कि स्त्री–स्वभावानुसार साडी को देखते ही यह दासी ललचा उठेगी लेकिन इसने तो साडी को ही ठुकरा दिया है।

ब्राह्मण पुत्र निराश होकर भी अभिलाषा–पूर्ति के उद्योग मे लगा रहा। वह कभी–कभी तारा या रोहित को अच्छे–अच्छे पकवान और रुपये–पैसे भी देने लगता, परन्तु उन्हे न तो तारा लेती और न ही रोहित। तारा तो कह देती कि हमे मोटा अनाज खाना ही उचित है, पकवान तो आप लोग खाइये और जब आप मुझे भोजन और कपडे देते ही है तो रुपये–पेसे लेने की क्या आवश्यकता है? रोहित भी ऐसा ही उत्तर दे देता कि–मेरा भोजन माता के भोजन से अलग नही है, तो रुपये–पैसे कैसे ले सकता हू।

प्रलोभनो द्वारा तारा को अपने वश मे करने के उपाय मे भी जब ब्राह्मण–पुत्र असफल रहा तो उसने धर्म का सहारा लिया। वह एकात स्थान मे पुस्तके खोलकर बैठ जाता और तारा से कहता कि आओ दासी, तुम्हे ध र्म सुनाऊ।

दुष्टजन धर्म को भी दुराचार की ढाल बनाते हैं। ऐसी अनेक घटनाए आज भी सुनने मे आती है जिनमे धर्म के नाम पर, धर्म की ओट मे दुराचार किया गया हो। भोले–भाले लोग धर्म–वेशधारी लोगो पर विश्वास करके उनके धोखे मे आ जाते है, लेकिन केवल वेश पर विश्वास कर लेना बुद्धिमानी नही है। महाकवि तुलसीदास ने कहा है–

तुलसी देखि सुवेश, भूलहि मूढ न चतुर नर।
सुन्दर केका पेख, वचन अमियसम अशन अहि।

केवल अच्छे वेश को देखकर मूढ लोग धोखा खाते हे, चतुर नही। अच्छे वेशधारियो मे भी क्या दुर्गुण हो सकते है इसके लिए मोर को देखो। देखने मे मोर कैसा सुन्दर होता हे, उसकी वाणी भी अमृत के समान होती है, किन्तु यह सब होते हुए भी वह ऐसे कठोर हृदय वाला है कि जीवित सर्प को भी निगल जाता हे। साराश यह कि धर्मवेशधारी का भी बिना परीक्षा किए यकायक अविचारपूर्वक विश्वास कर लेने से धोखा होने की सभावना रहती हे। कभी–कभी ऐसे धोखे मे पडकर मनुष्य धर्मभ्रष्ट हो जाता है।

यद्यपि ब्राह्मण पुत्र तारा को धर्म–कथा सुनने के लिए बुलाता लेकिन वे कह देती कि धर्म सुनने की आवश्यकता उसको है जो धर्म न

जानता हो। मेरा धर्म तो आप लोगो की सेवा करना है ओर उसे में समझती हू और करती हू। मुझे धर्म सुनने की आवश्यकता नही हे ओर न मेरे पास इतना समय ही है कि मै आपका धर्म सुन सकू।

जब इस उपाय से भी ब्राह्मण पुत्र तारा को अपनी ओर आकर्षित न कर सका तो वह और दूसरे उपाय सोचने लगा। पुत्र के होते हुए वह किसी भी बात की अपेक्षा नही करती। इस दासी की भी यही दशा हे। इसका भी प्रेम पुत्र पर ही है। मेरे से प्रेम होने देने मे यह पुत्र ही बाधक है। किसी प्रकार यह दूर हो जाए तो मैं अपने कार्य मे सफल हो सकूगा।

अपने मनोरथ मे बाधक समझकर ब्राह्मण पुत्र रोहित को कष्ट देने लगा। वह कभी तो रोहित को ऐसे–ऐसे काम करने के लिए कहता कि जिन्हे कर सकना उसकी शक्ति से बाहर की बात होती थी। कभी किसी बहाने उसे इधर–उधर भटकाता तो कभी धमकाता और कभी मारता। रोहित तेजस्वी होनहार बालक था ओर अब परिस्थिति को समझने लगा था। अत वह अत्याचारो को चुपचाप सह लेता, लेकिन यह सब देखकर तारा को दु ख होता था।

एक दिन तारा ने ब्राह्मण पुत्र से नम्रतापूर्वक प्रार्थना की कि रोहित अभी बालक है। आप उससे जो काम करने को कहते हैं, उनके करने मे वह असमर्थ है। इसके सिवाय आपके यहा काम करने मै आई हू, यह बालक मेरे ही भोजन मे से भोजन करता हे और इसके लिए आपसे अलग भोजन नही लेती हू। ऐसी अवस्था मे आपको इसे कष्ट देना उचित नही हे। यह बात दूसरी है कि रोहित अपनी इच्छा से कोई काम करे लेकिन आपका इस प्रकार उस पर अत्याचार करना न्यायोचित नही कहला सकता हे। कृपया आप इस बालक पर दया रखिए ओर कष्ट न दीजिए।

तारा की यह प्रार्थना सुनकर ब्राह्मण ने कहा– जब मे तुम्हे अच्छा खाना, कपडा आदि देता हू, धर्म–कथा सुनने के लिए बुलाता हू, तब तो तुम अकडी–अकडी फिरती हो ओर अब ऐसा कहती हो।

तारा–आप मुझे जो कुछ देना चाहते थे, वह सब आपकी कृपा थी, लेकिन मैने नही लिया तो इसमे मेरी ही हानि हुई, आपको क्या हानि हुई, जो आप इस तरह क्रुद्ध हुए?

तारा की इस प्रकार की बाते सुनकर ब्राह्मण ओर अधिक क्रुद्ध हो उठा। उसने घर मे कह दिया कि दासी को दिया जाने वाला भोजन मुझे विना वताये न दिया जाय। यह कहती हे कि ज्यादा खाने से आलस्य पेदा होता

21. भंगी के दास राजा

ससार मे सेवा के बराबर कठिन कोई कार्य नही हे। जो मनुष्य अपनी आत्मा का अच्छी तरह से दमन कर सकता हे, मालिक की इच्छा के अनुसार अपने स्वभाव को बना सकता है, वही सेवाधर्म का पालन कर सकता है। सेवाधर्म इतना कठिन है कि यदि सेवक चुप रहता हे तो मालिक उसे गूगा, बोलता है तो वाचाल, पास रहता है तो ढीठ, दूर रहता हे तो मूर्ख, सह लेता है तो डरपोक और नही सहता है तो नीच कुल का कहता हे। मतलब यह हे कि सेवाधर्म बडा ही कठिन है, जो योगियो द्वारा भी अगम्य माना जाता हे।

सेवा के नाम से घबराकर एक कवि कहते है–

चाहे कुटी अति घने वन मे बनावे,
चाहे बिना लौन कुत्सित अन्न खावे।
चाहे कभी नर नये पट भी न पावे,
सेवा प्रभो पर न तू पर की कहावे।।

अयोध्या जैसे विशाल राज्य के स्वामी महाराज हरिश्चन्द्र ओर महारानी तारा इसी कठोर सेवाधर्म का पालन कर रहे थे। उनके हृदय मे क्या–क्या विचार होते होगे, यह तो नही कहा जा सकता हे। परन्तु इस स्थिति मे भी जिन कष्टो का अनुमान किया जा सकता हे वे इनको उस रूप मे अनुभव नही हो रहे थे। वे तो यही समझते थे कि ये कष्ट सत्य के चले जाने के कष्टो से कही लाख दर्जे अच्छे हे। अब तक हमारा सत्य बना हुआ हे, तब तक हमे कोई कष्ट नही है। जिस प्रकार एक तपस्वी को तपस्या करते देख अन्य लोग तो समझते हैं कि इन्हे कष्ट हो रहा हे, लेकिन तपस्वी से पूछने पर वह यही कहेगा कि मुझे कोई कष्ट नही हे, में तो तपस्या कर रहा हू। ठीक यही बात राजा ओर रानी के विषय मे भी थी। देखने–सुनने वाले तो यही समझते थे कि इन्हे कष्ट हे, परन्तु उनको कोई कष्ट नही था।

[illegible] दो–चार धर्म [illegible]

[illegible] लेकिन काम देने के बजाय [illegible] एक दिन [illegible] पर भगिन ने क्रोधावश [illegible] की आज्ञा दी। राजा बड़े प्रसन्न हुए कि [illegible] काम तो बतलाया। वे घड़ा उठाकर पानी भरने [illegible] और [illegible] पर पहुँचे जहाँ रानी भी पानी भरने आई थी।

पनघट पर पति–पत्नी ने एक दूसरे को देखा ओर हर्षित हुए। साथ ही यह विचार कर विषाद भी हुआ कि वे क्या थे और क्या हो गए हे? लेकिन उन दोनो ने एक दूसरे के दर्शन के आनन्द से उस विषाद को दबा दिया। सच्चे प्रेमी कभी–न–कभी किसी–न–किसी अवस्था मे मिल ही जाते हैं। परमात्मपद अवश्य ही मिलता है। इसी प्रकार जिन राजा ओर रानी को एक दूसरे की खबर भी न थी कि वे कहा है तथा इस बात की भी आशा नही थी कि कभी एक दूसरे को देख सकेगे, वे आज अनायास ही पनघट पर मिल गये थे।

पति–पत्नी ने एक दूसरे के कुशल समाचार पूछे। विश्वामित्र के शेष ऋण चुकाये जाने के बारे मे रानी के पूछने पर राजा ने बताया कि–तुम्हारे बतलाये हुए मार्ग पर चलकर मैंने शेष ऋण भी चुका दिया है। सचमुच तुमने भविष्य जानकर ही कहा था कि सत्य के लिए में भगी के यहा भी बिक सकती हू। तुम्हारे निर्देशानुसार मैने भगी के यहा बिककर ऋण चुकाया हे।

दोनो के हृदय मे अपार आनन्द था ओर वे दोनो इसका कारण स्वामी की आज्ञा पालन मानकर अपने–अपने खरीददार की प्रशसा कर रहे थे कि यदि मालिक मुझे पानी भरने के लिये न भेजते तो यह आनन्द कहा से प्राप्त होता और एक दूसरे के बारे मे उत्पन्न चिन्ताये केसे मिटती?

हर्ष विषाद–मग्न दम्पति कुछ देर तक तो इसी प्रकार बातचीत करते रहे। पश्चात् तारा ने कहा–नाथ, यद्यपि आपसे दूर होने की इचछा तो नही है लेकिन जिस प्रकार आप स्वतन्त्र नही हे, उसी प्रकार मे भी स्वतन्त्र नही हू। समय काफी हो चुका हे, अत अब अधिक देर करना मालिक को धोखा देना होगा।

राजा ने भी रानी की बात का समर्थन किया ओर दोनो अपने–अपने घडे भरने लगे। ब्राह्मण का घडा लेकर आने से पनघट पर उपस्थित स्त्रियो ने रानी के घडे तो उठवा दिये किन्तु राजा भगी का घडा लेकर आए थे इसलिए उनको किसी ने नही उठवाया।

राजा के पानी भरने का यह पहला ही दिन था अत वे घडा उठाने मे अभ्यस्त न थे। उन्होने रानी से घडा उठवा देने के लिए कहा, परन्तु रानी ने उत्तर दिया–नाथ मुझे आप से किसी प्रकार की घृणा नही हे, लेकिन मे ब्राह्मण के घडे लेकर आई हू ओर आप भगी का, इसलिए बिना स्वामी की आज्ञा के मे आपका घडा उठवाने मे असमर्थ हू। आप घडा लेकर जल मे चले

जाइये। जल मे वस्तु भारी नही पडती और वहा झुककर इसे अपने कधे पर रख लीजिये।

रानी की इस तरकीब को सुनकर राजा बहुत ही प्रसन्न हुए और कहने लगे—यदि तुम आज घडा उठवा भी देती तो मेरे लिए भविष्य का कष्ट फिर भी बाकी रह जाता। परन्तु तुमने यह युक्ति बताकर आगे के लिये मेरा मार्ग साफ कर दिया और अपना धर्म भी बचा लिया।

दोनो अपने—अपने घडे उठाकर चल दिये। आज राजा मालकिन द्वारा काम मिलने और विपत्ति के समय बहुत दिनो से बिछडी हुई पत्नी के दर्शन होने से बडे प्रसन्न थे। लेकिन अभी भी सत्य की कसौटी होना शेष थी, इसलिए उनकी यह प्रसन्नता अधिक समय तक न टिक सकी। जिस दुष्ट देव ने सत्य से विचलित करने के लिये राजा को इतने कष्ट मे डाला था, उसने मार्ग मे घडा लेकर जाते हुये राजा को एक ऐसी ठोकर लगने की व्यवस्था कर दी थी कि जिसके लगते ही राजा गिर पडे और घडा फूट गया। घडे के फूटते ही राजा की सब प्रसन्नता काफूर हो गई। वे विचारने लगे कि अनेक बार प्रार्थना करने पर तो मालकिन ने आज पहली मर्तबा काम बताया, लेकिन वह भी बगड गया। अब न मालूम वे क्या कहेगी। जो होना था, सो हो गया। परन्तु जान—बूझकर तो फोडा नही, फिर भी मालकिन जो कहेगी, उसे सुनना ही पडेगा।

राजा को खाली हाथ लौटते देख भगिन क्रुद्ध होकर कहने लगी कि—इतनी देर कहा लगाई और घडा कहा है?

राजा से घडे फूटने की घटना को सुनते ही भगिन की क्रोधाग्नि भडक उठी। उसने चिल्लाते हुए कर्कश स्वर मे राजा को अनेक दुर्वचन सुनाये। लेकिन राजा बडी शाति से उन सबको सुनते हुए सहते रहे।

धर्म—पालन के समय यदि मनुष्य मानापमान का विचार करे तो वह धर्म के पालन मे समर्थ नही हो सकता है। जो कष्ट सहने मे धीर, बात सुनने मे गभीर हो तथा जिसे मानापमान का विचार न हो, वही मनुष्य धर्म का पूर्णतया पालन कर सकता हे। इस प्रकार हरिश्चन्द्र भी यदि सत्यपालन के लिए मानापमान का विचार करते और आई हुई विपत्तियो को न सहते तो कभी के सत्य भ्रष्ट हो चुके होते। लेकिन धैर्यवान पुरुष न तो सुख को सुख ही समझते हें और न दु ख को दु ख ही। वे प्रत्येक दशा मे समभाव रखते हें। कहा भी है—

क्वचिद् भूमौशैया क्वचिदपि च पर्यंक शयनं,
क्वचिच्छाकाहार क्वचिदपि च शाल्योदन रुचि।
क्वचिद् कथाधारी क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरो,
मनस्वी कार्यार्थो न गणयति दु ख न च सुखम्।।

कभी भूमि पर ही पडे रहना तो कभी सुन्दर पलग पर सोना, कभी सागपत्ती खाकर गुजर करना तो कभी सुरुचि–पूर्ण दालभात का भोजन मिलना, कभी फटी हुई गुदडी पहनने को मिलना तो कभी दिव्य सुन्दर वस्त्रो को धारण करना आदि सभी दशाओ मे मनस्वी कार्यार्थी पुरुष सुख या दु ख नही मानते है। अर्थात् वे प्रत्येक दशा मे समभाव रखते है।

इसी प्रकार राजा को भी मानापमान, सुख–दु ख, वियोग–मिलन आदि का ध्यान नही था। वे तो यही विचार कर रहे थे कि चाहे जितनी गालिया सुननी पडे, अपमानित होना पडे ओर चाहे जितने कष्ट सहन पडे, लेकिन मुझसे सत्य न छूटे। इसी विचार से वे भगिन के कटु शब्दो को सहते हुए भी उसके प्रति कृतज्ञता प्रगट करते रहे कि मालकिन की कृपा से ही आज मुझे रानी के दर्शन हुए हे।

जिस समय भगिन राजा को दुर्वचन कह रही थी कि उसी समय भगी भी बाहर से आ गया। राजा के प्रति अपनी पत्नी का ऐसा दुर्व्यवहार उसे असह्य हो उठा। वह डडा लेकर भगिन को मारने के लिए दोडा ओर कहने लगा कि–मैंने तुझे कितना समझाया, लेकिन तू फिर भी नही समझी अब तू मेरे घर से ही निकल जा।

मालिक को क्रुद्ध देखकर राजा दोनो के बीच मे खडे होकर कहने लगे–आप इन्हे कुछ न कहिये। मे आपसे काम मागा करता था लेकिन आपने आज तक मुझे कभी काम नही बताया। लेकिन इन्होने आज काम बतलाया भी, सो भी मुझसे पूरा न हो सका। अब यदि ये मुझ पर क्रुद्ध हो रही हे तो इसमे इनका क्या दोष? यदि मे घडा फोडकर न आया होता तो ये क्रुद्ध ही क्यो होती? यदि ये कुछ कहती हें तो अनुचित ही क्या हे? आप मुझ पर दया करिए ओर मेरी प्रार्थना स्वीकार करके इन्हें कुछ न कहिए।

राजा की बात सुनकर भगी ओर भगिन दोनो आश्चर्यचकित रह गये। भगिन विचारने लगी कि मेने तो इन्हे इतनी गालिया दी इतने दुर्वचन

कहे और फिर भी ये मेरी पशसा ही कर रहे है। भगी सोचने लगा कि ये कैसे विचित्र मनुष्य है कि जो अपने को गाली देने वाली का भी पक्ष कर रहे है।

राजा का कहना मानकर भगी ने अपने विचार बदल दिए और राजा की प्रशसा करते हुए बोला–महाराज, यह दुष्टा आपको सदा दुर्वचन कहती रहती हे और इधर आप भी सदैव काम मागा करते है। अत आप श्मशान भूमि पर चले जाइए और रखवाली करते रहिए। वहा मृतक का अग्नि–सस्कार करने के लिए आने वालो से सस्कार करने से पहले लकडी आदि दाह–सामग्री के मूल्य–स्वरूप एक टका लेते रहिए। ऐसा करने से आपको काम भी मिल जाएगा और इस कर्कशा के पजे से भी बचे रहेगे।

मालिक के आदेशानुसार राजा श्मशान–भूमि मे रह कर मालिक की आज्ञा का पालन करने लगे।

22. स्वावलम्बी रोहित

राजा हरिश्चन्द्र और रानी तारा यद्यपि इस समय परतत्र हे लेकिन उनकी भावना स्वतत्र ही हे। रोहित तो पहले भी स्वतन्त्र था ओर अब भी स्वतन्त्र है, अत उसने स्वतन्त्रता की उपासना छोडना स्वीकार न की।

प्रत्येक प्राणी मे स्वतन्त्रता की भावना एक प्रकृतिदत्त श्रेष्ठ गुण हे। इसी कारण स्वतन्त्रता का अधिकार सबको प्राप्त हे। यद्यपि स्वतन्त्रता अच्छी ओर परतन्त्रता बुरी हे, लेकिन परतन्त्रता के सस्कारो के कारण यह अच्छाई–बुराई नही दीखती ओर ऐसे जीव परतन्त्रता को ही अच्छी समझने लगते है। इसके विरुद्ध जो मनुष्य स्वतत्रता का तनिक भी आभास पा जाता हे उसके लिए परतन्त्रता नरक के समान दु खदायी हो जाती हे।

यद्यपि रोहित अपनी माता के भोजन मे से भोजन करता था किन्तु विचारता रहता था कि मेरे लिए ही माता भूखी रहती हें। ऐसी दशा मे मुझे उसके भोजन मे से भोजन करना उचित नही हे। अधिक नही तो कम से कम मुझे अपने उदर–पोषण के लायक भोजन तो उपार्जन कर ही लेना चाहिए।

ऐसा विचार कर रोहित ने अपनी मा तारा से कहा–अव मे अपने लिए स्वय भोजन उपार्जन करूगा। यह मुझे स्वीकार नही हे कि आपके भोजन मे से खाकर काम भी करू ओर अत्याचार भी सहन करता रहू। कल से में अपने लिए आप भोजन ले आया करूगा ओर फिर थोडे दिनो बाद आपको भी इस कष्ट से छुडा लूगा तथा पिताजी को भी खाज निकालूगा।

रोहित की वात सुनकर तारा गद्गद् हो उठी। ऐसी माता कोन न होगी जो अपने पुत्र के स्वतन्त्र विचार सुनकर प्रसन्न न हो? उन्होने प्रसन्नता प्रगट करते हुए रोहित से कहा–बेटा तुम्हारा विचार हे तो उत्तम लकिन अभी तुम बालक हो। बडे हो जान पर अवश्य ही ऐसा करना।

रोहि—नही मा, अब मै आपका लाया हुआ भोजन भी नही करूगा, इस घर का काम भी नही करूगा और न अत्याचार सहूगा। यदि मै छोटा हू तो मेरा पेट भी छोटा है। मै इसके लिए भरने लायक भोजन तो अपने इन छोटे—छोटे हाथो से अवश्य ही उपार्जन कर लूगा। इस घर मे बिकी आप है, इसलिए आप इनके अधीन रहिए, मै नही रह सकता। मै तो स्वतन्त्र रहूगा।

तारा रोहित की इन बातो का कुछ भी उत्तर न दे सकी। उन्होने कहा—अच्छा, तुम जो लाओ, वह लाया करो, उसे हम दोनो मिलकर खाया करेगे।

एक बालक तो रोहित है, जिसके हृदय मे स्वतन्त्रता के भाव पैदा हो रहे हे, जो परतन्त्र नही रहना चाहता और एक आज के भारतीय है जो भारत की ही वस्तु खा—पहन—कर भी परतन्त्र रहना चाहते है। भारत मे उत्पन्न रूई का कपडा पहने, भारत मे उत्पन्न अनाज खाए, फिर भी विदेशियो के अधीन रहने मे अपना गौरव मानते है। इस अन्तर का कारण परतन्त्रता के वे सस्कार हे जिनके बधन मे देश अधिक समय तक जकडा रहा और उससे यहा के अधिकाश निवाकिसयो के सस्कार ही ऐसे हो गए है कि वे गुलामी मे ही सुख अनुभव करते है, स्वतन्त्रता मे उन्हे सुख का लेश भी दिखलाई नही देता है।

दूसरे दिन सवेरे ही रोहित वन की ओर चल दिया। वहा पर उसने वृक्ष पर चढकर अच्छे—अच्छे फलादि तोडे। उनमे से कुछ तो स्वय खाए और कुछ मा के लिए रख दिए।

प्राचीन समय मे राजा लोग वन पर अपना अधिकार न रखकर प्रजा के लिए छोड देते थे। प्रजा के बहुत से मनुष्य वन के द्वारा ही अपनी आजीविका चलाते थे। कोई गाय आदि पशु चराकर अपनी आजीविका कमाते थे ओर कोई उसमे उत्पन्न फल—फूलादि खाकर अथवा बेचकर अपने दिन व्यतीत करते थे। वन पर किसी व्यक्ति विशेष का नियत्रण नही था, किन्तु सबको समानाधिकार प्राप्त था।

इसके अलावा वन के होने से वर्षा बहुत होती थी, जिससे अन्नादि अधिक उत्पन्न होते थे ओर मनुष्य को शुद्ध वायु भी खूब मिलती थी। लेकिन जब से वन पर राज्य का नियत्रण हो गया हे और वे नष्ट कर डाले गए है तब से प्रजा देश और पशुओ के कष्ट बढ गए हैं। आज पशुओ की जो क्षति ओर दुर्बलता दिखलाई देती है अनाज की उत्पत्ति की कमी सुनी जाती है, उसके कारणो मे से एक कारण वन की कमी या राज्य का नियत्रण होना भी हे।

22. स्वावलम्बी रोहित

राजा हरिश्चन्द्र ओर रानी तारा यद्यपि इस समय परतत्र हे लेकिन उनकी भावना स्वतत्र ही है। रोहित तो पहले भी स्वतन्त्र था ओर अब भी स्वतन्त्र हे, अत उसने स्वतन्त्रता की उपासना छोडना स्वीकार न की।

प्रत्येक प्राणी मे स्वतन्त्रता की भावना एक प्रकृतिदत्त श्रेष्ठ गुण हे। इसी कारण स्वतन्त्रता का अधिकार सबको प्राप्त हे। यद्यपि स्वतन्त्रता अच्छी ओर परतन्त्रता बुरी हे, लेकिन परतन्त्रता के सस्कारो के कारण यह अच्छाई–बुराई नही दीखती ओर ऐसे जीव परतन्त्रता को ही अच्छी समझने लगते हे। इसके विरुद्ध जो मनुष्य स्वतत्रता का तनिक भी आभास पा जाता हे उसके लिए परतन्त्रता नरक के समान दु खदायी हो जाती हे।

यद्यपि रोहित अपनी माता के भोजन मे से भोजन करता था किन्तु विचारता रहता था कि मेरे लिए ही माता भूखी रहती हें। ऐसी दशा मे मुझे उसके भोजन मे से भोजन करना उचित नही हे। अधिक नही तो कम से कम मुझे अपने उदर–पोषण के लायक भोजन तो उपार्जन कर ही लेना चाहिए।

ऐसा विचार कर रोहित ने अपनी मा तारा से कहा–अब मे अपने लिए स्वय भोजन उपार्जन करूगा। यह मुझे स्वीकार नही हे कि आपके भोजन मे से खाकर काम भी करू ओर अत्याचार भी सहन करता रहू। कल से मे अपने लिए आप भोजन ले आया करूगा ओर फिर थोडे दिनो बाद आपको भी इस कष्ट से छुडा लूगा तथा पिताजी को भी खोज निकालूगा।

रोहित की बात सुनकर तारा गद्‌गद्‌ हो उठी। ऐसी माता कोन न होगी जो अपने पुत्र के स्वतन्त्र विचार सुनकर प्रसन्न न हो? उन्होंने प्रसन्नत प्रगट करते हुए रोहित से कहा–बेटा तुम्हारा विचार हे तो उत्तम लकिन तुम बालक हो। बडे हो जाने पर अवश्य ही करना।

रोहि–नही मा, अब मै आपका लाया हुआ भोजन भी नही करूगा, इस घर का काम भी नही करूगा और न अत्याचार सहूगा। यदि मै छोटा हू तो मेरा पेट भी छोटा हे। मै इसके लिए भरने लायक भोजन तो अपने इन छोटे–छोटे हाथो से अवश्य ही उपार्जन कर लूगा। इस घर मे बिकी आप है, इसलिए आप इनके अधीन रहिए, मै नही रह सकता। मै तो स्वतन्त्र रहूगा।

तारा रोहित की इन बातो का कुछ भी उत्तर न दे सकी। उन्होने कहा–अच्छा, तुम जो लाओ, वह लाया करो, उसे हम दोनो मिलकर खाया करेगे।

एक बालक तो रोहित है, जिसके हृदय मे स्वतन्त्रता के भाव पैदा हो रहे हे, जो परतन्त्र नही रहना चाहता और एक आज के भारतीय है जो भारत की ही वस्तु खा–पहन–कर भी परतन्त्र रहना चाहते है। भारत मे उत्पन्न रूई का कपडा पहने, भारत मे उत्पन्न अनाज खाए, फिर भी विदेशियो के अधीन रहने मे अपना गौरव मानते है। इस अन्तर का कारण परतन्त्रता के वे सस्कार हे जिनके बधन मे देश अधिक समय तक जकडा रहा और उससे यहा के अधिकाश निवाकिसयो के सस्कार ही ऐसे हो गए है कि वे गुलामी मे ही सुख अनुभव करते है, स्वतन्त्रता मे उन्हे सुख का लेश भी दिखलाई नही देता है।

दूसरे दिन सवेरे ही रोहित वन की ओर चल दिया। वहा पर उसने वृक्ष पर चढकर अच्छे–अच्छे फलादि तोडे। उनमे से कुछ तो स्वय खाए और कुछ मा के लिए रख दिए।

प्राचीन समय मे राजा लोग वन पर अपना अधिकार न रखकर प्रजा के लिए छोड देते थे। प्रजा के बहुत से मनुष्य वन के द्वारा ही अपनी आजीविका चलाते थे। कोई गाय आदि पशु चराकर अपनी आजीविका कमाते थे ओर कोई उसमे उत्पन्न फल–फूलादि खाकर अथवा बेचकर अपने दिन व्यतीत करते थे। वन पर किसी व्यक्ति विशेष का नियत्रण नही था, किन्तु सबको समानाधिकार प्राप्त था।

इसके अलावा वन के होने से वर्षा बहुत होती थी, जिससे अन्नादि अधिक उत्पन्न होते थे ओर मनुष्य को शुद्ध वायु भी खूब मिलती थी। लेकिन जब से वन पर राज्य का नियत्रण हो गया है और वे नष्ट कर डाले गए है तब से प्रजा देश ओर पशुओ के कष्ट बढ गए हैं। आज पशुओ की जो क्षति ओर दुर्बलता दिखलाई देती है, अनाज की उत्पत्ति की कमी सुनी जाती हे उसके कारणो मे से एक कारण वन की कमी या राज्य का नियत्रण होना भी हे।

फल खाकर ओर कुछ फल मा के लिए लेकर रोहित घर आया। इधर तारा चिंतित हो रही थी कि आज न मालूम रोहित कहा चला गया। रोहित को देखते ही तारा की चिन्ता मिट गई और उन्होने रोहित से पूछा—बेटा! आज तुम कहा चले गये थे?

रोहित—मा, आज में वन मे गया था। वहा प्रकृति की छटा देखकर मुझे बडी प्रसन्नता हुई। जिस प्रकार आप मेरी माता हैं, उसी तरह प्रकृति सारे ससार की माता है। जिस प्रकार आप स्वय कष्ट उठाकर मुझे भोजन देती है, उसी प्रकार वह भी ससार को भोजन देती है। इन फलो को देखो। इनसे मेरा भी पेट भर जाएगा और आपका भी। अब मै आपके भोजन मे से भोजन नही करूगा। किन्तु अपना लाया हुआ भोजन आप किया कीजिए और मेरा लाया हुआ भोजन मैं किया करूगा। अब मुझसे यह नही हो सकेगा कि दूसरे के अधीन रहकर बात सुनू। मै अपना स्वतत्र जीवन व्यतीत करूगा ओर आपको भी इस दु ख से छुडाऊगा।

पुत्र की बाते सुनकर तारा को होने वाली प्रसन्नता का वर्णन नही किया जा सकता है। उन्होने समझ लिया कि रोहित क्षत्रिय—पुत्र हे, वीर बालक है इसलिए पराधीन रहने वाला नही हो सकता हे।

तारा ने रोहित से कहा—बेटा! केवल फलो के खाने से ही शरीर सशक्त नही रह सकता और बिना शक्ति के तुम केसे तो मुझे इस परतन्त्रता से छुडा सकोगे और कैसे अपने पिताजी को खोजकर लाओगे? इसलिए मेरे लाये हुए भोजन मे से भोजन किया करो।

रोहित—यदि आप मेरे लाये हुए भोजन मे से भोजन करना स्वीकार करे तो मै भी आपके भोजन मे से भोजन कर सकता हू, अन्यथा नही।

तारा ने रोहित की बात स्वीकार कर ली ओर दोनो एक दूसरे के लाये हुए भोजन मे से भोजन करने लगे।

बहुत समय से रोहित को न देखकर एक दिन ब्राह्मण पुत्र ने तारा से पूछ लिया कि—आजकल रोहित दिखलाई नही देता हे। तारा ने बतलाया कि—अब वह अपना स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करता हे।

तारा की बात सुनकर ब्राह्मण पुत्र साश्चर्य विचारने लगा कि मैने तो इन्हे कम भोजन देकर अपने वश मे करना चाहा था लेकिन ये लोग तो ओर भी स्वतन्त्र हो गए। वह तो बडी विचित्र स्त्री हे अब तो इससे बचकर रहने मे ही लाभ हे, अन्यथा किसी दिन अनर्थ हो जाएगा। ऐसा विचार कर ब्राह्मण

पुत्र ने तारा से किसी पकार की अनुचित आशा रखना छोड दिया और कष्ट देना बद कर दिया।

पतिदिन रोहित वन से फल ले आता। कभी–कभी तारा उन फलो मे से थोडे फल ब्राह्मण पुत्र को देकर कहती कि आप इनको खाकर देखिये, ये कैसे अच्छे हें। कभी इन हाथो से मेंने बहुत कुछ दान दिया है, लेकिन अब तो मै स्वय ही आपका दिया हुआ भोजन करती हू तो दान कहा से करू? रोहित के अपने उद्योग से लाए हुये फलो मे से मुझे दान करने का भी अधिकार है, अत आप इन्हे खाइये।

तारा के दिये हुए फलो को लेते हुए ब्राह्मण पुत्र ऊपर से तो प्रसन्नता व्यक्त करता था परन्तु मन ही मन उसे रोहित की इस स्वातत्र्यप्रियता पर डाह होती थी।

तारा और रोहित इसी प्रकार प्रसन्नता पूर्वक अपने दिन व्यतीत करते जा रहे थे।

23. एक और आघात

ससार मे मनुष्यो का जीवन विशेषत आशा पर निर्भर है। यदि एक क्षण के लिए भी आशा मनुष्य का साथ छोड दे तो सभवत मनुष्यो की जीवन–नौका पार लगाना कठिन हो जाए। प्रत्येक मनुष्य अन्धेरे के बाद उजाला, विपत्ति के बाद सपत्ति और दु ख के बाद सुख की आशा करता हे। यदि यह न हो तो उसका जीवन भार रूप हो जाए। निराशावादी मनुष्यो के प्रत्येक कार्य मे निराशा ही निराशा दिखलाई देती हे इस कारण वे निरुद्यमी, भीरु और आलसी बन जाते है। उनका जीवन दु खमय हो जाता हे ओर वे किसी भी सत्कार्य को आरम्भ करने का साहस नही कर पाते है। लेकिन आशावादी घोर दु खो का सामना होने पर भी निराश नही होते हे। कदाचित् वे किसी कार्य मे असफल भी रहे तो भी निराशा को पास नही फटकने देते और उद्योग करते रहते है। तारा आज परतन्त्र हे ओर इस बात पर विश्वास करने का कोई कारण नही था कि उन्हे कोई पाच सो स्वर्ण–मुद्राए देकर दासीपने से मुक्त करेगा, फिर भी उन्हे अपने पुत्र से इस बात की आशा थी कि वह बडा होकर अपने उद्योग से मुझे तथा पति को दासत्व से छुडाएगा। इस आशा के सहारे ही वे दासीपने मे भी प्रसन्न थी।

यद्यपि इसी आशा के सहारे किसी–न–किसी प्रकार तारा के दिन बीत रहे थे, लेकिन अभी भी उनके सत्य की खास कसोटी का होना तो शेष ही थी। इसी कारण उनकी यह आशा अधिक दिन तक न टिक सकी। विपत्ति आशा पर ही आघात करती हे ओर उसी का नाश करती हे। यदि वह आशा का नाश न करे तो फिर कोई भी मनुष्य अपने आपको विपत्ति मे न समझे ओर न उससे घबराए।

नियमानुसार रोहित प्रतिदिन वन से विभिन्न प्रकार के फलो को लाता ओर तारा उनमे से आप भी खाती तथा दूसरो को भी देती। यद्यपि तारा

इस प्रकार अपना जीवन व्यतीत कर रही थी, लेकिन हरिश्चन्द्र को सत्य से भ्रष्ट करने की प्रतिज्ञा करने वाले देव से तारा का यह सुख भी न देखा गया और उसने एक बार पुन राज–दम्पति को सत्य से भ्रष्ट करने की चेष्टा करने का विचार किया।

नित्य की तरह रोहित वन मे गया। उसने वहा का प्रत्येक वृक्ष देख डाला लेकिन उस दुष्ट देव की माया से उसे एक भी फल न मिला। वह बहुत घूमा–फिरा, किन्तु सब निष्फल रहा। रोहित मन–ही–मन कहने लगा–आज क्या बात है? क्या प्रकृति ने वत्सलता छोड दी है? तभी तो अपनी गोद मे आये हुए बालक को आज भूखा रख रही है। आज अवश्य ही वह मुझसे क्रुद्ध है।

रोहित को फल ढूढते–ढूढते काफी समय व्यतीत हो चुका था। अब भूख भी सताने लगी थी। उसने वृक्षो के कुछ पत्ते खाए परन्तु भूख न मिटी। इधर ऊपर से माता की चिन्ता भी उसे सता रही थी कि यदि मैं बिना फल लिए जाऊगा तो मुझे माता के भोजन मे से ही भोजन करना पडेगा और उन्हे भूखा रहना पडेगा, जो मेरे लिए सर्वथा अनुचित है।

इस विचार से रोहित घर न जाकर फल ढूढता रहा और भूख से नितात विकल होकर एक वृक्ष के नीचे लेट गया। भूख के मारे उसे नीद नही आई और लेटे–लेटे परमात्मा का स्मरण करने लगा।

रोहित परमात्मा का स्मरण कर ही रहा था कि समीप ही किसी वस्तु के गिरने की आहट सुनाई दी। उसका ध्यान भग हुआ और उठकर आस–पास देखा तो एक पका हुआ आम का फल दिखाई दिया। प्रसन्न होकर रोहित ने वह फल उठा लिया और चूसने लगा। उसे वह फल इतना स्वादिष्ट जान पडा कि वैसा फल उसने पहले कभी खाया ही न हो। एक तो उसे इस समय भूख लगी थी और दूसरे फल था भी कुछ अधिक स्वादिष्ट। फल खाने से रोहित की भूख बहुत कुछ मिट गई और उसे शाति मिली।

जब रोहित फल खा चुका तो उसे ध्यान आया कि ऐसा अच्छा फल बिना मा को दिए मैं अकेला ही क्यो खा गया? यदि इस फल को मै माता के पास ले जाता तो कैसा अच्छा होता? लेकिन धिक्कार है भूख को जिसने इस समय मुझे माता का ध्यान नही रहने दिया। अब इस फल के वृक्ष को खोजकर ओर उसमे से फल तोडकर माता के पास ले जाऊगा।

इस प्रकार का विचार करके रोहित इधर–उधर उस फल के वृक्ष को देखने लगा। उसे पास ही ऐसे फलो से लदा हुआ एक आम का वृक्ष दीख पडा। उसे देखकर वह विचारने लगा कि इन वृक्षो को तो में पहले ही अच्छी तरह देख चुका था, लेकिन मुझे एक भी फल दिखलाई नही पडा था। अव में इस वृक्ष मे से वहुत से फल ले जाकर अपनी माता को दूगा तो वे स्वय इन्हे खाकर तथा दूसरो को देकर वहुत प्रसन्न होगी।

यह सोचकर रोहित जेसे ही वृक्ष पर चढने के लिए उसके समीप पहुचा तो उसकी दृष्टि तने से लिपटे हुए भयानक काले सर्प पर पडी। वह सर्प अपनी लाल–लाल आखो से रोहित की ओर देखने तथा फुफकारने लगा। आज के बालक तो क्या, यदि युवक भी होते तो उस विकराल सर्प को देखकर भाग जाते। लेकिन रोहित वीर बालक था और तारा ने शिक्षा द्वारा उसकी रग–रग मे वीरता भर दी थी। वह सर्प से किचित भी भयभीत न हुआ, बल्कि स्वय भी अपनी आखे लाल करके सर्प से कहने लगा–ओ विषधर! तू वृक्ष घेर कर क्यो बैठा है? फल तो खाता नही, वह तो मनुष्यो का आहार हे, फिर तूने इस वृक्ष पर क्यो अधिकार कर रखा हे? इस वृक्ष के फलो का अधिकारी मै हू, तू नही, अत यहा से चला जा।

रोहित की बाते सुनकर सर्प ने एक वार पुन फुफकारा कि यदि तुझे अपने प्राण प्रिय हैं तो यहा से चला जा। लेकिन रोहित ऐसी फुफकारो से कब डरने वाला था। उसने कहा–फल तेरे काम के नही हे, इसलिए तू वृक्ष को छोड दे, लेकिन तू तो अपने अभिमान मे सुनता ही नही हे। में तुझसे फिर कहता हू कि तू इस वृक्ष को छोडकर चला जा। मे अपने अधिकार की वस्तु तेरे डराने से कदापि नही छोडूगा। मेरी माता प्रतीक्षा कर रही होगी वे मेरे लिए भूखी होगी, में इन फलो को उनके लिए ले जाऊगा। इसलिए तू वृक्ष को छोड दे, देर न कर।

रोहित की इन वातो को सुनकर भी सर्प न हटा, बल्कि पुन फुफकारा। रोहित कहने लगा– मे तुझसे पहले ही कह चुका हू कि में अपने अधिकार की वस्तु किसी प्रकार नही छोडूगा, फिर भी तू मुझे डरा रहा हे। यदि तू नही हटता हे तो मत हट। में दूसरी तरह से वृक्ष पर चढकर फल तोड लूगा।

रोहित के इस कार्य का नाम सत्याग्रह हे। भय या आपत्ति से न डरकर अपने अधिकारो की प्राप्ति व रक्षा का उपाय करना ही सत्याग्रह हे।

रोहित के ऐसे करने से प्रगट है कि उस समय के बालक भी सत्याग्रह करना जानते थे, लेकिन आज के अधिकाश वृद्ध भी सत्याग्रह का नाम सुनकर ही डरते सुने जाते है। इस अन्तर का कारण शिक्षा का अन्तर ही है। पहले के बालको को वीरता की शिक्षा दी जाती थी, लेकिन आजकल के बालको को कायरता की शिक्षा दी जाती है। जहा पहले के बालको को सिखाया जाता था कि वे किसी से भय न करे, वहा आज के बालको को भूत–प्रेत के झूठे भय से डराया जाता है। इस तरह आज के बालक मे जब कायरता की भावना भरी जाती हे तो वे सत्याग्रह करे तो करे कैसे। सत्याग्रह वीर ही कर सकता है, कायर नही।

जब सर्प ने मार्ग न दिया तो रोहित आस–पास की फैली हुई डालियो मे से एक को पकडकर वृक्ष पर चढने लगा तो सर्प ने दौडकर उसके पैर मे डस लिया। सर्प के डसते ही रोहित छटपटाकर भूमि पर गिर पडा और क्षण भर मे सारे शरीर मे विष फैल गया।

छटपटाते हुए रोहित आप ही आप कहने लगा–माता तारा! आज तुम्हारा रोहित विनष्ट है। समीप कोई नही है, आज से तुम्हे माता कहने वाला न रहेगा। पिताजी कहा है तुम दासित्व के बधन मे जकडी हो। विचारता तो था तुम्हे बधन मुभ और पिताजी की खोज लाऊगा लेकिन निराश हो हो। माता कौन तुम्हे सुनाएगा और क्या जीवित रह सकोगी। लेकिन अब तुम अपने रोहि को न देख पाओगी। माता चिन्ता न करना। मै वीरो की तरह मर रहा हू। तुम्हारी शिक्षा ने । तुमने मेरे लिए कष्ट सहे, अपने प्राण मानती थी लेकिन जा रहा हू। यह तुम्हारे धैर्य की परीक्षा का समय है। पिताजी! एक बार अपने प्यारे रोहित को देखो! आज जा रहा हू। माताजी को कौन धैर्य बधाएगा! लेकिन अब सब चिन्ता छोड मुझे तो परमात्मा का स्मरण करना चाहिए जो तिन्नाण तारयाण है। ससार मे जीते जी के सब सबध हैं। जीव अकेला आता जाता है। कोई साथी नही। बडे बडे राजा–महाराजा ससार से अकेले गए। उन्हे मौत से नही बचा सका। जिस काया पर घमड करता है, वह यही पडी रह जाने वाली है। आत्मा अपने शुभाशुभ कर्मो का स्वय फल भोगता है।

इस प्रकार परमात्मा एव ससार के स्वरूप का विचार कर रोहित फिर कहने लगा–माता! मेरा अन्तिम प्रणाम् पर मेरा प्रणाम तुम तक

पहुचेगा या नही, कौन तुम्हे पहुचायेगा। अब तो आप से अन्तिम विदा । कहते--कहते रोहित बेहोश हो गया, जीभ लडखडाने लगी। शारीरिक हरकत बन्द होने लगी।

कुछ लोगो ने सर्प द्वारा रोहित को डसते ओर गिरते देखा था। वे दौडकर आम के पेड के नीचे इकट्ठे हो गए। रोहित को देखकर वे आपस मे विचार करने लगे कि न मालूम यह सुन्दर बालक किसका हे? देखते-देखते इसका कोमल शरीर काला पडता जा रहा है। बार-बार तारा का नाम लेता है। हो-न-हो इसकी माता का नाम तारा हे लेकिन न मालूम वह कहा रहती है। यदि किसी को मालूम हो तो बेचारी को खबर कर दो, जिससे पुत्र का अन्तिम बार मुख तो देख ले। इतने मे एक ने बताया कि अमुक ब्राह्मण के यहा तारा नाम की दासी है। इस बालक को भी उसी के वहा देखा है। शायद यह बालक उसी तारा का हो। यह बहुत थोडी देर का मेहमान है। बेचारी को खबर कर दो।

यह सुनकर आसपास भीड मे खडे हुए बालक खबर देने के लिए उस ब्राह्मण के घर की ओर दौड पडे, जहा तारा रहती थी।

24. शोकार्त तारा

दौडते–दौडते बालकगण जब ब्राह्मण के घर पहुचे तो उस समय ारा रोहित की ही चिन्ता कर रही थी। प्रतिदिन के समय से बहुत समय प्रतीत हो जाने पर भी उसके न आने से तारा विकल थी। वे मन–ही–मन नेक पकार के सकल्प–विकल्प कर रही थी। इतने मे बालको ने तारा के नेकट पहुचकर कहा कि–तुम्हारा पुत्र तुम्हे पुकारते–पुकारते मूर्छित होकर गेर पडा है।

तारा ने घबराकर पूछा–कहा? मैं तो उसकी बहुत देर से प्रतीक्षा कर रही हू।

बालक–है तो दु खद समाचार और उसके सुनने से तुम्हे ही दु ख होगा। परन्तु न सुनाने से तो नुकसान ही है। इसलिए सुनाये देते है। तुम्हारे बालक को जगल मे पेड पर चढते हुए सर्प ने डस लिया है और बेहोश होकर पडा है। कही शायद हमारे यहा तक पहुचने से पहले ही उसने अपनी ससार–यात्रा समाप्त न कर दी हो?

मनुष्य और सब दु खो को सहन कर सकते हैं, परन्तु सतान–वियोग का दु ख उन्हे असह्य हो उठता है। कई सतानो के होने पर भी जब किसी एक के वियोग का दु ख सहन करने मे भी उनका धैर्य छूट जाता है तो जिसके एक ही सन्तान हो और उसका भी वियोग हो जाये तो धैर्य का छूट जाना स्वाभाविक है।

बालको ने तारा को यह समाचार नही सुनाया था वरन् उन पर वज्रप्रहार ही किया था। समाचार सुनते ही तारा इतनी अधिक अधीर हो उठी कि तत्क्षण मूर्च्छित हो गई। लेकिन अभी भी उन्हे पुत्र वियोग के दु ख को सहकर अपने सत्य की परीक्षा देना शेष था अत यह मूर्च्छावस्था भी अधिक देर तक नही रह सकी।

रोहित, तारा का एकमात्र पुत्र था। उसी के सहारे वे अपने ये दिन व्यतीत कर रही थी, उसी को देखकर प्रसन्न रहती थी ओर उससे सुन्दर भविष्य की आशा रखती थी। परन्तु दुष्ट देव ने तारा से उनका यह सहारा भी, यह रत्न भी छीन लिया। तारा के हृदय पर इसका केसा आघात हुआ होगा, यह तो अनुमान से ही जाना जा सकता है।

जिस समय तारा मूर्च्छित पडी थी ओर आसपास बालक उनको घेरे खडे थे तो उस समय ब्राह्मण भी वहा आ गया। उसने बालको से पूछा–क्या बात है? बालको ने वृत्तान्त सुनाकर कहा कि इस समाचार को सुनते ही यह मूर्च्छित होकर गिर पडी है। ब्राह्मण ने विचार किया कि लडका तो मर ही चुका हे, परन्तु कही उसी के दु ख मे यह भी न मर जाए। नही तो मेरी पाच सौ स्वर्ण–मुद्राए यो ही डूब जाएगी, यह सोचकर ब्राह्मण ने तारा को होश मे लाने के लिए उनके मुख पर ठडे पानी के छीटे मारे। होश मे आते ही तारा रोहित–रोहित कहते हुए पुन विलाप करने लगी।

इस पर तारा को ताडना करते हुए ब्राह्मण बडबडाने लगा–जब में कहता था कि अपने बालक को कही जाने न दे तब मेरी बात पर ध्यान नही दिया और अब उसके लिए विलाप करती है। अब क्या तू भी रो–रोकर उसके साथ अपने प्राण देगी और मेरी मुद्राए डुबोएगी? जा, ओर उसका जो कुछ भी करना हो, सो करके जल्दी वापस आ।

ब्राह्मण के इन क्रूर शब्दो से दु खित तारा के हृदय को कैसी चोट पहुची होगी, इस बात को प्रत्येक सहृदय व्यक्ति समझ सकता हे। लेकिन अपनी विवशता मे इन्हे सुन लेने के सिवाय तारा क्या कर सकती थी? फिर भी तारा ने अपने मन मे ब्राह्मण को धन्यवाद ही दिया कि कम से कम बिना मागे इन्होने पुत्र का अन्तिम सस्कार करने के लिए मुझे समय तो दे दिया।

ससार का यह अटल नियम है कि या तो दु ख सहानुभूति से कम हो जाता है या ताडना से। कही–कही दोनो से दु ख बढ भी जाता हे, किन्तु अधिकत्तर कम ही होता हे। ब्राह्मण की ताडना से तारा एक क्षण के लिये अपना दु ख भूल–सी गई। उन्होने धैर्य धारण करके ब्राह्मण से कहा–पिताजी, जो होना था सो हुआ, परन्तु अब मे अकेली अबला वहा जाकर क्या कर सकूगी। इसलिए दया करके या तो आप साथ चलिए या किसी और को साथ भेज दीजिए, जिससे यदि कोई उपचार किया जा सकता हो तो कर सके।

परिस्थिति को देखते हुए तारा के इन शब्दो का एक सहृदय मनुष्य पर बडा अच्छा प्रभाव पड सकता था, किन्तु उस हृदयहीन ब्राह्मण ने तो उल्टे तारा को फटकारते हुए कहा–वह तो मर ही चुका है, अब उस मरे हुए का क्या करना है? वन के मरे को गाव या घर तो लाना नही है, फिर तेरे साथ हम कहा–कहा घूमते फिरेगे। जा, जल्दी जा। देर मत कर और उसकी अन्त्येष्टि कर जल्दी आ जा, देर मत करना।

जिस तारा की सेवा मे सदैव सैकडो सेवक–सेविकाए उपस्थित रहती थी जिनके मुख से बात निकलते ही काम होता था, जो स्वय दूसरे को दु ख मे सहायता किया करती थी, उन्ही तारा को आज ऐसा उत्तर सुनने को मिला और वह भी उस समय जबकि उनका प्रिय पुत्र मरा हुआ पडा था। लेकिन तारा इस उत्तर से उतनी दु खित नही हुई, जितना दु ख उन्हे पुत्र का था। उन्होने ब्राह्मण की तरफ से निराश होकर बालको से कहा–भाइयो, चलो, चलकर दिखा दो कि वह कहा पडा है। बालको ने तारा की बात मान ली और वह विलाप करती हुई उन बालको के साथ उस ओर चल पडी, जहा रोहित मरा पडा था।

बालको ने दूर से ही तारा को शव दिखला दिया। तारा ने दौडकर उसके शव को छाती से चिपका लिया और बिलख–बिलख कर रोने लगी।

शोक किसके लिए कर रही हो? इस शरीर से जितना भी सुकृत्य हो जाए वही अच्छा है। इस बालक के जीवन का अन्त वीरो की तरह हुआ हे और तुमने भी सत्य को इसी प्रकार पाला है कि आज सारे ससार मे तुम्हारी कीर्ति व्याप्त हे। अब क्या पुत्र–शोक से व्यथित होकर अपने उस सत्य धर्म को छोडना चाहती हो। जिस सत्य के लिए राजपाट छोडा, जिस सत्य के लिए तुमने मजदूरी की, जिस सत्य के लिए बिककर दासीपना किया, क्या उस सत्य को अब पुत्रशोक से कातर होकर छोड दोगी? याद रखो कि तुम बिकी हुई हो, तुमको उस ब्राह्मण ने पाच सौ स्वर्ण–मुद्राए देकर मोल लिया हे। यदि तुम पुत्र–शोक से ऐसी कातर होकर अपने प्राण त्याग दोगी तो क्या उस ब्राह्मण के साथ विश्वासघात होना नही कहलाएगा और तुम अपने धर्म से पतित हुई नही कहलाओगी? भद्रे! तुम मरने के लिए भी स्वतन्त्र नही हो। अत अपने मरने के विचार का परित्याग करो और कातरता छोडकर अपने धर्म पर ध्यान दो। तुम्हे, तुम्हारे मालिक ने कुछ समय का ही अवकाश दिया हे। यदि उसको विलाप मे व्यतीत कर दोगी तो फिर तुम स्वामी–आज्ञा के उल्लघन की पातिकिन हो जाओगी। इसलिए धैर्य धारण करके पुत्र की

अन्त्येष्टि-क्रिया करने का विचार करो। वीर क्षत्राणी अपने वीर पुत्र के लिए कभी कातर नही होती हे। उसमे भी तुम सूर्यवश की कुलवधू हो दानवीर महाराज हरिश्चन्द्र की धर्मपत्नी हो ओर रोहित जैसे वीर ओर स्वतन्त्रता-प्रिय बालक की माता हो। तुम्हे इस प्रकार शोक करना शोभा नही देता हे। इसके सिवाय शोक करने से कष्ट का निवारण नही हो सकता, मिट नही सकता, तो फिर शोक करने से ही क्या लाभ? अत वीर क्षत्राणी की तरह धेर्य धारण करके अपने कर्तव्य का विचार करो।

सज्जन के इस उपदेश ने तारा के हृदय मे बिजली का सा असर किया। वे साश्चर्य विचार करने लगी कि ये सज्जन मुझे केसे पहचानते हे। इन्होने जितनी भी बाते कही हे, उनसे स्पष्ट है कि मुझसे अच्छी तरह परिचित है। इनका उपदेश भी उचित है। वास्तव मे मै दूसरे के यहा दासी हू। बिना खरीददार की आज्ञा के मे थोडा-सा भी समय नही बिता सकती हू? जिस सत्य की अब तक रक्षा की हे, वह मेरे आत्मघात करने पर कदापि नही बच सकता हे। अब तो मेरा यही कर्तव्य हे कि रोहित की अपेक्षा सत्य को अधिक समझकर रोहित की चिन्ता न करू ओर वही कार्य करू, जिसके करने से सत्य की रक्षा हो।

सज्जन के समझाने से तारा का मन स्वस्थ हुआ उन्होने अपने हृदय के दु ख को दबाकर रोहित की अन्त्येष्टि-क्रिया करने का विचार किया। लेकिन उन्हे फिर ध्यान आया कि बिना किसी की सहायता के में अकेली स्त्री क्या कर सकूगी? कहा श्मशान हे, अन्त्येष्टि-क्रिया केसे की जाती हे, आदि बातो से भी मैं अनभिज्ञ हू, अत यदि इन सज्जन की सहायता मिल जाए तो मेरा यह कार्य अच्छी तरह से हो जाएगा।

तारा अपने मन मे ऐसा विचार कर रही थी कि उस दुष्ट देव ने यहा भी तारा का पीछा न छोडा। उसकी माया के प्रभाव से तारा के आसपास खडे हुए लोग अपनी-अपनी ओर चल दिए। तारा के आवाज देने पर भी किसी ने ध्यान नहीं दिया ओर अकेली ही रह गई।

तारा के विलाप करने ओर उस सज्जन के समझाने मे ही सध्या हो गई थी। अमावस्या की काली रात्रि अपना भयकर अन्धकार फेलाती जा रही थी। सियार, उल्लू, भेडिये आदि अपने-अपने भयावन शब्द सुना रहे थे। आकाश मे घने काल बादल छा रहे थे। ऐसी विकराल भयानक ओर अन्धेरी रात मे वन के बीच तारा अपने मृतपुत्र को लिए हुए अकली बेठी थी। प्रार्थना

करने पर भी समीप के लोगो के चले जाने से तारा को होने वाले दु ख की बात अनुमान से ही जानी जा सकती है।

रोहित के शव को गोद मे लेकर विलाप करती हुई तारा कहने लगी–रोहित! बेटा रोहित, तुम किस नीद मे सोए हो। उठो, अपनी अभागिनी माता को तो देखो, जो तुम्हारे लिए रो रही है। चुपचाप क्यो पडे हो? तुम तो सदा अपनी माता से अनेक प्रकार की बाते करके दु खो को दूर कर दिया करते थे, आश्वासन दिया करते थे, फिर आज क्यो निष्ठुर बन गए हो? बेटा रोहित! क्या यह सोने का समय है? क्या यह समय अपनी माता को छोडने का है? फिर क्यो पडे हो? तुम्हारी सूरत तो वैसी ही है जैसी मेरी गोद मे सोने पर रहा करती थी, फिर आज क्यो बोलते नहीं हो? क्या अपनी मा से रूठ गए हो? अब मेरा कौन है जो मुझे आश्वासन देगा? तुम तो कहा करते थे कि मै बडा होकर तुम्हे मुक्त कराऊगा और पिताजी को भी खोल लाऊगा परन्तु आज बोलते तक नही हो? अब तक तो आशा थी कि बडे होकर तुम अपने माता–पिता को दु ख से मुक्त करोगे, परन्तु अब कौन यह आशा पूरी करेगा? अब कौन मा–मा कहकर पुकारेगा? मै किसको बेटा कहूगी? अब कौन मेरे आसू पोछकर अपनी तोतली बातो से मुझे हसाएगा! अब मै किसे देखकर अपनी आखे ठडी करूगी और दु ख भूलूगी? भूखे रहने पर भी तुमने मुझसे कभी भी नही कहा कि भूख लगी है और न बिना मुझे साथ लिए खाया। परन्तु अब कोई मेरी बात पूछने वाला भी नही रहा। बेटा रोहित! मैने तुम्हारे पिता के पुत्र–रत्न को खो दिया है। जब वे तुम्हारे बारे मे पूछेगे तो मैं क्या उत्तर दूगी? मैं कैसे कह सकूगी कि आपका जीवन धन और सूर्यवश का एकमात्र रत्न अब ससार मे नही रहा है। वत्स रोहित! क्या मैने इसी दिन के लिए तुम्हे पाला था? क्या दुष्ट सर्प के लिए तुम्ही डसने योग्य थे। वह दुष्ट बदले मे मुझे डस लेता। मुझे उसने किस सुख के लिए छोड रखा है? मेरे प्राण! तुम इस शरीर मे किस आशा से ठहरे हुए हो। क्या अभी कुछ और दु ख देखना शेष है जिसके लिए तुम ठहरे हुए हो! इस दु ख से बढकर और कौन–सा दु ख है जिसे अभी और सहना है। फिर तुम इस शरीर को क्यो नही छोडते? इस भीषण दु ख से छुटकारा क्यो नही लेते? चलो, तुम भी वही चलो, जहा रोहित गया है। मैने सत्य के लिए सब दु ख सहे, लेकिन यह मेरे लिए असह्य है। जहा मेरा रोहित गया है बस वही मुझे भी ले चलो, मै वहा अवश्य जाऊगी। अब इस ससार मे किस आशा से रहू? पुत्र की आशा से ही अब तक सब कष्ट सहते रहे, लेकिन आज तो यह आशा भी नही रही। मेरे लिए

तो आज सारा ससार सूना है, अब मुझे इस ससार मे रहने की क्या आवश्यकता है?

इस प्रकार विलाप करते—करते तारा मूर्च्छित हो गई।

तारा के इस करुण क्रन्दन को सुनकर आस—पास के बहुत से लोग एकत्रित हो गए और इस हृदय—विदारक विलाप को सुनकर उन लोगो के भी आसू बहने लगे। सब लोग तारा से सहानुभूति प्रगट करने लगे। वन के पशु—पक्षियो तक ने भी खाना—पीना, चहकना छोड दिया ओर तारा का अनुकरण करने लगे। यह सब कुछ तो हुआ परन्तु रोहित जीवित न हो सका।

लेकिन तारा की यह मूर्च्छा अधिक समय तक न रह सकी ओर पुन होश मे आने पर तारा उसी प्रकार विलाप करने लगी कि इतने मे एक सज्जन आए।

सज्जनो की वाणी मे न मालूम ऐसी कौन—सी शक्ति है कि ससार के कठिन—से—कठिन दु ख को भी बात की बात मे कम कर देती है। दु ख मे सुख, निराशा मे आशा और विपत्ति मे सपत्ति का सचार कर देना ही सज्जनो की विशेषता है।

तारा को सबोधित करते हुए वे सज्जन बोले—देवी तारा! पुत्र—शोक से विह्वल होकर यदि कोई दूसरी स्त्री रोती तो इसमे कोई आश्चर्य की बात न थी, परन्तु तुम्हारे समान सत्य—धारिणी भी विकल हो, यह आश्चर्य की बात है। यदि तुम भी अधीर हो जाओगी तो फिर दूसरा कोई केसे धेर्य रख सकता है? यह शरीर, जिसको तुम लिए बेठी हो और विलाप कर रही हो, अनित्य है, क्षणभगुर है। फिर तुम स्वामी—आज्ञा के उल्लघन की पातकिन हो जाओगी। इसलिए धैर्य धारण करके पुत्र की अन्त्येष्टि—क्रिया करने का विचार करो। वीर क्षत्राणी अपने वीर पुत्र के लिए कभी कातर नही होती हे। उसमे भी तुम सूर्यवश की कुलवधू हो, दानवीर महाराज हरिश्चन्द्र की धर्मपत्नी हो ओर रोहित जैसे वीर ओर स्वतन्त्रता—प्रिय बालक की माता हो। तुम्हे इस प्रकार शोक करना शोभा नही देता हे।

तारा की इस विपदावस्था की ओर ससार के स्त्रीपुरुषो का ध्यान आकर्षित करते हुए बुद्धिमान कहते है— ए ससार के स्त्री—पुरुषो! तुम्हे धन, जन, रूप, योवन आदि का अभिमान हो तो तुम तारा की ओर देखो। तारा अपने समय के धनवानो, रूपवानो, युवावस्था—सम्पन्नो ओर बुद्धिगानो म एक ही थी। लेकिन जब उन पर भी विपत्ति पडी तो तुम किन कारणो से इन नाशवान वस्तुओ पर गर्व करते हो! जो तारा कुछ दिन पहले एक विशाल

राज्य की रानी थी और रोहित राजकुमार था एव लाखो मनुष्य जिनकी रक्षा के लिए तैयार रहते थे, आज वही राजकुमार वन के बीच मरा पडा है और वही रानी अकेली पास बैठी दुखित हो रही है। इस समय उन्हे कोई आश्वासन देने वाला तक नही है और न मृत देह का अग्नि–सस्कार करने के लिये उनके पास एक पैसा भी है। बल्कि ऐसा कोई सहायक मनुष्य तक नही हे जो रोहित के शव को श्मशान तक पहुचा दे या तारा को उसका मार्ग ही बतला दे। अत यह ध्यान रखो कि आज तुम जिस धन पर गर्व करते हो, वह धन स्थायी नही अस्थायी है। फिर क्यो उसके लिये अन्याय करते हो? क्यो उससे मोह करते हो और क्यो ससार मे उसे ही उत्कृष्ट वस्तु समझते हो? धन का होना तभी अच्छा है जब उससे किसी प्रकार का सुकृत्य कर लिया जाए। अन्यथा पश्चात्ताप के सिवाय कुछ शेष नही रहता। हरिश्चन्द्र का राज्य यदि किसी दूसरे राजा की चढाई के कारण चला जाता तो उन्हे पश्चात्ताप होता कि मैंने अपने राज्य का कोई सदुपयोग नही किया, लेकिन उन्होने तो उसे दान मे दिया था इससे उन्हे अत्यधिक सन्तोष था। साराश यह कि अभिमान बुरा है किसी वस्तु पर अभिमान न करके यदि उससे कोई सुकृत्य कर लिया जाए तो अच्छा है।

वन के बीच भयानक अन्धेरी रात मे तारा शव की अन्त्येष्टि–क्रिया की चिन्ता मे बैठी थी। उन्हे श्मशान का मार्ग भी मालूम नही था। खरीददार ब्राह्मण भी इतना निष्ठुर निकला कि न तो तारा को दु ख के समय सहायता देने वह स्वय ही साथ आया और न किसी को साथ भेजा। यद्यपि लोक–व्यवहार के अनुसार श्मशान–भूमि तक साथ देना उसका कर्तव्य था, परन्तु उसने इसकी उपेक्षा कर दी और शव का अग्नि–सस्कार करने के लिए एक टका न दिया, जिसे देकर तारा उसका अग्नि–सस्कार कर पाती ऐसे समय मे तारा के हृदय मे क्या–क्या भावनाए उत्पन्न हुई होगी, यह कौन कह सकता है?

लेकिन तारा क्षत्राणी थी। विपत्तियो को सहन करने मे अभ्यस्त हो चुकी थी ओर सज्जन के समझाने ने भी उन्हे धैर्य ही दिया था एव अपने कर्तव्य को समझ चुकी थी। इसलिए उन्होने साहस करके रोहित के शव को कधे पर उठा लिया और जिस ओर मृतको के शवो को ले जाते देखा, उसी ओर चल दी।

शव को लिये हुए लडखडाती और ठोकरे खाती हुई तारा गलियो मे होकर श्मशान के निकट आ पहुची परन्तु अग्नि–सस्कार के लिए ईंधन की

चिता से तारा का हृदय अधीर हो उठा ओर वह पुत्र के शव को जमीन पर रखकर पुन विलाप करने लगी कि–हाय बेटा! तुम एक विशाल राज्य के भावी स्वामी माने जाते थे, परन्तु आज तुम्हारा कोई सहायक भी नही हे! ओर तो और, आज तुम्हारी अन्त्येष्टि के लिए ईंधन भी नही जुट रहा हे! इस अभागिनी माता को न मालूम किन पाप–कर्मों के फलस्वरूप अपने पुत्र की यह दशा देखनी पड रही है।

तारा इसी प्रकार की अनेक बाते कहती हुई विलाप कर रही थी। उनके हृदय–विदारक विलाप को सुनकर गीदडो ने भी अपना स्वर बन्द कर दिया। इस विपत्ति के समय मे तारा के हृदय की होने वाली दशा को प्रत्येक सहृदय मनुष्य अनुमान से जान सकता हे। लेकिन इस कष्ट मे भी तारा को अपने धर्म का विचार था। धर्म के विचार ने ही वन मे उन्हे पुत्र–शोक से छुडाया था और कर्त्तव्य–मार्ग बतलाया था।

25. हमें सहना ही होगा

अमावस्या की घनघोर काली रात्रि थी और उसमे भी आकाश मे चारो ओर मेघ की घटाए घिर रही थी। एक भी तारा दिखाई नही देता था। निविड अन्धकार मे सारा श्मशान साय–साय कर रहा था। बुझती चिताओ का प्रकाश अन्धकार को और भी भयानक बना रहा था। स्थान–स्थान पर नर–कपाल ओर अस्थिया बिखरी पडी थी। चारो ओर सन्नाटा था, लेकिन बीच–बीच मे गीदडो के बीभत्स शब्द एव वृक्षो की झुरमुराहट कभी–कभी अवश्य सुनाई दे जाती थी। परन्तु ऐसे समय मे भी लगोटा कसे और नग–धडग, डीलडोल वाला एक पुरुष हाथ मे लट्ठ लिए इधर–उधर चक्कर लगा रहा था। चिताओ के धुए से जिसका शरीर काला–सा पड गया था। जिसके सिर ओर दाढी के बढे हुए रूखे बाल थे। यह और कोई नही, हमारे पूर्व परिचित महाराज हरिश्चन्द्र थे जो अकेले ही अपने मालिक की आज्ञा से श्मशान की रखवाली कर रहे थे।

हरिश्चन्द्र एकाकी ही इधर–उधर चक्कर लगाते हुए कह रहे थे–आह! इस देह का अन्तिम परिणाम भी कैसा भीषण है। या तो यह जलकर राख हो जाती है या फिर चील–कौवो ओर कुत्तो, गीदडो आदि का भोजन बनती हे। कभी जो काति अत्यन्त सुन्दर दीख पडती हे और जिस पर यह मनुष्य अभिमान करता है वही काति चिता मे जलकर नष्ट हो जाती है। न मालूम कितने मनुष्य अपने जीवन की बडी–बडी आशाओ को अधूरी छोड यहा आकर चुपचाप सो जाते हैं। दीन–से–दीन और सम्पन्न–से–सम्पन्न माने जाने वालो के लिए यही एक अन्तिम स्थान हे। ऐसा होने पर भी ससार के लोग इस शरीर की अनित्यता का विचार नही करते है। सैकडो आदमी अपने प्रिय–से–प्रिय स्वजन को यहा लाकर फूक जाते हैं, वे रोते हे, उनके हृदय मे वेराग्य का सचार भी होता हे, लेकिन उतनी ही देर जब चिता की आग

बुझ नही जाती हे। उसके बाद वही हास्यविलास, वही कल्पनाओ का दोर–दोरा चलने लगता हे। एक दिन मे ही सब कुछ भूल जाते हैं। यह विचारने की भी आवश्यकता नही समझते कि जिस तरह मे अपने प्रिय पुत्र, मित्र या भाई के शरीर को जलाकर भस्म कर आया हू, उसी तरह एक दिन मेरा भी अन्तिम शयन चिता पर होगा ओर मुझे भी दूसरे लोग इसी तरह भस्म कर देगे।

श्मशान–भूमि मे आने पर मनुष्य के हृदय मे जो भावनाए उत्पन्न होती हैं, यदि उनको ही सदेव बनाए रखे तो मनुष्य इस नश्वर शरीर से अनेक प्रकार के सुकृत्य कर सकता हे।

श्मशान! तुम मनुष्य को कितनी उत्तम शिक्षा देते हो यदि मनुष्य सदा के लिए उसको ग्रहण कर ले तो वह जीवन–मुक्त हो जाए। तुम्हारी गभीरता अपूर्व हे। न जाने कितने दुखियो के गर्म–गर्म आसुओ ओर उनके हाहाकार आदि को सहज ही सहते रहते हो। तुम्हारे हृदय मे एक चाडाल को भी वही स्थान प्राप्त हे जो एक राजा को। राजा हो या प्रजा, ब्राह्मण हो या चाडाल, कोढी हो या दिव्य शरीरधारी, तुम्हारे लिए सभी समान हे। तुम्हारा किसी से भी भेदभाव नही हे। यदि मनुष्य भी तुम्हारे समान समदृष्टि बन जाए तो फिर उसे ससार मे जन्म धारण करने की आवश्यकता ही न रह जाए। परन्तु चेतना–शक्ति–सपन्न होने पर भी मनुष्य इस ओर ध्यान नही देता हे। इसी कारण उसे पुन–पुन तुम्हारी शरण मे आना पडता हे।

हरिश्चन्द्र इस प्रकार के हृदयोद्‌गार व्यक्त करते हुए इधर–उधर चक्कर लगा रहे थे कि सहसा किसी स्त्री का करुण–क्रन्दन कानो मे पडा। वे विचारने लगे कि इस अधेरी रात मे यहा आकर रोने वाली यह कोन हे? वे उस ओर चल दिए जहा से आवाज आ रही थी। हरिश्चन्द्र ने स्त्री के निकट जाकर पूछा–भद्रे! तुम कोन हो जो इस भयावनी रात्रि मे अकेली बेठी रो रही हो?

मनुष्य का शब्द सुनते ही तारा चोंक पडी। अपने सामने एक विशालकाय नगधडग पुरुष को हाथ मे लट्ठ लिये हुए खडा देख तारा कुछ सहमी। वे भयभीत हो विचारने लगी कि इस रात्रि के समय यमदूत–सा यह कौन आकर खडा हो गया हे? तारा ने साहस बटोर कर उससे पूछा– कोन हो तुम जो इस भयावनी रात्रि म एक अनाथ अकेली ओर दुखिया स्त्री के सामने आकर खडे हो गए हो? क्या तुम यमदूत हो? क्या मेर बालक को मेरी गोदी म छीनने के लिए आए हो? परन्तु तुम्हारी क्या मजाल जो मेरे रहते

मेरे बालक को ले जाओ। मै अपनी गोद कदापि सूनी न होने दूगी। अपने प्रत्येक सभव उपाय से अपने बालक की रक्षा करूगी।

स्त्री की ऐसी बाते सुन हरिश्चन्द आश्चर्य–चकित होकर विचारने लगे कि यह कौन है जो अभी तो रो रही थी और अब ऐसी साहसी बन गई है? उन्होने कहा–देवी! तुम्हारे जैसा ही मैं भी आफत का मारा हुआ इन्सान हू। मैं यमदूत नही, बल्कि मनुष्य हू ओर इस श्मशान की रक्षा करता हू। क्या तुम इस मरे हुए बालक के लिए रो रही हो? लेकिन इसके लिए तुम्हारा शोक करना वृथा है। ससार मे जो आता है, उसे निश्चित ही इस मार्ग से जाना पडता है। यह एक अटल नियम है। यहा रहते हुए नित्य ऐसी घटनाओ को देखत–देखते मेरा हृदय वज्र हो गया कि अब वह कभी द्रवित नही होता हे। मेरे देखते–देखते इस श्मशान मे हजारो मनुष्य जल चुके है जिनमे बालक, युवा और वृद्ध सभी आयु के है। अत लाओ, इसे भी जला दे। बादल उमड रहे हैं और यदि वर्षा हो गई तो लकडियो के भलीभाति न जल पाने से तुम्हारा यह बालक भी अधजला रह जाएगा।

बोली सुनकर तारा विचार मे पड गई कि यह है कौन? इसका स्वर तो परिचित–सा जान पडता है। तारा इस प्रकार मन मे विचार कर ही रही थी बिजली चमक उठी। उसके उजाले मे उस मनुष्य का मुख देखकर तारा ने अनुमान लगा लिया कि यद्यपि यह पुरुष है तो दीन वेश मे, लेकिन आकृति सज्जनता की सूचक है। निश्चय ही यह कोई सज्जन पुरुष है। तारा ऐसा सोचकर उस पुरुष से कहने लगी–महाशय, आप बातचीत से तो बहुत सज्जन मालूम पडते हैं लेकिन कही आप कोई देव तो नही है जो इस रात्रि के समय मेरी परीक्षा लेने या मेरी कुछ सहायता करने आए हों? यदि ऐसा है तो कृपा कर मेरे पुत्र को जीवित कर दीजिए मैं जीवन भर आपका आभार मानूगी और धन्यवाद दूगी।

हरिश्चन्द्र–मैं पहले ही कह चुका हू कि मै मनुष्य हू और इस श्मशान–भूमि की रक्षा करता हू। मेरे देव होने का अनुमान लगाना तो बिल्कुल गलत है।

तारा–यदि आप मनुष्य ही हैं तो कृपा करके मेरे पुत्र का सर्प–विष उतार दीजिए। मैंने सुन रखा है कि सर्प के काटे हुए मनुष्य के प्राण शीघ्र नही निकलते और कई लोग सर्प का विष मत्र द्वारा उतार देते है। यदि इस दुखिया के पुत्र को जीवित कर दे तो बडी कृपा होगी।

हरिशचन्द्र–मैं विष उतारना भी नही जानता और न अब तुम्हारा यह मृत पुत्र जीवित ही हो सकता है। इस प्रकार की अनावश्यक बातचीत मे

समय बीत रहा है ओर फिर कही वर्षा हो गई तो शव को जलाने मे कठिनाई होगी। इसलिए लाओ, इसे जला दे। बातचीत से लाभ नही, किन्तु हानि ही हे।

तारा और हरिश्चन्द्र दोनो एक दूसरे के स्वर सुनकर मन मे विचारते थे कि यह स्वर तो सुना जेसा हे परन्तु ससार मे एक ही स्वर के अनेक मनुष्य हो सकते है, इसलिए दोनो मे से कोई भी एक दूसरे से कुछ नही पूछता था। उस मनुष्य की अतिम बात सुनकर तारा को अपने पुत्र की ओर से निराशा हो गई। उन्होने कहा—यदि ऐसा दुर्भाग्य हे, यदि मैं अपने पुत्र को किसी प्रकार भी पुनजीर्वित नही देख सकती ओर तुम्हारी इच्छा इसे जला देने की ही हे तो लो, जला दो इसे।

हरिश्चन्द्र—यहा शव जलाने मे खर्च होने वाले ईंधन के मूल्य—स्वरूप एक टका कर देना पडता है। सो तुम भी कर लाओ। तव तुम्हारा पुत्र जलाया जा सकेगा।

तारा—मेरे पास एक टका तो क्या, एक कौडी भी नही हे, जो तुम्हे दे सकू। मुझ पर दया कर, इसको बिना कर लिए जला दीजिए।

समय! तेरी गति बडी विचित्र हे। तू ससार के प्राणियो की स्थिति गाडी के पहिए की तरह घुमाया करता हे। जो रानी नित्य हजारो का दान करती थी, वही आज एक टके के लिए दया की भीख माग रही हे। यह तेरी ही महिमा है कि जो आज धनवान दिखाई देता हे, वही कल दर—दर की भीख मागता नजर आता हे। ऐसा देखते हुए भी ससारी—जन तेरी इज्जत नही करते ओर तेरी सदा उपेक्षा किया करते हैं।

तारा की बात को सुनकर हरिश्चन्द्र ने कहा— मैंने अनेक स्त्री—पुरुषो को शव लेकर आते देखा हे परन्तु तुम्ही एक ऐसी विचित्र स्त्री दिखलाई पडी जो शव को जलाने के लिए एक टका भी न देकर दया की भीख माग रही हो। क्या, तुम्हारा ऐसा कोई साथी नही जो तुम्हे एक टका दे देता? क्या तुम विधवा हो?

तारा—महाशय! ऐसा न वोलिए।

हरिश्चन्द्र—तो क्या तुम्हारा पति इतना निष्ठुर हे जो न तो तुम्हारे साथ ही आया ओर न कर का एक टका ही तुम्हे दिया? उस पति को धिक्कार हे जो ऐसे समय मे भी अपनी पत्नी की सहायता नही करता। जा लोग अपनी पत्नी की सहायता नही कर सकते तो फिर व किसी स्त्री के पति क्यो वन जाते हैं ओर पति नाम को जलात हैं।

और उसे भी क्या अधिकार है जो वह मेरी आज्ञा मानकर आत्मघात करे? इसके सिवाय आत्मघात करना घोर पाप है। इसलिए हमे दोनो प्रकार से शरीर–नाश करने का अधिकार नही है। ओह! आत्मघात और विश्वासघात ये दोनो ही महापाप है।

मन मे यह विचार आते ही राजा खडे हो गए और तारा से कहने लगे–अभागिनी तारा! हम लोग तो मरने के लिए भी स्वतन्त्र नही हैं। हम दोनो दूसरे के खरीदे हुए दास हैं। इस पकार दु ख से व्यथित होकर आत्मघात करना और खरीददारो को धोखा देना, अपना धर्म नही है। अतएव मरने का विचार त्याग कर धैर्यपूर्वक इस कष्ट को सहन करते हुए अपने–अपने कर्तव्य पर दृढ रहे।

पति की बात सुनकर तारा भी बोली–नाथ! आप जैसे विचारो के कारण ही मै रोहित की मृत्यु के समय भी प्राण–त्याग न कर सकी थी, अन्यथा अब तक तो मैं कभी की रोहित का अनुकरण कर चुकी होती। परन्तु दु खावेश मे पुन मुझे यह ध्यान न रहा और आपके साथ आत्मघात करने के लिए तैयार हो गई। लेकिन अच्छा हुआ कि आप के विचार मे यह बात आ गई, जिससे हम लोग आत्मघात के पाप से भी बच गए और खरीददार के साथ विश्वासघात करने के विचार से भी।

राजा कहने लगे—हा रोहित! हा पुत्र! हा! तुम मुझे अकेला छोडकर कहा चले गए? बेटा! मेरी वृद्धावस्था के सहारे! आखो के तारे! हमे विपत्ति मे छोडकर कहा चल दिए! तुम्हारी आशा मे अब तक हम अनेक विपत्तियो को सहते रहे, परन्तु आज हम निराश हो गए हें। पुत्र! क्या तुम्हारी मृत्यु का यही समय था? हा! कुसुमवत् यह सुकुमार देह आज स्थिर पडी हे। आज कौन मुझे पिता कहेगा? मुझे पिता कहने वाला कोई नही रहा। आज में निस्सन्तान हो गया। बेटा! उठो, एक बार अपने पिता से तो कुछ बोलो! वत्स! इधर तो देखो, तुम्हारे बिना हम कितने व्याकुल हैं, उठो, कुछ शाति तो दो।

राजा और रानी पुत्र—शोक मे इतने विह्वल हो गए कि विलाप करते—करते उन्हे मूर्छा आ गई। लेकिन यह स्थिति अधिक समय तक न रह सकी और तत्काल ही, वह शीतलमद पवन के झोको से दूर हो गई एव पुत्र—शोक के दु ख ने पुन घेर लिया और विलाप करने लगे।

विलाप करते—करते राजा कहने लगे—प्रिये तारा! अब हम लोग ससार मे किस आशा से जीवित रहे? आज तक तो यह आशा थी कि रोहित बडा होकर हमारे दु ख दूर करेगा, हमे दासत्व से मुक्त करेगा। परन्तु आज तो यह आशा भी टूट चुकी है। इसी रोहित के सहारे मै प्रसन्नतापूर्वक भगी का सेवक बना हुआ था और तुम ब्राह्मण के यहा दासीपना करती थी, परन्तु आज तो यह आशा का तार टूट गया है। अब हम लोगो को ससार मे रहने से क्या लाभ है? क्यो दिन—रात पुत्र—शोक के दु ख मे जले? इसलिए यही उचित है कि हम लोग भी प्राण त्याग कर रोहित का अनुसरण करे। लेकिन उससे पहले यह उचित है कि हम लोग अपने जीवन की आलोचना कर डाले कि उसमे कही किसी प्रकार की कोई भूल तो नही हुई हे।

सासारिक मनुष्य जब दु ख से घबरा उठते हैं तो वे दु ख से मुक्त होने के लिए आत्मघात का उपाय विचारते हे ओर समझते हे कि ऐसा करने से हम दु ख—मुक्त हो जाएगे। इसी के अनुसार राजा ओर रानी ने भी आत्मघात करने का विचार किया ओर दोनो अपने—अपने जीवन की आलोचना करने लगे। आलोचना करते हुए राजा को ध्यान आया कि मे अपनी छोटी—छोटी गलतियो की तो आलोचना कर रहा हू परन्तु उनमे जो सबसे महान भूल हो रही हे, वह मुझे दिखाई ही नही देती हे। मे बिका हुआ दास हू, दूसरे का दास हू। मालिक ने मुझे श्मशान मे रहकर शव को लेकर आने वालो से कर वसूल करने के वाद अत्येष्टि क्रिया करने देने की आज्ञा दे रखी हे। तो फिर मुझे आत्मघात करने का क्या अधिकार हे? रानी भी दूसरे के यहा दासी हे

और उसे भी क्या अधिकार है जो वह मेरी आज्ञा मानकर आत्मघात करे? इसके सिवाय आत्मघात करना घोर पाप है। इसलिए हमे दोनो प्रकार से शरीर–नाश करने का अधिकार नही है। ओह! आत्मघात और विश्वासघात ये दोनो ही महापाप है।

मन मे यह विचार आते ही राजा खडे हो गए और तारा से कहने लगे–अभागिनी तारा! हम लोग तो मरने के लिए भी स्वतन्त्र नही हैं। हम दोनो दूसरे के खरीदे हुए दास हैं। इस प्रकार दुःख से व्यथित होकर आत्मघात करना ओर खरीददारो को धोखा देना, अपना धर्म नही है। अतएव मरने का विचार त्याग कर धैर्यपूर्वक इस कष्ट को सहन करते हुए अपने–अपने कर्तव्य पर दृढ रहे।

पति की बात सुनकर तारा भी बोली–नाथ! आप जैसे विचारो के कारण ही मै रोहित की मृत्यु के समय भी प्राण–त्याग न कर सकी थी, अन्यथा अब तक तो मैं कभी की रोहित का अनुकरण कर चुकी होती। परन्तु दुःखावेश मे पुनः मुझे यह ध्यान न रहा और आपके साथ आत्मघात करने के लिए तैयार हो गई। लेकिन अच्छा हुआ कि आप के विचार मे यह बात आ गई, जिससे हम लोग आत्मघात के पाप से भी बच गए और खरीददार के साथ विश्वासघात करने के विचार से भी।

26. अन्तिम कसौटी

राजा और रानी ने मरने का विचार तो त्याग दिया ओर अब पुन उनके सामने रोहित के जलाने की समस्या आ खडी हुई। राजा कहने लगे–तारा, जो होना था, सो हो चुका, अब कर का एक टका दो, जिससे रोहित का अग्नि–सस्कार कर सके। मेरे मालिक की आज्ञा है कि बिना कर लिए शव को जलाने के लिए लकडी न दी जाए।

तारा–नाथ! आप कर किससे माग रहे हे? क्या दु ख के कारण आप अपने आपको भी भूल गए? यदि नही तो फिर मुझ से कर केसे माग रहे हैं? मे आपकी अर्द्धांगिनी हू और यह शव आपके प्राणो से भी अधिक प्रिय पुत्र रोहित का है। न मालूम मैं किन–किन कष्टो को सहन करते हुए इस शव को यहा तक ला पाई हू और अब इसके पिता होने के कारण आपका कर्तव्य हे कि आप इसका अन्तिम सस्कार करे। लेकिन उसकी जगह आप मुझसे ही कर माग रहे हैं। नाथ! क्या आपसे कोई बात छिपी है जो आप मुझसे कर का एक टका मागे, यह कहा का न्याय हे?

ऐसी विकट परिस्थिति मे पडकर साधारण–जनो का धैर्य छूट जाता है, परन्तु जो महापुरुष हे वे कठिन–से–कठिन समय आने पर भी अपने धेर्य को नही छोडते हैं। इसीलिए कहा हे–

कदार्थितस्यापि हि धैर्यवृत्ते न शक्यते धैर्यगुण प्रमार्ष्टुम्।
अधोमुखस्यापि कृतस्य वन्हे–नघ शिखा याति कदापि देव।।

धैर्यवान पुरुष घोर दु ख पडने पर भी अपने धेर्य को नही छोडते। जैसा कि अग्नि को उल्टी कर देने पर भी उसकी शिखा ऊपर को ही रहती हे नीचे की ओर नही जाती।

तारा की बात सुनकर भी हरिश्चन्द्र धेर्य से विचलित नही हुए ओर कहने लगे–तारा, तुम्हारा कथन अनुचित नही है, परन्तु यह बताओ कि तुम ब्राह्मण के यहा दासीपना क्यो कर रही हो?

तारा –सत्य और धर्म की रक्षा के लिए।

हरिश्चन्द्र–तो फिर जिस सत्य की रक्षा के लिए राज्य छोडा, मजदूरी की, तुम ब्राह्मण के यहा दासी और मै भगी के यहा दास बना एव जिस सत्य के लिए इतने कष्ट सहे, क्या उसको केवल एक टके के लिए चला जाने दे? जब तुमने एक सहस्र स्वर्ण–मुद्राओ के समय धर्म छोडने को नही कहा, तो क्या उसी धर्म को केवल एक टके के वास्ते छोड देने के लिए कहती हो? मुझे मेरे मालिक की आज्ञा है कि बिना कर लिए श्मशान की लकडी से किसी शव का अग्नि–सस्कार न होने दिया जाए, तो फिर चाहे मेरा पुत्र हो या दूसरा, मैं बिना कर लिए कदापि लकडी नही लेने दूगा। ऐसी दशा मे मै तुम्हारे या पुत्र के मोह मे पडकर बिना कर लिए कैसे अग्नि सस्कार कर दू? ऐसा करने से क्या धर्म नही जाएगा? तुमने ही तो शिक्षा दी थी कि सत्य की प्राणपण से रक्षा करनी चाहिए और आज ऐसा कहती हो। तुम्हारी शिक्षा के कारण ससार का कोई भी पदार्थ मुझे सत्य से विचलित करने मे समर्थ नही हो सका। ये सासारिक पदार्थ अनित्य और सत्य नित्य है। अत कोई भी बुद्धिमान नित्य को छोडकर अनित्य को अपनाने की मूर्खता नही कर सकता है। यदि इस समय मै केवल एक टके के लिए कर्तव्य–विमुख हो जाऊ तो सत्य की राक्षा के लिए अब तक जो कष्ट सहे है, क्या वे निष्फल नही हो जाएगे? कष्ट सहकर भी जिस सत्य की रक्षा की है और बडी–से–बडी विपत्ति मे भी जब हम लोग नही घबराए तो अब इस एक टके की बात से घबराकर सत्य को त्याग देना कैसे उचित होगा? तारा! तुम्हारी रक्षा करना और पुत्र का अन्तिम सस्कार करना मेरा कर्तव्य है, तथापि मै विवश हू। कर वसूल किए बिना शव जलाने देने का मुझे कोई भी अधिकार नही है, इसलिए बिना कर दिए जलाने की आशा छोडो और उसके चुकाने का कोई न कोई उपाय करो।

कहा तो आज के वे लोग हैं जो थोडे से लोभ मे पडकर दिन–दहाडे लोगो की आखो मे धूल झोकते है और बात–बात मे झूठी सौगन्धे खा–खाकर सत्य का त्याग करते हे और कहा वे सत्यवादी महाराज हरिश्चन्द्र, जो अपनी स्त्री पर भी दया करके सत्य छोडकर बिना कर लिए ही पुत्र को जलाने की स्वीकृति नही देते। कहा तो आज के वे लोग सच को झूठ ओर झूठ को सच बता देते हे। मालिक तो क्या अपने ही स्त्री–पुत्र और धर्म को भी धोखा देने मे नही हिचकिचाते ओर कहा हरिश्चन्द्र है जो इस विपदावस्था मे भी मालिक के उचित कर को नही छोड रहे है। इस अन्तर का कारण केवल सत्य पर

विश्वास न होना और होना है। आज के ऐसे लोग जिन्हे सत्य पर विश्वास नही है, विचारते हैं कि यहा कौन देख रहा हे? या हमारे झूठ को कोन समझ सकता है? परन्तु हरिश्चन्द्र को विश्वास था कि सत्य सर्वत्र व्यापक हे, वह किसी समय भी छिपाने से नही छिप सकता और इसे छिपाने की चेष्टा करना भी पाप है।

आज की अधिकाश स्त्रियो के विचारानुसार हरिश्चन्द्र के उपर्युक्त कथन पर तारा को दु ख होना स्वाभाविक था। परन्तु तारा के विचार उनके विचारो से सर्वथा विपरीत थे। उन्हे सत्य उसी प्रकार प्रिय था, जेसा कि हरिश्चन्द्र को था। वे महान् से महान् दु ख मे भी अपने स्वार्थ के लिए पति से सत्य छोडने का आग्रह करना न जानती थी।

पति की बात सुनकर तारा कहने लगी–आपका कथन यथार्थ हे। किन्तु दु ख की अधिकता से मेरी बुद्धि अस्थर थी, इसलिए मेंने बिना कर लिए पुत्र का अग्नि–सस्कार करने की प्रार्थना की थी। मालिक की आज्ञा–पालन करना, व आपका कर्तव्य पर स्थिर न रहना ही धर्म का त्याग हे। अतएव आप मालिक की आज्ञा का उल्लघन न कीजिए। परन्तु मेरे पास तो कर देने के लिए टका नही है, तो क्या पुत्र का शव बिना जलाए यो ही पडा रहेगा?

हरिश्चन्द्र–प्रिये! तुम्ही विचारो कि बिना टका दिए अग्नि–सस्कार कैसे हो सकता है? सौभाग्य से मालिक यहा आ जाए ओर बिना कर लिए अग्नि–सस्कार करने की स्वीकृति दे दे, तो दूसरी बात है, अन्यथा अग्नि–सस्कार होना सर्वथा असम्भव है।

राजा का उत्तर सुनकर तारा को दु ख हुआ ओर वे पुन रुदन करती हुई कहने लगी–हाय! आज ऐसा दुर्भाग्य हे कि एक टके के बिना शव यो ही पडा रहेगा। जिसके जन्मोत्सव मे हजारो–लाखो रुपये व्यय किये गए थे, आज उसी की मृत्यु होने पर ईन्धन के लिए एक टका भी नही हे कि जिसे देकर अग्नि सस्कार कर सकू।

सहसा रानी को ध्यान आया कि इस प्रकार विलाप करने से तो अग्नि–सस्कार नही हो सकता हे ओर न कहीं से किसी प्रकार की सहायता मिलने की ही आशा हे। अत मेरे पास यह जो पहनने की साडी हे, क्या उसमे से आधी साडी एक टके के मूल्य की न होगी? क्यो न इसमे से आधी साडी एक टके के वदले देकर अपने पुत्र का अग्नि–सस्कार कर दू। यदि ब्राह्मण मुझे कोई दूसरा वस्त्र दे देगे तव तो अच्छा ही है, अन्यथा आधी साडी से ही

मै अपना तन ढाके रहूगी। लेकिन पुत्र के शव को बिना अग्नि–सस्कार किए पडे रहने देना, मातृ–कर्तव्य के विरुद्ध है।

ऐसा विचार कर रानी ने आधी साडी फाडी और राजा से कहने लगी–आप एक टका कर के बदले यह वस्त्र ले लीजियेगा, जो एक टके से अधिक मूल्य का है। अब तो आपको अग्नि–सस्कार करने मे किसी प्रकार की भी आपत्ति नही होगी?

साधारण मनुष्य का ऐसी अवस्था मै सत्य से विचलित हो जाना आश्चर्य की बात नही है, लेकिन हरिश्चन्द्र तो असाधारण पुरुष थे जो इस दशा मे भी सत्य से विचलित न हुए।

रानी की बात सुनकर राजा बोले– तुम्हारे समान स्त्री वास्तव मे धन्य है जो सत्य की रक्षा के लिए अपने पहने हुए वस्त्र मे से भी आधा फाडकर दे देने मे सकोच नही करती। अब मुझे अग्नि–सस्कार करने मे किसी प्रकार की आपत्ति नही है।

जैसे ही 'लीजिए नाथ, यदि लज्जा ढाकने का वस्त्र सत्य की रक्षा के लिए न दूगी तो फिर कब दूगी कहकर रानी वस्त्र देने लगी और राजा ने लेने के लिए हाथ बढाया कि आकाश मे दिव्य प्रकाश प्रकट होने के साथ ही देवदुन्दुभि बजने लगी, पुष्प–वर्षा होने लगी और देवगण दोनो के जयघोष के साथ–ही–साथ कहने लगे–आपके सत्य–पालनके व्रत को, आपके माता–पिता को, आपके मनुष्य जन्म को, आपके धैर्य और साहस को तथा धर्मभीरुता को धन्य है। घोर अन्धेरी रात मे भी अन्य किसी की अनुपस्थिति मे ओर अपने पुत्र के अग्नि–सस्कार के कार्य मे भी सत्य पर दृढ बना रहे, ऐसा मनुष्य आपके अतिरिक्त और कौन हो सकता है? कौन ऐसी स्त्री होगी जो ऐसे विकट समय मे भी अपने पति से धर्म छोडने का आग्रह न करे।

आकाश से प्रकाश, पुष्पवृष्टि और शब्दो को सुनकर राजा–रानी आश्चर्य–चकित रह गए। उसी समय एक दिव्य देहधारी देव उनके निकट आकर खडा हो गया। यह वही देव था जिसने हरिश्चन्द्र को सत्य–भ्रष्ट करने की प्रतिज्ञा की थी। इस देव ने ही इन्हे इतने कष्ट मे डाला था और अपनी माया से रोहित को निर्जीव–सा कर दिया था। लेकिन जब इस अन्तिम कसौटी मे भी राजा को सत्य पर दृढ देखा तो उसका अभिमान गलित हो गया। वह दीन हो अपने किए पर पश्चात्ताप करने लगा। आते ही सबसे पहले उसने रोहित पर से अपनी माया हटाई जिससे वह उठकर उसी प्रकार खडा हो गया जैसे अभी सोकर उठा हो।

अपने निकट एक दिव्य देहधारी देव को खडा तथा रोहित को पूर्ववत् जीवित देखकर राजा और रानी का आश्चर्य और अधिक बढ गया। वे समझ न सके कि यह सब क्या हो रहा है। इतने मे ही वह देव विनीत होकर राजा और रानी से कहने लगा—आप मुझ पर दया करके मेरा अपराध क्षमा कीजिए।

देव को इस प्रकार क्षमा मागते देख उनके आश्चर्य का ओर भी ठिकाना न रहा। राजा ने देव से कहा—मै नही जानता कि आप कोन हे ओर ऐसा कोन—सा मेरा अपराध किया है कि जिसकी आप क्षमा माग रहे हैं, कदाचित आपने अपराध किया हो, तो भी मुझे आप पर किसी प्रकार का क्रोध नही हो सकता है।

राजा की बात सुनकर देव ने अपना परिचय देते हुए कहा—महाराज! इन्द्र की सभा मे आपके सत्य की प्रशसा सुन मुझे अपने स्वभावानुसार क्रोध हो आया। मैने विचार किया कि इन्द्र हम देवो के सामने एक मनुष्य की प्रशसा कैसे करते है और वह प्रशसा मुझे असह्य हो उठी एव आप को सत्यभ्रष्ट करने की प्रतिज्ञा कर ली। उसकी पूर्ति के लिए ही मैंने देवागनाओ को भेजकर विश्वामित्र का उपवन ध्वस कराया था ओर उसके द्वारा विश्वामित्र को कुपित कराकर आप लोगो को कष्ट मे डाला था। रोहित को भी मैने सर्प बनकर डसा था एव माया से निर्जीव—सा कर दिया था। ये सब कार्य मेंने तो आपको सत्य से विचलित करने के लिए ही किए थे परन्तु आप इस घोर दु ख के समय भी विचलित नही हुए। मै आपकी सत्यवीरता को समझ चुका हू। मेने अज्ञानवश आपको जो कष्ट दिए हैं, उनके लिए क्षमाप्रार्थी हू। यदि आप मेरे अपराधो को क्षमा नही करेगे तो मेरी आत्मा को कभी शाति नही मिलेगी।

अत्याचार की भी एक सीमा होती हे। लेकिन उसके बाद तो वह स्वय अत्याचारी को ही दु ख देने लगता हे। जिस अत्याचार का प्रतिकार सहनशीनता द्वारा किया जाता हे, वह अत्याचारी के लिए ही दु ख देने वाला बन जाता हे। देव ने हरिश्चन्द्र को अनेक कष्ट दिये, उन पर बडे से बडे अत्याचार किये परन्तु हरिश्चन्द्र उन अत्याचारो को धेर्यपूर्वक सहन करते रहे। यही कारण हे कि वह अत्याचारी देव स्वय अपने अत्याचारो का स्मरण करके आप ही जला जा रहा था ओर हरिश्चन्द्र से बार—बार क्षमा प्रार्थना कर रहा था।

देव की बात सुनकर राजा–रानी को बहुत प्रसन्नता हुई। राजा ने कहा–मेरे क्षमा करने से यदि आपको शाति मिलती हे, तो मै आपको क्षमा करता हू। लेकिन आप जिन कार्यो के लिए मुझसे क्षमा चाहते हें, उनके करने से आप मेरे अपकारी नही, किन्तु उपकारी ही हैं। यदि आप परीक्षा न करते तो मुझे ज्ञात नही होता कि में कहा तक सत्य का पालन कर सकता हू। आपने मेरी परीक्षा के लिए जो कष्ट उठाया, उसके लिए आभारी हू।

देव–आपका यह कथन भी आपकी महानता का परिचायक है, लेकिन वास्तव मे उपकारी मै नही आप है। यदि आप इन कष्टो को सहन न करते तो मुझे जो अभिमान था वह भी नष्ट नही होता और सत्य पर भी मुझे अश्रद्धा हो जाती। मैने अभिमानवश इन्द्र को भी कुछ नही समझा लेकिन आपने कष्ट सहन करके मेरे उस अभिमान को नष्ट कर दिया है। आपने जो कष्ट सहे है, वे सब मेरे उपकार करने के लिये ही सहे हैं। मैं आया तो था आपको कष्ट देने, लेकिन मैं उसी प्रकार शुद्ध हो गया हू जैसे पारस के स्पर्श से लोहा कुन्दन बन जाता है। आपके क्षमा करने से मेरा अज्ञान भी मिट गया और मेरी आत्मा भी पवित्र हो गई।

27. विश्वामित्र का आत्म–निरीक्षण

महाराज हरिश्चन्द्र के काशी चले जाने के बाद अयोध्या की दु खी प्रजा विवश होकर नगर मे लौट आई। इस समय सबके मुख पर उदासी छाई हुई थी और आखो से आसू बह रहे थे। जो नगर कल तक रमणीय दिखलाई देता था, आज वह भयकर जान पडता था। वहा के प्रसन्न हस–मुख निवासी आज चिन्तित और दु खित दिखलाई पड रहे थे। जो बाजार व्यापारियो से भरे रहते थे, वहा आज प्रजा के झुड–के–झुड एकत्रित हो दु ख की चर्चा करते थे। महाराज हरिश्चन्द्र के चले जाने से प्रजा दिन–रात चिन्ता मे निमग्न रहने लगी। उसे न तो कोई दूसरा कार्य सूझता था और न करने मे ही मन लगता था।

प्रजा मे मुखिया माने जाने वाले महानुभाव एक तो वेसे ही महाराज हरिश्चन्द्र के चले जाने से दु खी थे ओर उस पर भी जब प्रजा की यह हालत देखी तो अधिक चिन्तित हो उठे। वे विचारने लगे कि यदि प्रजा की यही दशा रही तो जीवन भाररूप हो जाएगा। अत महाराज हरिश्चन्द्र के चलते समय दिये गए उपदेश के अनुसार हमारा कर्तव्य हे कि प्रजा की इस चिन्ता को दूर कर के इसे अपने कर्तव्य पर पुन आरूढ करे।

ऐसा विचार कर वे मुखिया प्रजा को समझाने लगे। उन्होंने महाराज हरिश्चन्द्र के उपदेश की ओर प्रजा का ध्यान आकर्षित किया ओर कहा कि यदि इस प्रकार चिन्ता करके आप लोग प्राण भी छोड देगे, तब भी कोई लाभ होने वाला नहीं हे। अत यही उचित हे कि महाराज हरिश्चन्द्र के आदर्श रहकर जीवन व्यतीत करे।

मुखियों के समझाने–बुझाने पर प्रजा का कुछ ढाढस बधा। विश्वामित्र हरिश्चन्द्र के प्रति प्रजा के सद्भावा को मिटान अ जताने के लिए निरकुश शासन करन लग। इसस सभासद

ओर शासन का प्रतिकार करने के लिए उन्होने एक प्रजा–परिषद स्थापित की जो विश्वामित्र द्वारा प्रचलित कठोर नियमो का विरोध करती एव सत्याग्रह द्वारा उन नियमो को कार्यरूप मे परिणत नही होने देती थी। प्रजा के इस कार्य से विश्वामित्र की झुझलाहट दिनोदिन बढने लगी एव अपना आतक जमाने के लिए विशेष अत्याचार करने लगे। प्रजा उनके अत्याचारो को धैर्यपूर्वक सहन करती रही। उसने न तो अपने सत्याग्रह को त्यागा और न विश्वामित्र के ऐसे कार्यो मे सहयोग ही दिया। विश्वामित्र अपना प्रभाव जमाने के प्रयत्नो मे निरन्तर असफल होते रहे।

यद्यपि विश्वामित्र अन्तरग मे तो प्रजा की सराहना करते थे, परन्तु अपनी हठ पूरी करने के लिए प्रकट मे प्रजा के प्रति अन्याय करते रहते थे। कभी–कभी वे बहुत ही पश्चात्ताप करने लगते कि मैने यह क्या किया? कहा से अपने आपको इस जजाल मे फसा लिया और जैसे–जैसे इससे निकलने की चेष्टा करता हू, वैसे–ही–वैसे और भी फसता जा रहा हू। मुझे क्रोध करने का फल पूर्णरूप से मिल रहा है। यदि अपने ऊपर क्रोध का आधिपत्य न होने देता तो आज मेरी यह दशा क्यो होती और प्रतिष्ठा को हानि पहुचती?

चाहे जैसा अन्यायी मनुष्य हो, परन्तु उस पर सत्य का प्रभाव पडे बिना नही रह सकता है। हरिश्चन्द्र के सत्य से प्रभावित होकर विश्वामित्र स्वय अपने लिए पश्चात्ताप करते थे कि मैंने हरिश्चन्द्र के साथ बहुत ही अन्याय किया है। उसको सत्य से विचलित करने के लिए तो मैने अपनी तपस्या का सम्पूर्ण बल लगा दिया, फिर भी मै उसे सत्य से भ्रष्ट नही कर पाया, वह अपने सत्य से विचलित नही हुआ। अवश्य ही वह महान पुरुष हे। ऐसे महान पुरुष के प्रति मेरे द्वारा किया गया व्यवहार नितात निंद्य है। प्रजा पर अपने द्वारा किए जा रहे अन्याय का भी उन्हे समय–समय पर पश्चात्ताप हो ही जाता था।

जब विश्वामित्र किसी भी प्रकार से प्रजा के हृदय पर अपना आधिपत्य न जमा सके तो निराश हो गए और विवश होकर उन्होने प्रजा को राजसभा मे आमन्त्रित किया। प्रजा के आ जाने पर वे कहने लगे–मेंने आपके राजा को तथा आप लोगो को बहुत ही कष्ट दिया हे। आपके राजा की राज–परिवार की ओर आप लोगो की सहनशीलता प्रशसनीय हे तथा में अपने कार्यो के लिए हृदय से पश्चात्ताप करता हू एव आप लोगो से क्षमा चाहता हू। अब मै राज्य–कार्य छोडकर आप लोगो के प्रिय राजा की खोज मे जा रहा हू। जिन्हे आप पुन राजा बनाकर प्रसन्नता से रहे।

विश्वामित्र की इन बातो को सुनकर पहले तो प्रजा को विश्वास नहीं हुआ। परन्तु बार-बार विश्वास दिलाने पर प्रजा विश्वामित्र के विचारो की प्रशंसा कर के उन्हे धन्यवाद देने लगी।

महाराज हरिश्चन्द्र को पुन राज्यासन पर आरूढ करने की अपनी अभिलाषा को कार्यरूप मे परिणत करने के विचार से विश्वामित्र अयोध्या से काशी की ओर चल पडे। मार्ग मे उनके हृदय मे अनेक सकल्प-विकल्प होते जा रहे थे कि मेरी प्रार्थना पर महाराज हरिश्चन्द्र अवध लौट आएगे या नहीं? किन्तु जैसे भी होगा, वैसे उनको लाऊगा अवश्य। यह निश्चय कर के विश्वामित्र अपने मार्ग पर बढते ही चले गए।

28. श्मशान में समारोह

हरिश्चन्द्र द्वारा अपने कष्टदाता देव को क्षमा करते ही आकाश मे पुन हरिश्चन्द्र–तारा के जयघोष के साथ देवदुन्दुभि बजने लगी। देखते–देखते श्मशान मे इन्द्र सहित देव–देवियो का समूह एकत्रित हो गया। उन्होने उसी समय हरिश्चन्द्र, तारा तथा रोहित को स्नान कराकर वस्त्राभूषणो से अलकृत किया ओर मध्य मे रखे हुए सिहासन पर ससम्मान आसीन कर स्तुति करने लगे।

कुछ देर पहले जो हरिश्चन्द्र और तारा अपने प्रिय पुत्र के शोक से दु खित थे और दासत्व से मुक्त होने की जिन्हे आशा तक न थी, यदि ऐसे समय मे वे अपने सत्य पर स्थिर न रहते और बिना कर लिये–दिए पुत्र का अग्नि–सस्कार करने को तैयार हो जाते तो यह प्रकाश, आनन्द और सम्मान प्राप्त न होता। साराश यह हे कि जो कुछ हो रहा है वह सब सत्य–पालन मे होने वाले कष्टो को धैर्यपूर्वक सहने और भयभीत होकर सत्य न छोडने का ही परिणाम हे।

इसलिए सत्य–पालन मे चाहे कष्ट सहने पडे परन्तु उनको धैर्य–पूर्वक सह लेने ओर सत्य से विचलित न होने से जो आनन्द प्राप्त होता हे, वह झूठ द्वारा प्राप्त अस्थाई आनद से असख्य गुणा बढकर है, उन दोनो की तुलना नही की जा सकती है। सत्य–पालन करने वाले के कष्ट भी सदा नही रहते। वे क्षण भर के बाद ही सुखरूप मे परिणत हो जाया करते हें। इसके लिए भर्तृहरि ने कहा हे–

पतितोऽपि कराघातैरुत्पतत्येव कन्दुक ।
प्रायेण साधुवृत्तानामस्थायिन्यो विपत्तय ।।

जिस तरह हाथ से गिरने पर गेंद ऊपर ही उछलती हे उसी प्रकार न्यायवृत्ति पर चलने वाले मनुष्य भी आपत्ति मे गिरकर ऊपर की ओर ही उठते हैं।

यह परिवर्तन देखकर हरिश्चन्द्र ने तारा से कहा– प्रिये तारा! आज जो कुछ तुम देख रही हो, वह सब तुम्हारी ही कृपा का फल है! यदि तुम मुझे उस विषय–कूप से न निकालती और साथ न देती तथा स्वय बिककर मेरे लिये आदर्श उपस्थित न करती तो निश्चय ही में सत्य से पतित हो गया होता एव सत्यपालन करने से प्राप्त होने वाले आनन्द को हम कदापि नहीं पा सकते थे।

उत्तर मे तारा ने कहा–नाथ, इसमे मेरी कुछ भी विशेषता नहीं है। जो कुछ भी मैंने किया, वह अपने कर्तव्य से अधिक कुछ नही किया हे। यदि आप राज्य का दान कर दक्षिणा देने का वचन न देते तो मुझे यह आनन्द कहा से प्राप्त हो सकता था?

श्मशान मे अभूतपूर्व प्रकाश देख और कोलाहल सुनकर नगरनिवासी आश्चर्य–चकित हो कहने लगे कि आज यह क्या बात है? बहुतेरे इसके देखने के लिए दौडे। महाराज हरिश्चन्द्र का मालिक भगी भी दौडा आया कि आज श्मशान मे यह क्या गडबड है। भगी पर दृष्टि पडते ही हरिश्चन्द्र सिहासन से उतर पडे और उसका सत्कार करते हुए उन्होने कहा कि मालिक, यह सब आपका ही प्रताप हे। यदि आप मुझे खरीदकर सत्य की रक्षा न करते तो यह सब कैसे हो सकता था?

भगी हाथ जोडकर कहने लगा–आप मुझे क्षमा कीजिए। आपके साथ मैने तथा मेरी स्त्री ने बहुत अभद्र व्यवहार किया है। मैं उस पाप से दबा जा रहा हू। अत आप मुझे क्षमा करके मेरा और मेरी स्त्री का उद्धार कीजिए।

राजा–नही, आप ऐसा न कहिए। आपने सदेव सह्रदयता का व्यवहार किया हे। यदि मालकिन की कृपा से मुझे श्मशान–रक्षा का कार्य न मिला होता तो यह सब देखने को कहा से मिलता?

सज्जन अपकारी के अपकार को तो भूल जाते हे, परन्तु उपकारी के उपकार को नही। इसलिए देवताओ से सेवित होने पर भी हरिश्चन्द्र ने भगी को अपना उपकारी मानकर उसके सन्मुख नम्रता ही प्रगट की।

महाराज हरिश्चन्द्र ने सब देवो से भगी का परिचय कराते हुए कहा कि ये मेरे मालिक हे जिसकी कृपा से में सत्य–पालन मे समर्थ हो सका हू जब मेरा मूल्य न लगने के कारण मे सत्य–भ्रष्ट हो रहा था खरीदकर मेरे सत्य की रक्षा की थी। में आपकी जितनी भी प्रश थोडी हे। आपके उपकार से मे कभी भी उऋण नही हो सक

हरिश्चन्द्र की बात सुनकर सब देवो ने भगी की बहु आर सत्कार किया।

बात—की—बात मे सारे नगर मे यह खबर फैल गई कि अयोध्या के राजा हरिश्चन्द और रानी तारा आज श्मशान मे प्रकट हुए है। काशीनरेश भी श्मशान की ओर चले। वे मन ही मन पश्चाताप करने जाते थे कि महाराज हरिश्चन्द इतने दिन यहा रहे और मुझे इसका पता भी न लगा। मेरे लिए यह कितनी लज्जा की बात है।

महारानी तारा का खरीददार ब्राह्मण भी चिन्ता मे था कि दासी अब तक क्यो नही लौटी? कही वह मर या भाग तो नही गई? इतने मे उसने भी श्मशान मे हो रही घटना की खबर सुनी और 'एक पथ दो काज' कहावत का विचार कर वह भी श्मशान मे आया कि चलो, वहा हरिश्चन्द्र तारा को भी देख लूगा तथा दासी को भी खोज करता आऊगा। यहा आकर जब उसने देखा कि दासी तो सिहासन पर रानी बनी बैठी है तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वह मन ही मन पछताने लगा कि अवध की महारानी ही मेरे यहा दासी बनकर रहती थी। मैने उनसे बहुत ही निकृष्ट सेवाए कराई और कठोर व्यवहार किया है। अब मै कैसे उनको अपना मुह दिखला सकूगा?

उधर रानी भी चिन्तित थी कि मालिक ने मुझे कुछ ही समय का अवकाश दिया था और यहा आकर इस झझट मे फस जाने से काफी समय हो गया है। न मालूम मालिक क्या कहेगे? इतने मे रानी की दृष्टि ब्राह्मण पर पडी और हाथ जोडकर उससे कहने लगी—महाराज, मेरा अपराध क्षमा कीजिए। मै झझट मे पड गई इसी कारण अब तक नही आ सकी।

उत्तर मे ब्राह्मण तारा के पैरो मे झुककर कहने लगा— महारानी जी, मैंने जो अज्ञानवश आपसे दासी का काम कराया और निकृष्ट सेवाए लीं तथा कठोर व्यवहार किया, उनके लिये आप मुझे क्षमा कीजिए। मै बडा लज्जित हू।

ब्राह्मण को उठाते हुए तारा कहने लगी—आपने मुझ पर बडी कृपा की है। आपकी कृपा से ही मै अपने पति का आधा ऋण चुका सकी थी। यदि उस समय आप न होते तो निस्सन्देह ही मेरे पति सत्य से भ्रष्ट हो गये होते। आपकी वह कृपा कभी भूलने जैसी नहीं है।

यद्यपि ब्राह्मण ने तारा के साथ बहुत ही दुर्व्यवहार किया था लेकिन उन्होने उसका जिक्र तक नही किया और प्रशसा ही करती रही। सज्जनो मे यह स्वाभाविक गुण होता है कि दुर्व्यवहार पर नही बल्कि सद्व्यवहार पर ही ध्यान देते है। लेकिन दुर्जन मनुष्यो की दृष्टि सदैव दुर्व्यवहार पर ही रहती है।

रानी द्वारा प्रगट किये गये कृतज्ञता–पूर्ण भावो को सुनकर देवो ने ब्राह्मण की प्रशसा करते हुए उसका भी आदर–सत्कार किया।

वे सेठ–साहूकार भी अपने पूर्व–कृत व्यवहार का स्मरण कर बहुत ही लज्जित हुए और पश्चात्ताप करते हुए महाराज हरिश्चन्द्र से क्षमा मागने लगे। महाराज हरिश्चन्द्र ने उन्हे सात्वना देते हुए कहा कि–आप लोगो का कोई अपराध नही है। आप लोग साधारण बुद्धि से पहचानने वाले हैं ओर वैसी स्थिति मे बिना परिचय प्राप्त किए मुझे कैसे पहचान सकते थे? यदि इस पर भी आप अपने को अपराधी समझते हैं तो इसका प्रायश्चित्त यही हे कि भविष्य मे अपने यहा आये हुए किसी भी दीन–दु खी का अपमान न करके उसका दु ख दूर करने की चेष्टा कीजिए।

काशी–नरेश भी महाराज हरिश्चन्द्र के निकट पहुच कर कहने लगे कि– मे ऐसा हतभाग्य नरेश हू कि आपने इतने दिनो नगर मे रहकर कष्ट उठाए लेकिन मुझे इसकी खबर तक नही हुई। आप मेरे अपराध को क्षमा कीजिए ओर कृपा कर बताइए कि क्या प्रायश्चित्त करू।

हरिशचन्द्र ने काशी नरेश का सत्कार करते हुए कहा– आप अकारण ही पश्चात्ताप करते हे। यदि मेरे आने की सूचना आपको मिली होती तो आप अवश्य ही मुझसे मिलते। लेकिन जब मेने किसी को अपना परिय ही नही दिया तो वेसी स्थिति मे आपका क्या अपराध हे? परिचय देने से तो आप मेरा ऋण चुकाकर मुझे अपना अतिथि बनाते ओर तब आज आप जो कुछ देख रहे हे, वह रचना केसे होती? इसलिए आप किसी प्रकार का खेद न कीजिए। यदि खेद की कोई बात हो तो यह हो सकती हे कि जिस काशी की पवित्र भूमि मानी जाती हे जिस काशी मे आकर मैंने लाभ उठाया, जहा मैं अपने सत्यपालन मे समर्थ हो सका हू, यदि वही के आप लोग निवासी होकर सत्य का पालन न करे। काशी की भूमि तभी लाभदायक मानी जा सकती हे जब यहा सत्य का पालन हो। यदि केवल यहा रहने का ही महत्व होता तो फिर मुझे बिकने की क्या आवश्यकता थी? वास्तव मे किसी क्षेत्र–विशेष का महत्व नहीं हे, अपितु चारित्र का महत्व हे। अन्य क्षेत्र म रहकर भी जो चारित्रवान हैं उनके लिए वह भूमि भी काशी की भूमि स विशेष लाभप्रद हे। लेकिन यहा रहकर भी जा चारित्र का पालन नहीं करता उसक लिए सभी भूमि समान हे। अत सत्यपालन द्वारा इस भूमि स लाभ उठाइए आंर राज्य के धन का प्रजा की धरोहर समझकर उस प्रजाहित म लगाइए तता ऐसा करत हुए अपनी आत्मा का कल्याण चिन्तन कीजिए। इस

प्रायश्चित्त से आपका खेद भी मिट जाएगा और आपको एव दूसरो को भी लाभ होगा।

इसी प्रकार महाराज हरिश्चन्द ने सभी काशी निवासियो को समझाया और कहा कि—जब मैंने अपना परिचय ही न दिया तो आप लोग अकारण ही क्यो पश्चात्ताप करते हैं? इस प्रकार राजा ने सबके हृदय को शात किया।

उसी प्रकार अयोध्या से चले हुए विश्वामित्र भी काशी आ पहुचे और श्मशान मे अद्भुत प्रकाश को देख तथा हरिश्चन्द्र तारा के जयघोष का कोलाहल सुनकर वे भी वही आए। दूर से राजा—रानी को सिहासन पर बैठे देखकर विश्वामित्र भी उनका जयघोष करने लगे। हरिश्चन्द्र ने जैसे ही विश्वामित्र को देखा तो वे तारा सहित सिहासन से उतर पडे और उन्हे प्रणाम किया। उपस्थिति उन दोनो के इस व्यवहार को देखकर आश्चर्य—चकित हो गई और लोग विचारने लगे कि ये ही वे विश्वामित्र है जिन्होने हरिश्चन्द्र को इतने कष्टो मे डाला था। परन्तु आज स्वय ही उनके जयघोष कर रहे हैं।

विश्वामित्र ने राजा और रानी से कहा कि आप सिहासन पर ही बैठिए। अब तक मैं समझता था कि मेरा क्रोध ही अपार है परन्तु इतने अनुभव के पश्चात् अब मै यह बात स्वीकार करता हू कि आप लोगो का सत्य मेरे क्रोध से भी अपार है। जो बात अब तक मैंने हठवश स्वीकार नही की थी वही बात आज आप लोगो के सत्य से पराजित होकर स्वीकार करता हू। आपने अपने सत्य और सहनशीलता द्वारा मेरे तप को पराजित कर दिया तथा साथ ही मेरे अभिमान को भी नष्ट कर दिया है। इस दुष्ट क्रोध से मेरा पीछा आप जेसे सज्जनो ने ही छुडाया है। अब तक मुझे जितने भी मनुष्यो से काम पडा, उन्होने उसको उत्तेजना ही दी थी, लेकिन आपको मै अनेकानेक धन्यवाद देता हू जो मेरे क्रोध नष्ट कराने मे समर्थ हो सके और अपने अपराधो के लिए क्षमा प्रार्थना करता हू।

विश्वामित्र की बात सुनकर सारी सभा दग रह गई कि जो विश्वामित्र अपने क्रोध के लिए प्रसिद्ध थे आज उनमे इतनी नम्रता कहा से आ गई?

विश्वामित्र की बात सुनकर हरिश्चन्द्र बोले—महाराज! आप जेसे ऋषि के लिए मुझ तुच्छ की इतनी प्रशसा करना उचित नही हे। जो कुछ भी हुआ और हो रहा है वह सब आपकी कृपा का फल है। यदि आप राज्य लेकर मुझ पर दक्षिणा का भार न डालते यदि आप अपनी दक्षिणा की वसूली मे ढील करते तो आज जो आनन्द प्राप्त हो रहा ह वह कदापि प्राप्त नही होता।

आपने तो यह सब करके मेरा उपकार ही किया हे। आपके द्वारा की गई परीक्षा से ही मैं समझ सका हू कि में सत्य का कहा तक पालन कर सकता हू। आपने मेरा उपकार करने मे जो कष्ट सहे हैं, उनसे कदापि उऋण नहीं हो सकता हू।

राजा की यह उदारतापूर्ण वात सुनकर सब लोग महाराज हरिश्चन्द्र की और अधिक प्रशसा करने लगे।

विश्वामित्र बोले–वस राजन्! क्षमा करो। अव इस प्रशसा द्वारा मुझे ओर अधिक लज्जित न करो।

हरिश्चन्द्र–महाराज, मैंने जो कुछ भी प्रार्थना की हे, वह सत्य ही की है।

विश्वामित्र–अब मेरी प्रार्थना है कि आप अयोध्या चलिए ओर राज्य को सभालकर अवध की दु खी प्रजा को प्रसन्न कीजिए।

हरिशचन्द्र–महाराज! मैंने तो वह राज्य आपको दान मे दे दिया हे और दान मे दी हुई वस्तु वापस नही ली जाती है। इसके सिवाय अव मेरी राज्य करने की इच्छा भी नही हे।

विश्वामित्र–राजन् उस समय मेने जो कुछ भी किया था वह सब क्रोधवश किया था। इसी से मेने तुमसे राज्य माग लिया था। अब तुम्ही विचारो कि यदि ऐसा न होता तो मे स्वय जो अपने राज्य को त्याग चुका था, फिर तुमसे राज्य क्यो मागता? उस समय मेरी बुद्धि अस्थिर थी, अत बुद्धि की अस्थिरता मे किये गये कार्य प्रामाणिक नही माने जाते हे। इसलिए राज्य वापिस लेने मे आपको किचित् भी सकोच नहीं करना चाहिए।

हरिश्चन्द्र–महाराज थोडी देर के लिए यदि आपकी युक्ति को मान भी लू तो भी जिस राज्य को दान मे दे चुका हू, उसे फिर नही ले सकता। क्रोध का आवेश रहा तो आपको रहा होगा ओर बुद्धि अस्थिर रही होगी तो आपकी रही होगी, लेकिन उस समय न तो मुझे क्रोध का आवेश था ओर न मेरी बुद्धि ही अस्थिर थी। अत राज्य दान का मेरा कार्य तो प्रामणिक ही माना जाएगा।

विश्वामित्र ओर हरिश्चन्द्र की उपर्युक्त वाते सुनकर वह परीक्षा लेने वाला देव कहने लगा कि–विश्वामित्र का राज्य मागने मे किचित् भी अपराध नही है। उस समय उनकी वुद्धि पर मेरी माया का अधिकार था। अत उन्होंने मेरी प्रेरणा से यह सब किया था।

हरिश्चन्द्र—आपकी बात मानता हू, परन्तु ...
अधिकार नही था। मैंने तो जो कुछ किया वह ...
अवस्था मे मे दिये दान को केसे वापस ले सकता हूं?

जब हरिश्चन्द्र ने विश्वामित्र आर उन देव ...
इन्द्रादि पमुख देव हरिश्चन्द्र से बोले— राजन्! यद्यपि ...
आकाक्षा नही है, जिस कार्य से जनता का हित हो ...
स्वीकार करोगे न?

हरिश्चन्द्र—हा, यदि मेरे कार्य से दूसरो का ...
प्राणपण से करने को तेयार हू।

इन्द्र—तो ठीक हे। आप विश्वामित्र की ...
अयोध्या तो चलिए ओर वहा की प्रजा विश्वामित्र के ...
कोई बात नही और यदि दु खी हो तो आपको शासन करना ...
आपने अभी स्वीकार किया है कि यदि मेरे किसी कार्य से दूसरो ...
हो तो मैं प्राणपण से करने को तैयार हू। अत राज्य करते ...
भोगना एक बात है और प्रजा के हित को दृष्टि मे रखकर ...
करना दूसरी बात है। इसलिये आपको प्रजा की इच्छा होने पर ...
का भार तो ग्रहण करना ही पडेगा।

इन्द्र की बात के उत्तर मे हरिश्चन्द्र ने कहा कि—मुझसे यह नहीं हो सकेगा। एक तो जिस राज्य को मे दान कर चुका हू, उस राज्य मे जाने या रहने का मुझे अधिकार ही नही हे। दूसरे, मुझे महाराज विश्वामित्र ने अयोध्या मे न ठहरने की आज्ञा दी हे। इन कारणो से मैं आपकी इस आज्ञा का पालन करने मे अपने आपको असमर्थ पाता हू।

इन्द्र—राजन्! यह तो ठीक है कि आप केवल अवध के अधिपति थे, इसलिए दान दिये हुए राज्य मे नही जाना चाहते। लेकिन यदि समस्त भूमडल के अधिपति होते ओर उस समय अपना राज्य दान कर देते तो इस प्रण का पालन केसे करते? दूसरे, राज्य मे न रहने देने की आज्ञा देने का अधिकार जिन विश्वामित्र को है तो क्या उन्हे अपनी आज्ञा वापस लेने का अधिकार नही है? फिर क्या कारण हे कि उनकी एक आज्ञा तो मानी जाये ओर दूसरी नही? इन बातो से आप अयोध्या चलने से नही छूट सकते। आपको अयोध्या चलना ही पडेगा।

हरिश्चन्द्र विचार मे पड गए कि अब मुझे क्या करना चाहिये? इतने लोगो का आग्रह न मानना मेरा हठ कहलायेगा। अन्त मे विवश होकर कहा कि–रानी और मैं बिका हुआ हू। जब तक हम अपने मालिक को पाच पाच सौ स्वर्ण मुद्राए नही चुका देते तब तक हमे चलने की बात करने का अधिकार नही है, अयोध्या चलना तो दूर रहा।

इस पर ब्राह्मण और भगी कहने लगे कि हम आपका मूल्य तो वैसे ही पा चुके है। अब आप हमारे दास नही हैं।

भगी और ब्राह्मण के मना करते रहने पर भी देवो ने उन्हे खर्च किये गये धन से कई गुना अधिक धन दिया।

इसके बाद इन्द्र की आज्ञा से तत्क्षण एक सुन्दर विमान तैयार किया गया। इन्द्र विश्वामित्र आदि के बार बार प्रार्थना करने पर महाराज हरिश्चन्द्र, महारानी तारा और कुमार रोहित सहित ब्राह्मण और भगी के प्रति कृतज्ञता प्रगट करके और उनकी स्वीकृतिपूर्वक सभी उपस्थितिजनो से विदा मागकर विमान मे बैठे तथा विश्वामित्र व इन्द्रादि के साथ अयोध्या की ओर चल दिए।

29. पुनरागमन और राज्य–शासन

अयोध्या के राज्यासन पर पुन हरिश्चन्द्र को आसीन करने के विश्वामित्र के विचारो की खबर बिजली की नाई सारे नगर मे फैल गई। समस्त प्रजा प्रसन्न हो उठी और विश्वामित्र को उनकी सुबुद्धि के लिए धन्यवाद देने लगी। सारे नगर मे यही चर्चा थी। हरिश्चन्द्र का वापस लौटना सुनकर लोग प्रसन्नता से फूले नही समाते थे। सारा नगर सजाया गया था। कही पर तो महिलाये हरिश्चन्द्र और तारा का नाम ले–लेकर मगलगीत गा रही थी तो कही पर पुरुषवर्ग हरिश्चन्द्र और तारा का जयघोष करने के साथ–साथ उनके सत्य का गुणगान कर रहे थे तथा उनके सत्य–पालन मे विजयी होने के कारण हर्षविभोर हो रहे थे। बालकगण रग–बिरगे कपडे पहने उछल–कूद मचा रहे थे। वृद्धजन अपने राजा के स्वागत की तैयारी मे जुटे हुए थे। बहुत से लोग तो ऊचे–ऊचे मकानो पर चढकर काशी के मार्ग की ओर टकटकी लगाए हुए देख रहे थे। सहसा, काशी की ओर से आता हुआ एक विमान उनको दिखलाई पडा।

शायद इसी विमान मे महाराज हरिश्चन्द्र सपरिवार हो! इस उत्सुकता से सारे नगर–निवासी काशी के मार्ग की ओर दौड चले। महिलाए बेशकीमती कपडो और आभूषणो से सजी हुई सोने के थालो मे मगलद्रव्य सजाकर हरिश्चन्द्र और तारा के मगलगीत गाती जा रही थी और पुरुष उच्च स्वर से जयघोष करते जा रहे थे।

उधर विमान मे बैठे हुए महाराज हरिश्चन्द्र इन्द्रादि सभी को अयोध्यापुरी की ओर सकेत करते हुए कह रहे थे कि यही वह अयोध्या है जिसमे जन्म लेने के लिए देवगण भी लालायित रहते हैं। मेरी दृष्टि मे अयोध्या के सन्मुख स्वर्ग भी तुच्छ है। यहा के निवासी मुझे बहुत ही प्रिय हैं। एक तो वैसे ही अयोध्या प्राकृतिक कारणो से रम्य है दूसरे इसी नगरी मे

भगवान ऋषभदेव आदि तीर्थंकरो ने जन्म धारण किया था, तीसरे यह पुरी उस लोक मे है, जहा पुण्योपार्जन के कार्य किए जा सकते हैं। इन सब कारणो से अयोध्या बहुत ही प्रशसनीय स्थल है।

महाराज हरिश्चन्द्र की बात के उत्तर मे इन्द्र कहने लगे कि–वास्तव मे अयोध्या ऐसी ही है। उसकी जितनी भी प्रशसा की जाए उतनी ही कम है। मै इन्द्र होकर भी इस अयोध्या का ऋणी हू।

इस पर बातचीत करते हुए विमान मे बैठे–बैठे सब लोग अयोध्या के निकट आए। नगार के बाहर प्रजा को एकत्रित और टकटकी लगाए देख हरिश्चन्द्र ने इन्द्र से कहा कि अब मेरा विमान मे उडना उचित नही है। प्रजा मेरी प्रतीक्षा मे भूमि पर खडी है और मैं आकाश मे रहू, यह सर्वथा अनुचित है।

इन्द्र की आज्ञा से विमान भूमि पर उतरा। विमान से महाराज हरिश्चन्द्र, महारानी तारा और कुमार रोहित के उतरते ही प्रजा ने उन पर वस्त्राभूषण न्यौछावर किए और पुष्प–वृष्टि के साथ साथ गगनभेदी जय जयकारा किया। पुरुषो ने हरिश्चन्द्र को, महिलाओ ने तारा को ओर बालको ने रोहित को चारो ओर से घेर लिया। सब तारा और हरिश्चन्द्र के चरणो मे झुक–झुककर प्रणाम करने लगे और वे उन सबको उठा–उठाकर गले लगाते हुए क्षेमकुशल पूछने लगे। परन्तु स्नेहमग्न प्रजा आखो से प्रेम के आसू बहाने के सिवाय ओर कुछ उत्तर न दे सकी एव उनके द्वारा हरिश्चन्द्र के चरणो का प्रक्षालन करने लगी।

महाराज हरिश्चन्द्र के सकुशल वापस लोटने की खुशी मे प्रजा ने यथाशक्ति दान दिया। महिलाए भी तारा को पाकर प्रसन्न हो उठी ओर उनसे कहने लगी कि आपने ऐसे आपदकाल मे पति के साथ जाकर स्त्री–जाति को कलक से बचा लिया हे।

प्रजा का ऐसा प्रेम देखकर इन्द्रादि देव प्रजा ओर हरिश्चन्द्र की प्रशसा करने लगे। विश्वामित्र ने महाराज हरिश्चन्द्र को राजमहल म ले चलने के लिए प्रजा को सकेत किया ओर प्रजा उनको लेकर राज–महल की ओर चली। इन्द्रादि सव देव ओर विश्वामित्र भी साथ–साथ महल की ओर चले।

महाराज हरिश्चन्द्र के आने की आशा से नगरवासियो न नगर को पहले से ही सजा रखा था। स्थान–स्थान पर सुन्दरता वढाने वाल स्वागत–द्वार वने हुए थे। प्रत्येक घर के द्वार पर वदनवार वधे थे और सामने मगल–कलश रखे थे। सुगन्धित पदार्थो स सारा नगर महक रहा था।

इस सजे–सजाए नगर के राज–मार्गो से जुलूस के रूप मे घुमाते हुए और स्थान–स्थान पर स्वागत–सत्कार करते हुए प्रजा ने राजा का राजमहल मे प्रवेश कराया। विशेष समय से सूना दिखने वाला राजमहल भी महाराज हरिश्चन्द्र के पदार्पण से शोभित हो उठा। पहले जिस सूने राजमहल को देख–देखकर प्रजा दु खित होती थी और अनेक स्मृतिया जाग उठती थी, आज उसी महल मे राजा, रानी और युवराज रोहित के पुन पधार जाने से प्रजा के आनन्द का पारावार न था।

महाराज हरिश्चन्द्र और महारानी तारा आदि के राजमहल मे पहुचने पर विश्वामित्र ने हरिश्चन्द्र से सिहासन सुशोभित करने की प्रार्थना की ओर कहा कि राज्यासन पर विराजकर अपने वियोग से व्याकुल प्रजा का दु ख दूर कीजिए।

हरिशचन्द्र–महाराज, यह राज्य आपका है, मेरा नही। मे इसे आपको दान मे दे चुका हू। अतएव अब इस पर मेरा कोई अधिकार नही हे। आप सब लोगो की बात मानकर मै यहा आया हू और आपकी कृपा से प्रजा ने मुझे देख लिया ओर मैने प्रजा के दर्शन कर लिए है। यदि प्रजा दु खी हे तो राजा होने के कारण आप उसका दु ख दूर कीजिए।

हरिश्चन्द्र का उत्तर सुनकर प्रजा बहुत दु खी हुई और उनसे पुन राज्य–भार ग्रहण करने की प्रार्थना करने लगी।

इस पर हरिश्चन्द्र ने प्रजा को समझाते हुए कहा–आप लोग ही बतलाए कि क्या दान मे दी हुई चीज वापस ली जाती है?

प्रजा–नही।

हरिश्चन्द्र–तो जब मैं यह राज्य दान कर चुका हू, तो फिर से उसे केसे ग्रहण कर सकता हू।

हरिश्चन्द्र के इस कथन से निरुतर होकर प्रजा चुपचाप आसू बहाने लगी। तब इन्द्र ने प्रजा को सबोधित करते हुए कहा कि–महाराज हरिश्चन्द्र पहले मुझसे कह चुके हैं कि मैं दूसरो के हित के कार्य करने के लिए प्राणपण से तैयार हू। अत आपसे प्रश्न पूछता हू कि आपका हित विश्वामित्र के राजा रहने मे हे या महाराज हरिश्चन्द्र के?

इन्द्र के इस प्रश्न के उत्तर मे प्रजा ने एक स्वर से कहा कि हमारा हित महाराज हरिश्चन्द्र के राज्य करने से ही होगा। हमे जो सुख इनके राज्य

मे मिला और भविष्य मे मिलेगा, वेसा सुख विश्वामित्र के राज्य मे नही मिला और न मिलने की आशा हे।

प्रजा का उत्तर सुनकर इन्द्र पुन महाराज हरिश्चन्द्र से कहने लगे–प्रजा आपसे प्रसन्न है और आपके राज्य करने से सुख की आशा करती है तो इस दशा मे ओर वह भी ऐसे समय मे जब विश्वामित्र स्वय ही आपसे राज्य ले लेने का आग्रह कर रहे हे, तब आपका राज्य न लेना कदापि उचित नही है। अत आपको यही उचित है कि आप उनकी इच्छानुसार कार्य करे।

हरिश्चन्द्र–परन्तु आप ही कहिए कि जो वस्तु दान मे दी जा चुकी है, क्या उसे फिर लौटा लेना उचित होगा।

इन्द्र–आपका कहना यथार्थ है, परन्तु मैं पहले कह चुका हू कि राज्य करके सुख भोगना एक बात है और प्रजा पर शासन करके उसकी रक्षा करना तथा सुख–समृद्धि सपन्न बनाना दूसरी बात हे। आपको तो यही दूसरी वात करने के लिए कहा जा रहा है। इसके सिवाय आपने राज्य को दान मे दिया है, कुमार रोहित ने तो नही। विश्वामित्र राज्य कुमार रोहित को देते हे ओर रोहित को दिया जा रहा राज्य लेने मे कोई हर्ज नही हे। जब तक रोहित राज्यभार वहन करने के योग्य नही हो जाता तब तक उसकी ओर से आप राज्य कीजिए और बाद मे उसके योग्य होने पर आप उसे सोप दीजिए। यदि आप कहे कि दान मे दी हुई वस्तु मे से केसे खाए–पीए तो इसका उत्तर यह हे कि ससार मे कोई भी मनुष्य बिना खाए–पीए काम कर नही सकता हे। जव आप बिके हुए थे तब भी आप अपने खरीददार के यहा खाते–पीते ही थे। इसी प्रकार यहा भी कीजिए। अब प्रजा को इस प्रकार दु ख–मग्न रहने देना आप जेसे सत्यवादी के लिए उचित नही हे।

इन्द्र, विश्वामित्र, प्रजा ओर अपने कष्टदाता देव आदि के अनुनय–विनय करने ओर समझाए–बुझाए जाने पर विवश होकर हरिश्चन्द्र ने रोहित के वयस्क होने तक राज्य सभालना स्वीकार किया।

महाराज हरिश्चन्द्र की पुन शासन करने की स्वीकृति प्राप्त होते ही समस्त प्रजा आनन्दमग्न हो गई ओर हरिश्चन्द्र–तारा के जयघोषो से सम्पूर्ण राजमहल गूज उठा।

काशी को प्रस्थान करने से पूर्व ही विश्वामित्र मत्रियो का राज्याभिषेक की सामग्री तैयार रखने की आज्ञा दे गए थे। तदनुसार विधि–सहित हरिश्चन्द्र तारा ओर कुमार रोहित को राजसी वस्त्रालकारो से अलकृत किया गया तथा अवध का राजमुकुट पुन हरिश्चन्द्र के मस्तक पर शोभित होने

लगा। यह सब हो जाने के बाद रानी और कुमार सहित महाराज हरिश्चन्द्र सिहासन पर बैठाये गए और विश्वामित्र ने राजा के हाथ मे राजदड सौप दिया। प्रजा उनकी जय-जय बोलने लगी तथा बन्दीजन यशोगान करने लगे। विविध पकार के वाद्यो से सारा आकाश गूज उठा। सब लोगो ने यथाविधि, यथाशक्ति भेटे प्रस्तुत की और महाराज हरिश्चन्द्र ने उन सबका यथोचित आदर सत्कार किया।

राज्याभषेक का कार्य सम्पन्न हो जाने के पश्चात् सभा-मच पर खडे होकर इन्द कहने लगे-एक दिन वह था जब मैने अपनी सभा मे महाराज हरिश्चन्द्र के सत्य की प्रशसा की थी और एक दिन आज का है जबकि मै उनके सम्मुख ही उनकी प्रशसा करने के लिए खडा हू। पूर्व मे मेरे द्वारा की गई प्रशसा वैसे ही थी जैसे सोने के केवल रग-रूप को देखकर सोना कहना और आज जो प्रशसा कर रहा हू वह सोने को तपाकर, कूटकर और काटकर परीक्षा करने के बाद सोना कहना जैसी है। यद्यपि मैं यह जानता हू कि महाराज हरिश्चन्द्र अपने कर्तव्य-मार्ग पर महारानी तारा की सहायता से ही स्थिर हो सके है और उन्ही की सहायता से ही वे सत्य-पालन मे समर्थ हुए हैं। लेकिन इसके साथ ही मुझे यह भी मालूम है कि भारत की ललनाये अपने पति के होते हुए अपनी प्रशसा की इच्छुक नही रहती। वे जो कुछ भी सत्कार्य करती है उसका श्रेय पति के गौरव को ही देती हैं और पति की प्रशसा मे प्रसन्न होती है तथा पति के गौरव को ही अपना गौरव समझती है। इसलिए मै महारानी तारा की पृथक् से प्रशसा न करके केवल महाराज हरिश्चन्द्र की ही प्रशसा करता हू जिनकी वे अर्धागिनी हैं।

महाराज हरिश्चन्द्र के विषय मे कुछ भी कहने से पहले मैं इस भारत और अयोध्या की जितनी भी प्रशसा करू वह कम है। जिसमे महाराज हरिश्चन्द्र जैसे सत्यधारी राजा विराजते है और जिनकी प्रजा भी सत्यपालन मे उनका अनुकरण करती है।

यद्यपि महाराज हरिश्चन्द्र के सत्य-पालन की महिमा का पूर्णरूप से वर्णन करने मे तो मै समर्थ नही हू, तथापि इतना अवश्य कहूगा कि महाराज हरिश्चन्द्र ने धर्म के मर्म को समझकर ही इतनी कष्ट सहन की तपस्या की है। साधारण मनुष्य तो इन पर पडे सकटो को सुनकर ही घबरा जाएगा। परन्तु उनको भी ये धैर्यपूर्वक सहते रहे और अपने सत्य से विचलित नही हुए। यही कारण है कि आज मनुष्य-लोक मे ही नही किन्तु देवलोक

मे भी इनके सत्य की ओर साथ–साथ इनकी प्रशसा हो रही हे। यदि महाराज हरिश्चन्द्र के समान सत्यधारी राजा न होते तो मे नही कह सकता कि देवलोक मे देवगण सत्य के लिये किसका आदर्श सामने रखकर सत्य के गीत गाते। महाराज हरिश्चन्द्र के सत्य पर मुग्ध होकर मेरा हृदय यही कहता है कि सत्य रहित राज्य की अपेक्षा ऐसे सत्यधारी का दासत्व भी कई गुना श्रेष्ठ है। सत्य–रहित राज्य नरक की ही प्राप्ति कराएगा, लेकिन सत्य–सहित दासत्व आत्मा को उच्चतम अवस्था मे पहुचाएगा।

अन्त मे में आशीर्वाद देता हू कि महाराज हरिश्चन्द्र ओर उनके सत्य की कीर्ति आकाश की तरह अनन्त ओर अटल बनी रहे। जिस सत्य पर विश्वास करके महाराज हरिश्चन्द्र ने इतने कष्ट सहे है और जिनके प्रताप से आज इनकी कीर्ति दिग्–दिगत मे व्याप्त हो रही हे, उस सत्य पर विश्वास करने वाले और पालन मे कष्ट से भयभीत न होने वाले लोग निश्चय ही शुभगति को प्राप्त करेगे।

इस प्रकार सत्य और महाराज हरिश्चन्द्र की पशसा करके इन्द्रादि सब देव हरिश्चन्द्र से आज्ञा मागकर देवलोक को गए और विश्वामित्र वन को चले गए।

30. आत्मकल्याण के मार्ग पर

आज महाराज हरिश्चन्द और महारानी तारा के प्राप्त होने से प्रजा मे अपूर्व आनन्द था। सारा नगर प्रफुल्लित हो उठा और उसके निवासी कई दिन तक उत्सव मनाते रहे। ससार के नियमानुसार यह सच है कि इच्छित वस्तु के पाप्त होने पर हृदय को अपार आनन्द होता है।

सब लोगो को बिदा करके महाराज हरिश्चन्द्र राज–काज मे सलग्न हुए। राज्य मे महाराज के नाम ढिढोरा पिट जाने तथा गगनस्पर्शी ध्वजा फहराने से राज्य मे चोर–लपटादि सूर्योदय मे तारो के समान छिप गए। सब लोग अपने अपने कर्तव्यो का पूर्ववत् पालन करने लगे और अपने राजा को आदर्श मानकर सत्य पर दृढ रहने लगे। थोडे ही दिनो मे सारी प्रजा पुन सुख–समृद्धि–सपन्न हो गई।

पूर्ववत् राजा होने पर भी महाराज हरिश्चन्द्र ने राज्य की आय से स्वय किचित् भी लाभ नही उठाया। वे अपने तथा रानी के भरण–पोषण के लिए पृथक् से निजी उद्योग करते और उसी से अपना जीवन–निर्वाह करते थे।

महाराज हरिश्चन्द्र ने अत्यन्त न्यायपूर्वक राज्य किया। उनके राज्य मे अन्याय का तो नाम भी कोई नही जानता था और प्रजा सुखी थी। कही भी दुर्भिक्ष या महामारी का नाम तक सुनाई नही देता था। प्रजा यह नही समझती थी कि दरिद्रता का दु ख कैसा होता है। जनता की आर्थिक स्थिति अच्छी ही थी। परस्पर मे अच्छा स्नेह था और कोई किसी को नहीं सताता था।

राज्य मे अतिवृष्टि नही होती थी। शीतल मद पवन मधुर गति से बहा करता था और षड्ऋतुओ का कालक्रम यथासमय चलता रहता था। भूमि सदा हरी–भरी रही थी और उत्तरोत्तर धान्य उत्पन्न हुआ करते थे। वन

के वृक्ष फल–फूलो से लदे रहते थे और घी–दूध की नदिया बहती रहती थी। इस प्रकार महाराज हरिश्चन्द्र का राज्य बडा ही सुखदायक था। दशो दिशाओ मे सदैव आनन्द व्याप्त रहता था, मानो वह उनके व उनकी प्रजा के आधीन ही हो।

पहले के लोग अपनी समस्त आयु को ससार के भ्रमजाल मे ही नही बिताते थे, अपितु आयु का अतिम एक भाग आत्मकल्याण मे लगाते थे। वेसे तो गृहस्थी मे रहते हुए भी वे आत्माकल्याण की ओर ले जाने वाले कार्य किया करते थे परन्तु आयु का अन्तिम भाग तो निश्चित रूप से इसी मे लगा दिया करते थे। और इसीलिए उन्होने आयु को चार भागो मे विभक्त कर रखा था। जिसके प्रथम भाग मे वे ब्रह्मचर्य–पालन करने के साथ–साथ विद्योपार्जन किया करते थे। दूसरे भाग मे गृहस्थाश्रम का सचालन करते थे। तीसरे भाग मे ससार–त्याग का अभ्यास करते थे और चोथे भाग मे ससार से विरक्त होकर आत्मचिन्तन मे तल्लीन हो जाते थे। इन नियमो का पालन न करने वाला घृणा की दृष्टि से देखा जाता था और सासारिक कार्यो से उलझे हुए ही मरना एक लज्जा व कायरोचित बात मानी जाती थी। उनका सिद्धात था कि–

अवश्यं यातारश्चिरतरमुषित्वापि विषया।
वियोगे को भेदस्त्यजति न जनो यत्स्वयममून्।।
त्यजन्त. स्वातन्त्र्यादतुलपरितापाय मनस।
स्वयं त्यक्ता ह्येते शमसुखमनन्त विदधति।।

विषयो को हम चाहे जितना भोगे चाहे जितना प्यार करे, किन्तु एक दिन वे निश्चय ही हमसे अलग हो जाएगे, तब हम स्वय अपनी इच्छा से ही उन्हे क्यो न छोड दे? क्योकि जब वे विषय हमको छोडेगे तब हमे बडा दु ख और मन को क्लेश होगा ओर यदि हम उनको छोड देगे तो हमे अनन्त सुख व शाति प्राप्त होगी।

यद्यपि महाराज हरिश्चन्द्र ओर महारानी तारा की युवावस्था व्यतीत हो चुकी थी परन्तु तेजस्वी होने के कारण युवावस्था के अवसान होने के कोई चिह्न उनके शरीर पर दिखलाई नहीं देते थे। लेकिन वे आज के मनुष्यो की तरह न थे जो बुढापे को भी जवानी मानकर गृहस्थी मे ही फसे रहते। आज के मनुष्य तो शिथिल इन्द्रियो को पुन जागृत करने तथा श्वेत केशो को पुन श्याम बनाने के लिये औषधिया का प्रयोग करते हैं परन्तु उस समय के मनुष्य गृहस्थी छोडकर तपस्या मे तल्लीन हो जाते थे। इसी के अनुसार महाराज

हरिश्चन्द्र और महारानी तारा ने भी गृहत्याग का विचार किया। इधर रोहित भी समझदार हो चुके थे और राज्य–कार्य सभालने की योग्यता भी उनमे आ चुकी थी। अत उन्होने राज्य–त्याग करना उचित समझा।

राज्य–त्याग का विचार करके महाराज हरिश्चन्द्र ने रोहित के राज्याभिषेक की तैयारी करवाई। प्रजा भी अपने प्रिय राजा–रानी के विचारो से सहमत हुई और उसमे से बहुतेरे राजा–रानी के ससार–त्याग के कार्य का अनुकरण करने को तैयार हुए।

"यथा राजा तथा प्रजा" इस कहावत के अनुसार प्रजा उन कार्यो को विशेष रूप से अपनाती है जिन्हे राजा करता है। राजा के प्रत्येक कार्य का प्रजा अनुकरण करने लगती है, फिर चाहे वे कार्य अच्छे हो या बुरे। अच्छे या बुरे कार्य का भार राजा के ऊपर समझकर जिन कार्यो को राजा करता है, उन्हे करने मे प्रजा किचित् भी नही हिचकिचाती। इसलिए पहले के राजा प्रत्येक कार्य ऐसे रूप मे करते थे, जिनका अनुसरण करने से प्रजा को लाभ अवश्य हो। झूठ, व्यभिचार आदि बुरे कार्यों को वे अपने पास भी नही फटकने देते थे। यही कारण था कि राजा के कार्यो का अनुसरण करने पर प्रजा इहलौकिक आनन्द प्राप्त करने के साथ–साथ पारलौकिक आनन्द भी प्राप्त करती थी।

निश्चित समय पर महाराज हरिश्चन्द्र ने कुमार रोहित का राज्याभिषेक किया। कुमार रोहित के राजा होने पर सम्पूर्ण प्रजा प्रसन्न हो उठी और महाराज हरिश्चन्द्र की प्रशसा करने लगी। राज्याभिषेक की समस्त विधियो के सम्पन्न हो जाने पर रोहित को राजदड सौपते हुए महाराज हरिश्चन्द्र ने कहा–आज यह बडे हर्ष की बात है कि मै राज्य और गृहस्थी का भार कुमार रोहित को सौंपकर महारानी तारा सहित शेष जीवन आत्मचितन मे व्यतीत करने के लिए वन मे जा रहा हू। यद्यपि रोहित स्वय एक चतुर और प्रजाप्रिय शासक सिद्ध होगे, तथापि पिता होने के कारण मेरा कर्तव्य है कि इन्हे शिक्षा के दो शब्द कहू। इसलिए मै रोहित को यह शिक्षा देता हू कि राजा के लिए प्रजा पुत्रवत् है। जिस प्रकार पुत्र के सुख–दुख आदि का ध्यान रखना पिता का कर्तव्य है, उसी प्रकार राजा का भी कर्तव्य है कि वह प्रजा के सुख–दु ख की चिन्ता रखकर उसका दु ख दूर करे। जो राजा अपनी प्रजा का दु ख दूर करने मे असमर्थ होता है या इस ओर उपेक्षा–भाव रखता है, वह अयोग्य समझा जाता है। इसलिए राज्य की प्रजा के सुखी रहने पर ही राजा सुखी रह सकता है। इसके सिवाय प्रत्येक व्यक्ति का दान–मान से सम्मान करना

भी राजा का कर्तव्य है। जो राजा दान करना ओर आने–जाने वालो का सम्मान करना नही जानता, वह भी अयोग्य माना जाता है।

अन्त मे सबसे महत्वपूर्ण बात यही कहता हू कि राज्य चाहे चला जाए परन्तु सत्य और धर्म को कदापि हाथ से न जाने देना। सत्य ओर धर्म के रहने पर अन्य सब वस्तुए पुन प्राप्त हो सकती हैं परन्तु इनके न रहने पर ससार की सब जड वस्तुए किसी काम की नही है और वे सब इस लोक मे तो दु खदाता होगी ही और साथ–साथ परलोक मे भी दु खदाता होगी।

मै प्रजा को रोहित के और रोहित को प्रजा के हाथो सोप रहा हू। आशा है कि दोनो एक दूसरे से सहयोग रख कर सत्य, धर्म, न्याय–नीतिपूर्वक राज्य की व्यवस्था करेगे। इसके सिवाय ओर विशेष क्या कहू।

राजा का कथन समाप्त होते ही प्रजा ने हर्षपूर्वक महाराज हरिश्चन्द्र, महारानी तारा और नवाभिषिक्त महाराज रोहित की जय–जय ध्वनि की।

अनन्तर रोहित ने सिहासन पर से खडे होकर कहा कि मेरे पूज्य पिता महाराज हरिश्चन्द्र ने मुझे जो कुछ भी शिक्षा दी है, उसका मै जीवन पर्यन्त पालन करूगा और अपने गुरुजनो से आशीर्वाद मागते हुए प्रजाजनो से आशा करता हू कि वे मेरे राज्य–कार्यो मे पहले की तरह सहयोग देकर राज्य को सुख–सम्पन्न बनाने मे सहभागी बने। जिससे हम सबका कल्याण होवे।

एक बार पुन प्रजा ने महाराज हरिश्चन्द्र, महारानी तारा और रोहित की जय–जय ध्वनि की।

इसके बाद वन जाने के लिए महाराज हरिश्चन्द्र, महारानी तारा ओर नव अभिषिक्त महाराज रोहित के साथ वन जाने के लिए महल से निकलकर बाहर आए, जहा उनका अनुसरण करने के लिए अनेक स्त्री–पुरुष प्रतीक्षा मे खडे थे। वन जाने के लिए वे उनके साथ नगर के बाह्य भाग की ओर चल दिये।

नगर के बाहर आकर उन सभी आगत स्त्री पुरुषो के साथ हरिश्चन्द्र ओर तारा ने भागवती दीक्षा धारण की। महाराज रोहित तथा प्रजा उनको राजसी वेश का परित्याग कर साधुओ के वेश मे परिणत देखकर उनकी जय–जयकार करने लगी ओर अपने सहयोगी स्त्री–पुरुषो सहित हरिश्चन्द्र, तारा दो भागो मे विभक्त होकर आत्म–चिन्तन म लीन होने के लिए वन की ओर चल दिए। उन्होने वन मे पहुचकर बारह भावनाओ का चिन्तवन कर खूब तपस्या की ओर शुक्ल ध्यान का ध्यान कर केवलज्ञान प्राप्त कर

लिया। चार घाती कर्म का उच्छेद कर अरिहत दशा को प्राप्त हुए तथा शेष चार अघाती कर्मो का समूलोच्छेद कर आयु के अन्त मे शाश्वत सुख के धाम अजर, अमर सिद्ध पद को प्राप्त हुए।

माता–पिता आदि की वन की ओर विदा करके प्रजा सहित महाराज रोहित वापस नगर मे लौट आए। प्रजा महाराज रोहित के राज्याभिषेक और महाराज हरिश्चन्द आदि के दीक्षा धारण करने के उपलक्ष्य मे कई दिन तक आनन्दोत्सव मनाती रही।

महाराज रोहित अपने पिता की ही तरह सत्य और धर्म की रक्षा करते हुए न्यायपूर्वक राज्य करने लगे, जिससे प्रजा को महाराज हरिश्चन्द्र के राज्य–त्याग से किचित् भी दु ख नही हुआ।

31. उपसंहार

यह तो पहले ही कहा जा चुका हे कि चरित्र कहने–सुनने का तात्पर्य यही है कि उसमे वर्णित अच्छे कार्यों का अनुसरण करे और बुरे कार्यो का त्याग किया जाए। इस कथन का तात्पर्य यह भी नही हे कि महाराज हरिश्चन्द्र और महारानी तारा के चरित्र का अनुकरण करने के लिए आप लोग भी अपने गृहादि का दान कर दे या दूसरो के दास होकर रहे। यदि सत्य के लिए ऐसा भी हो सके तब तो अच्छा ही हे लेकिन ऐसा न हो सकने के कारण सत्य से ही वचित रहना उचित नही है। जिस आकाश मे गरुड पक्षी उडता हे, उसी मे एक पतग को भी उडने का अधिकार है। यह बात दूसरी हे कि वह उडने मे गरुड की समानता न कर सके, लेकिन इसी कारण उडना बन्द नहीं करती। इसी तरह जिस सत्य को महाराज हरिश्चन्द्र ओर महारानी तारा जेसे उच्च व्यक्तियो ने पाला हे, उसी सत्य को साधारण से साधारण मनुष्य उनकी तरह त्याग न दिखा सकें, लेकिन इसी कारण सत्य का पालन नही करना कदापि उचित नही कहला सकता। उन्हाने भयकर से भयकर कष्टो को सहते हुए भी सत्य न छोडा तो उनके आदर्श को सन्मुख रखकर कम से कम आप साधारण कष्टो से भयभीत हो सत्य को नही छोडे या जहा कष्ट होने का कोई भय नही हे, वहा तो सत्य का त्याग कदापि न करे। महाराज हरिश्चन्द्र ओर महारानी तारा के सत्यपालन मात्र से ही आपको कोई लाभ नही हो सकता हे। उसका लाभ तो उन्ही को मिला। किन्तु आपको तो लाभ तभी हो सकता हे जब आप स्वय सत्य का उपयोग करे। कार्य का अच्छा या बुरा फल कर्ता को ही प्राप्त होता हे दूसरो को नही। कर्ता के अच्छे

कार्यों को सुन लेने मात्र से सुनने वालो को लाभ नही होता है। लाभ तो उस अच्छाई को ग्रहण करने और तदनुसार आचरण करने से ही होता है।

इस चरित्र का वर्णन इसी आशय से किया गया है कि मनुष्य सत्य के महत्व को समझकर असत्य से दूर रहकर महाराज हरिश्चन्द्र और महारानी तारा ने जिस सत्य द्वारा अपने जीवन का कल्याण किया है, उस सत्य अपनाने वाले का सदा कल्याण ही कल्याण है।

समाप्त

श्री जवाहर विद्यापीठ, भीनासर

– एक परिचय –

स्थानकवासी जैन परम्परा मे आचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा एक महान् क्रातिकारी सत हुए है। आषाढ शुक्ला सवत् 2000 को भीनासर मे सेठ हमीरमलजी बाठिया स्थानकवासी जैन पौषधशाला मे उन्होने सथारापूर्वक अपनी देह का त्याग किया। उनकी महाप्रयाण यात्रा के बाद चतुर्विध सघ की एक श्रद्धाजलि सभा आयोजित की गई जिसमे उनके अनन्य भक्त भीनासर के सेठ श्री चम्पालाल जी बाठिया ने उनकी स्मृति मे भीनासर मे ज्ञान–दर्शन चारित्र की आराधना हेतु एक जीवन्त स्मारक बनाने की अपील की। तदन्तर दिनाक 29 4 1944 को श्री जवाहर विद्यापीठ के रूप मे इस स्मारक ने मूर्त रूप लिया।

शिक्षा–ज्ञान एव सेवा की त्रिवेणी प्रवाहित करते हुए सस्था ने अपने छह दशक पूर्ण कर लिए है। आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा के व्याख्यानो से सकलित, सम्पादित ग्रथो को 'श्री जवाहर किरणावली' के नाम से प्रकाशित किया जा रहा है। वर्तमान मे इसकी 32 किरणो का प्रकाशन सस्था द्वारा किया जा रहा हे इसमे गुफित आचार्यश्री की वाणी को जन–जन तक पहुचाने का यह कीर्तिमानीय कार्य हे। आज गौरवान्वित हे गगाशहर–भीनासर की पुण्यभूमि जिसे दादा गुरु का धाम बनने का सुअवसर मिला ओर ज्योतिर्धर आचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा की कालजयी वाणी जन–जन तक पहुच सकी।

सस्था द्वारा एक पुस्तकालय का सचालन किया जाता हे जिसमे लगभग 5000 पुस्तके एव लगभग 400 हस्तलिखित ग्रथ हे। इसी से सम्बद्ध वाचनालय मे देनिक, साप्ताहिक पाक्षिक, मासिक– कुल 30 पत्र–पत्रिकाये उपलब्ध करवाई जाती हें। प्रतिदिन करीब 50–60 पाठक इससे लाभान्वित होते हे। ज्ञान–प्रसार के क्षेत्र मे पुस्तकालय–वाचनालय की सेवा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हे और क्षेत्र मे अद्वितीय है।

महिलाओ को स्वावलम्बी बनाने हेतु सस्था द्वारा सिलाई, बुनाई, कढाई प्रशिक्षण केन्द्र का सचालन किया जाता है, जिसमे योग्य अध्यापिकाओ द्वारा महिलाओ व छात्राओ को सिलाई, बुनाई, कढाई व पेन्टिग कार्य का प्रशिक्षण दिया जाता है। इससे वे अपने गृहस्थी के कार्यो मे योगदान दे सकती है और आवश्यकता पडने पर इस कार्य के सहारे जीवन मे स्वावलम्बी भी बन सकती है।

सस्था के सस्थापक स्वर्गीय सेठ श्री चम्पालाल जी बाठिया की जन्म जयन्ती पर प्रत्येक वर्ष उनकी स्मृति मे एक व्याख्यानमाला का आयोजन किया जाता है जिसमे उच्च कोटि के विद्वानो को बुलाकर प्रत्येक वर्ष अलग–अलग धार्मिक, सामाजिक विषयो पर प्रवचन आयोजित किए जाते है।

उपरोक्त के अलावा प्रदीप कुमार जी रामपुरिया स्मृति पुरस्कार के अन्तर्गत भी प्रतिवर्ष स्नातकस्तरीय कला, विज्ञान एव वाणिज्य सकाय मे बीकानेर विश्वविद्यालय मे प्रथम व द्वितीय स्थान प्राप्त करने वाले विद्यार्थियो को नकद राशि, प्रशस्ति–पत्र एव प्रतीक–चिन्ह देकर सम्मानित किया जाता है एव स्नातकोत्तर शिक्षा मे बीकानेर विश्वविद्यालय मे सर्वाधिक अक प्राप्त करने वाले एक विद्यार्थी को विशेष योग्यता पुरस्कार के रूप मे प्रशस्ति–पत्र एव प्रतीक–चिन्ह देकर सम्मानित किया जाता है।

विद्यापीठ द्वारा ठण्डे, मीठे जल की प्याऊ का सचालन किया जाता है। जनसाधारण के लिए इसकी उपयोगिता स्वय–सिद्ध है। इस प्रकार अपने बहुआयामी कार्यो से श्री जवाहर विद्यापीठ निरन्तर प्रगति–पथ पर अग्रसर है।